श्री दिगम्बर जैन कुन्थु विजय ग्रन्थमाला समिति

अष्टम पुष्प

श्री सम्मेद शिखर माहात्म्यम्

(लोहाचार्यानुसार)

श्री देवदत्त कवि विरचितम्

हिन्दी भाषानुवादक

श्री १०८ गणधराचार्य कुन्थुसागर जी महाराज

प्रकाशन संयोजक

शान्ति कुमार गंगवाल

प्रकाशक

श्री दिगम्बर जैन कुन्थु विजय ग्रन्थमाला समिति

कार्यालय

1936, कसेरों की गली, घी वालों का रास्ता,

जौहरी बाजार जयपुर-302003 (राजस्थान)

परमपूज्य श्री १०८ आचार्यरत्न धर्मसागर जी महाराज के संघ का, श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र लूणवा (राजस्थान) में वर्ष १९८५ में हुए चातुर्मास के शुभावसर पर प्रकाशित



❋ मूल्य : स्वाध्याय / ६१.०० रुपये
(डाक व्यय अतिरिक्त)

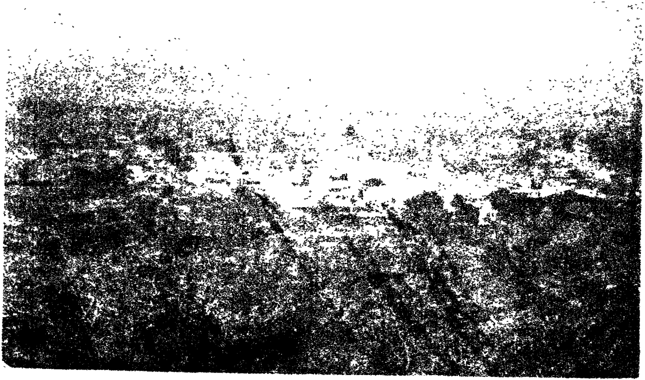
❋ मुद्रक : हवा महल प्रिन्टर्स, जयपुर

❋ ब्लाक मेकर : जुबली ब्लाक एवं प्रिन्टिंग वर्क्स, जयपुर

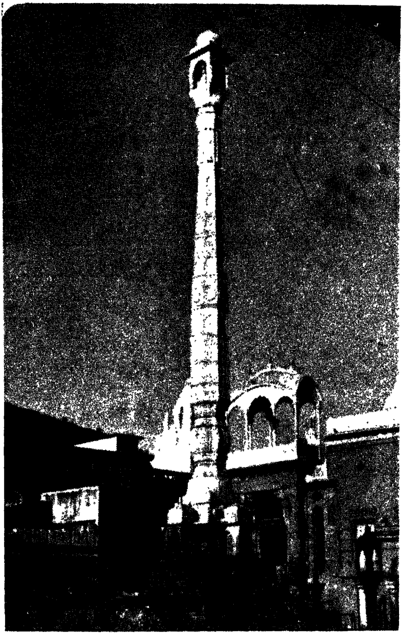
प्राप्ति स्थान :
शान्ति कुमार गंगवाल

प्रकाशन संयोजन :
श्री दिगम्बर जैन कुन्थु विजय ग्रन्थमाला समिति

कार्यालय : १९३६, कसेरों की गली, घी वालों का रास्ता
जौहरी बाजार, जयपुर-३०२ ००३ (राज०)



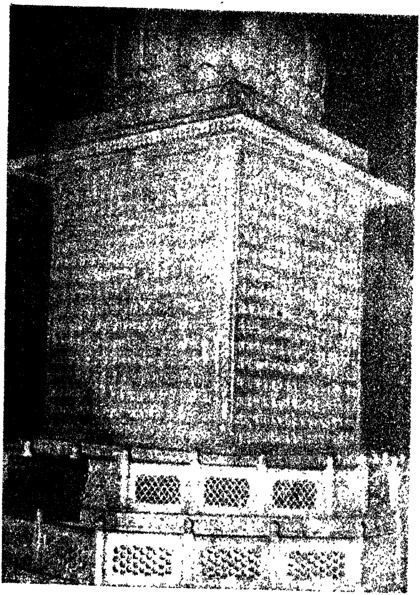
श्री सम्मेद शिखरजी दिग्दर्शन 'मधुबन'



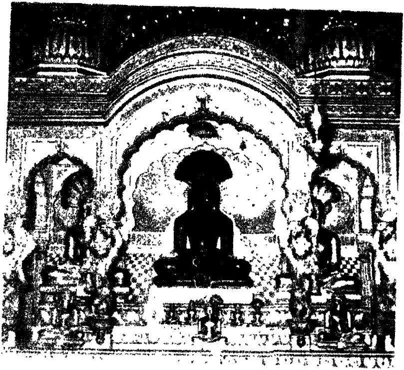
मान स्तम्भ (तेरहपंथी कोठी मंदिर)



श्री १००८ भगवान पार्श्वनाथ (तेरहपंथी कोठी मन्दिर)



श्री सहस्त्र कूट जिन चैत्यालय (तेरहपंथी कोठी मंदिर



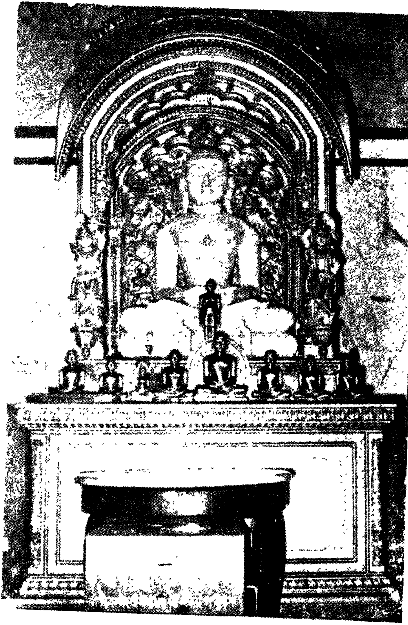
भगवान श्री पार्श्वनाथ (मूल बेदी बीसपंथी कोठी मन्दिर)



श्री नंदीश्वर जिनालय (तेरहपंथी कोठी मन्दिर)

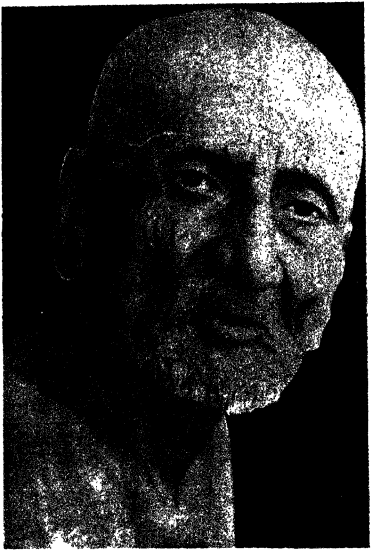


श्री १००८ भगवान चन्द्र प्रभु जिनालय (तेरहपंथी कोठी मन्दिर) में श्री १०८ गणधराचार्य कुंथुसागरजी महाराज व श्री १०५ गणिनी आर्यिका विजयामती माताजी

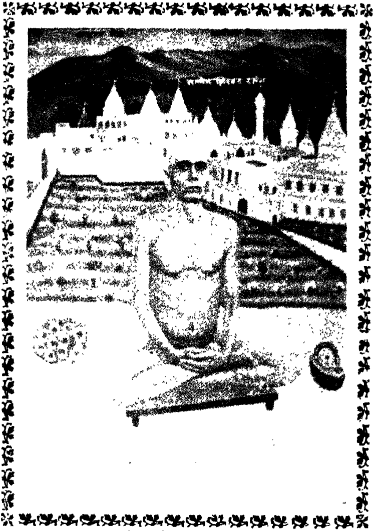


श्री १००८ भगवान पुष्पदंत स्वामी (तेरहपंथी कोठी मन्दिर)

वर्तमान युग मे मुनि श्रेष्ट के निर्माता, परम गुरु परमशान्त, महायोगीश्वर,
सिद्धान्तशास्त्रो के अनुभवी महाविद्वान जगतवंद्य प्रप्रभावक साधुरत्न



लोकवंद्य, चारित्र चक्रवर्ती योगीन्द्र चूडामणि परम पूज्य आचार्य मुकुट
श्री १०८ स्व० शान्ति सागर जी महाराज



परमपूज्य समाधि सम्राट तीर्थ भक्त शिरोमणि १०८ परम्पराचार्य परमेष्टी श्री महावीर कीर्तिजी गुरु महाराज साहब ।

परम पूज्य श्री १०८ आचार्य महावीरकीर्ति जी महाराज का

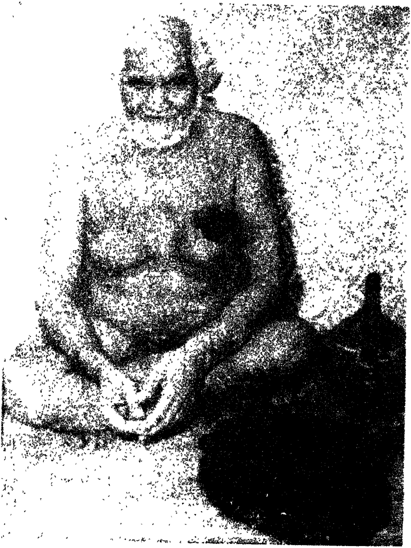
आचार्य स्तवन

रचयिता—श्री १०८ गणधराचार्य कुन्थुसागर जी महाराज के शिष्य
श्री १०८ मुनि देवनन्दि जी महाराज

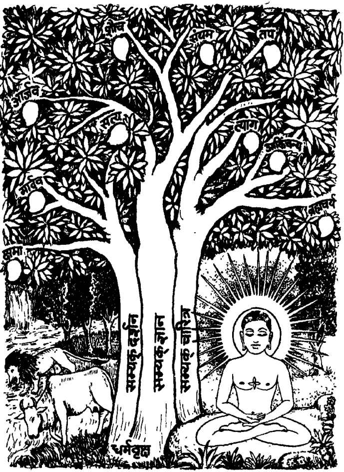
(राष्ट्र राष्ट्र गीत के समान)

मुनि गण मन अधिनायक जय हे
जिन कुल जगदुद्धार

पंच महाव्रत समिति गुप्ति त्रय, चरण महोदधि चन्द्र ॥१॥
द्वादश तप द्वाविंशति परिषह, विजयी उग्रतपस्वी ।
सिद्ध क्षेत्र भक्त शिरोमणि, साधु समाधि सम्राट ॥२॥
अष्टादश भाषा सु विशारद, नाना शास्त्र सु ज्ञाता ।
नैमित्तिक ज्योतिष वैद्यादिक, नाना विद्या निपुण ॥३॥
संस्कृत प्राकृत कन्नड तेलगु, आंग्ल गुजरात मराठी ।
षट्खण्डागम धवल जय धवल, प्रवचन सार प्रयोगी ॥४॥
सम्मेदाचल उज्जन्तगिरि, कुथलगिरि वर शिखरे ।
चातुर्वर्ण्य सुसंघ समेत, चातुर्मासं कुर्वन् ॥५॥
उत्तर देशे राजस्थाने, कर्नाटक महाराष्ट्रे ।
नानादेशे धर्म प्रभावन, कृत्वन्तः भो सूरे ॥६॥
अष्टाविंशति वर्ष सुकाले, तप कार्य कृत्वन्तं ।
'महावीर कीर्त्याचार्य' नमामि, बाल ब्रह्मागमहं ॥७॥
सुसमाधि प्राप्तं तं सुगुरुं, मेहसाणाख्य सुग्रामे ।
'गणधर वर कुन्थुसागर' शिष्याः, वंदन्तित्वां सर्वे ॥८॥
तव शुभ आशीर्वादान् । संयम मार्गे अस्मान् ।
नय नय नय नय स्वामिन् !
जन गण मंगल दायक सूरे
जिन कुल जगदुद्धार
जय हे जय हे जय हे
जय जय जय जय जय हे ॥



श्री १०८ आचार्यरत्न धर्मसागरजी महाराज



सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्राणि

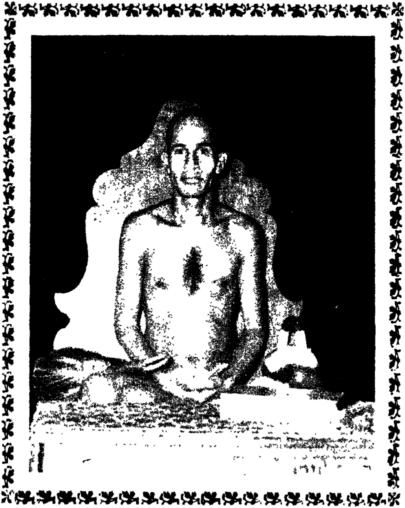
मोक्षमार्ग:



श्री सन्मार्ग दिवाकर निमित्तज्ञान शिरोमणि १०८ आचार्य रत्न विमल सागर जी महाराज साहब।



अध्यात्म बालयोगी श्री १०८ आचार्य सन्मति सागर जी महाराज साहब

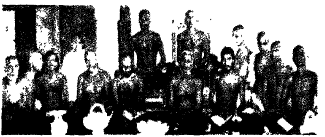


श्री १०८ गणधराचार्य कुंथुसागर जी महाराज साहब ।



परमपूज्य श्री गणिनी १०५ आर्यिका विजयामती माता जी

परम पूज्य श्री १०८ गणधराचार्य कुंथुसागर जी महाराज के द्वारा दीक्षित संघस्थ साधुगण।





श्री जिनधर्म रक्षक कलियुग प्रबन्ध



श्री धरणेन्द्र देव



श्री पद्मावती माता



श्री क्षेत्रपाल

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन खर्च में विशिष्ट आर्थिक सहयोगी



स्वर्गीय श्री चितामणि
पायप्पा शेट्टी



श्रीमती विमला बाई
चितामणि शेट्टी (बेलगाव)



श्री फक्कड बालागाट



सौ. श्रीमती फक्कड बालागाट



श्री के. आप्पा साहेब वालागाट



सौ गणूबाई आप्पा साहेब बालागाट



श्री भाऊ साहेब नर साधा भोंजे



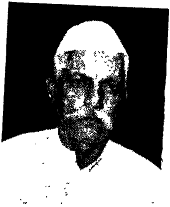
सौ हिराबाई भाऊ साहेब भोंजे



श्री देवगोंडा रामगोंडा पाटिल



सौ. सुशीला बाई देवगोंडा पाटिल



श्री भूपाल कृष्णाप्पा लंगारे



सौ. गंगू बाई भूपाल लंगारे



श्री बालप्पा दरेप्पा चौगुले   माँ देवकी बालप्पा चौगुले बेलगांव (कगाबरगी)



कु. धरणेंद बालप्पा चौगुले

卐 श्री कुन्थु विजय ग्रंथमाला की देन 卐

रचयिता-बिहारीलाल मोदी शास्त्री, बड़ा मलहरा

कुन्थु विजय ग्रन्थमाला द्वारा, जिनवाणी का हुआ प्रसार।
रखे सुरक्षित थे भण्डारों में, किया प्रकाशन और प्रचार॥
आचार्य प्रवर कुन्थुसागर ने, कर अनुवाद किया उद्धार।
विजयामती माता जी द्वारा, रचकर ग्रन्थ हुआ उपकार॥१॥
सप्त पुष्प प्रफुल्लित कीने, जग में फैला रहे सुबास।
एक दूसरे से बढ़ चढ़ कर, ज्ञान दीप्ति का करें प्रकाश॥
देश काल की आवश्यकता के, हैं अनुकूल और अनुरूप।
भाषा शैली सरल सुगम है, पठन मनन आनन्द स्वरूप॥२॥
यंत्र मंत्र तंत्र का संग्रह, "लघुविद्यानुवाद" सुजान।
"श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर अनाहत, यंत्र मंत्र" है ग्रन्थ महान्॥
"तजो मान करो ध्यान" भी जग को, बतलाता है उत्तम पंथ।
"हुम्बुज श्रमण सिद्धान्त पाठावलि", है विशाल पाठों का ग्रन्थ॥३॥
"पुर्नमिलन" में पवन अंजना, कथा कही उन्यास स्वरूप।
"शीतलनाथ पूजन विधान" भी, हिन्दी कन्नड करी अनूप॥
"वर्षायोग स्मारिका चौरासी", सप्तम पुष्प खिला बेजोड़।
सभी प्रकाशन हैं अति सुन्दर, ज्ञानसुधा पूरित बेजोड़॥४॥
शान्तिकुमार जी गंगवाल ने, किये समर्पित तीनों योग।
इसीलिए तो अल्पकाल में, पुष्प आठ का मिला सुयोग॥
अति सुयोग्य सम्पादक हैं वे, धीर वीर श्रमी विद्वान।
सभी सहयोगी बन्धु सदा ही, करते हैं सहयोग प्रदान॥५॥
शिखर सम्मेद माहात्म्यम् ग्रन्थ का, संस्कृत से हिन्दी अनुवाद।
सुन्दर सरस सरल काव्यमय, अति उत्तम है निर्विवाद॥
भक्ति भाव से पूजन पढ़कर, पुण्यबन्ध करना अधिकाय।
आचार्य प्रवर के पादपद्म मे, "लालबिहारी" शीश नमाय॥६॥





परम पूज्य श्री १०८ गणधराचार्य कुन्थुसागरजी महाराज व.श्री गणिनी
१०५ आर्यिका विजयामति माताजी से शुभाशीर्वाद प्राप्त करते हुए
गुरुभक्त संगीताचार्य प्रकाशन संयोजक श्री शान्तिकुमार
गंगवाल व उनकी धर्मपत्नि मेमदेवी गंगवाल

श्री सम्मेद शिखरजी सिद्धक्षेत्र (मधुबन)

का

संक्षिप्त परिचय

(शान्ति कुमार गंगवाल)

भारत वसुन्धरा पर कई अतिशय क्षेत्र व सिद्धक्षेत्र है लेकिन श्री सम्मेद शिखरजी जैसा सिद्धक्षेत्र संसार में नहीं है। क्योंकि यह तीर्थराज अनादि काल का है, इस सिद्धक्षेत्र से हमारे चौबीस तीर्थंकरो में से बीस तीर्थंकर मोक्ष पधारे है और उनके साथ असख्यात मुनिराज मोक्ष पधारे है इसलिये इस क्षेत्र का कण-कण पूज्यनीय व वंदनीय है। इस क्षेत्र की भाव सहित वंदना करने से मनुष्य के जन्म-जन्म के पापो का क्षय हो जाता है उसे नरक और पशुगति में जन्म नहीं लेना पडता है और ४९ वें भव में निश्चय ही उसको मोक्ष की प्राप्ति हो जावेगी कहाँ भी है।

भाव सहित बंदे जो कोई।
ताहि नरक पशु गति नहीं होई।।

अतः इस दुर्लभ मनुष्य जन्म को पाकर इस क्षेत्र की वंदना अवश्य ही करनी चाहिये। श्री सम्मेद शिखरजी सिद्धक्षेत्र हमारे देश के बिहार प्रान्त में व जिला गिरडिह में स्थित है। यहां के स्टेशन का नाम पारसनाथ है। पारसनाथ स्टेशन पर एक धर्मशाला है। यहां से श्री सम्मेद शिखर का पहाड दिखाई देता है। यहां से १४ मिल पक्की सड़क है। क्षेत्र की तरफ से गाडी का प्रबन्ध है जो यात्रियों को श्री सम्मेदशिखरजी सिद्धक्षेत्र पर ले जाती है इस स्थान का नाम ही मधुबन है।

श्री सम्मेदशिखरजी सिद्धक्षेत्र पर यात्रियों की सुख व सुविधाओं के लिये कई धर्मशालाये है, जहां पर यात्री ठहर सकते है। तेरापंथी कोठी और बीसपंथी कोठी दो विशाल कोठिया है और कई जैन मन्दिर है जिनकी रचना बड़ी ही सुन्दर है। मन्दिरों में विशाल प्रतिमाएं विराजमान है जिनके दर्शन करने से मन कमल खिल उठता है। समोवशरण की रचना, नंदीश्वर द्वीप की रचना सहस्त्र कूट जिण चैत्यालय भगवान बाहुबलि की प्रतिमा एवं चौबीस टोंक बहुत ही सुन्दर बने हुए है।

पहाड़ की वंदना को जाने के लिये प्रातः काल जल्दी ही ३ बजे उठकर स्नान करके तैय्यार होकर रवाना हो जाना चाहिये। स्नान करने के लिये क्षेत्र की ओर से गर्म पानी उपलब्ध कराने की पूर्ण व्यवस्था है। जो भाई बहिन पैदल पहाड की वंदना नहीं कर सकते है, उनके लिये डोलियो की व्यवस्था है। डोली का किराया वजन के अनुसार लगता है, इसके लिये क्षेत्र के मैनेजर कार्यालय पर जाकर

मशीन पर अपना तौल करवा कर वजन करवा लेना चाहिये और डोली व्यवस्था की बात कर लेनी चाहिये।

पहले ऊपरवाली कोठी से ही चढ़ाई प्रारम्भ होती है, इससे २ मिल की चढ़ाई पर गंधर्व नाला पड़ता है, और फिर १ मिल की चढाई पर दो मार्ग है जिनमे पहला दांही तरफ का मार्ग श्री पार्श्वनाथ टोंक के लिये है और दूसरा बांयी तरफ का मार्ग सीता नाला होकर गोतम स्वामी की टोंक पर पहुचती है सबसे पहले गोतम स्वामी की टोंक से वंदना शुरू करने के लिये बांयी तरफ वाले रास्ते से जाना चाहिये। इस स्थान से १ मिल चलकर सीता नाला आता है यहां से सामग्री धोकर १ मिल पक्की सीढियों से चढाई चढते हुए १ मिल कच्ची सड़क मे पर्वत के ऊपर पहुंच जाते है इस प्रकार ६ मिल की चढ़ाई है।

पहले गौतम स्वामी की टोंक है इसके बांद बाये हाथ की तरफ वदना करके जाना चाहिये फिर दूसरी श्री कुंथुनाथजी की है। यहा कुछ विश्राम करके फिर पूर्व की तरफ ३ री श्री नेमीनाथजी की ४ थीं श्री अरहनाथजी की ५ वीं श्री मल्लीनाथ जी की ६ वीं श्री श्रेयासनाथ जी की ७ वीं श्री पुष्पदंतजी की ८ वी श्री पद्मप्रभुजी की ६ वी श्री मुनि सुव्रतनाथजी की, १० वीं श्री चन्द्रप्रभुजी की टोंक बहुत ऊची है और दूरी पर है। फिर वहां से ११ वीं श्री आदिनाथजी की १२ वी श्री शीतल नाथजी की, १३ वीं श्री अनन्तनाथजी की, १४ वी श्री सम्भवनाथजी की १५ वी श्री वास पूज्यजी की १६ वीं श्री अभिनन्दनजी की है, यहा से जल मन्दिर होकर श्री गौतम स्वामी की टोंक पर आना चाहिये।

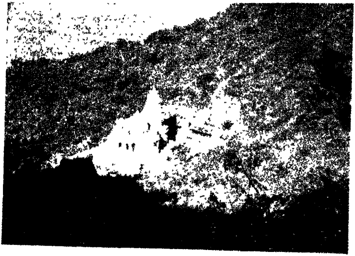
यहां से १७ वी श्री धर्मनाथ जी की १८ वी श्री सुमतिनाथजी की १६ वीं श्री शान्तिनाथजी की २० वी श्री महावीर स्वामीजी की २१ वी श्री सुपार्श्वनाथजी की, २२ वीं श्री विमलनाथजी की २३ वीं श्री अजितनाथजी की २४ वीं श्री नमि नाथ जी की टोको की वंदना करके २५ वीं श्री पार्श्वनाथजी भगवान की टोंक की वंदना करनी चाहिये। यह टोंक सबसे बड़ी और ऊंची है यहा कुछ विश्राम कर थकावट दूर कर लेनी चाहिये।

श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र पहाड़ की वंदना कर वापिस आने वाले यात्रियों के लिये यहां पर क्षेत्र प्रबन्ध समिति की ओर से निःशुल्क जलपानगृह का भी प्रबन्ध है। यहां पर यात्रिगण जलपान कर सकते है। और अपनी इच्छानुसार इस व्यवस्था में आर्थिक सहयोग भी कर सकते है।

इस तीर्थराज का इतना प्रभाव है कि जरा भी थकावट मालूम नहीं होती है।



श्री गौतम गणधर स्वामी की टोंक

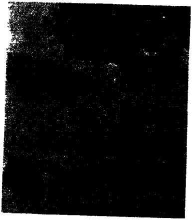


जल मन्दिर



निःशुल्क जल-पान गृह

शु भा शी र्वा द



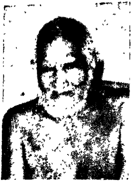
परमपूज्य श्री १०८ सन्मार्ग
दिवाकर निमित्तज्ञान
शिरोमणि आचार्य विमलसागरजी
महाराज का मंगलमय
शुभाशीर्वाद

★

हमें यह जानकर प्रसन्नता है कि श्री दिगम्बर जैन कुन्थु विजय ग्रन्थमाला समिति जयपुर (राजस्थान) द्वारा श्री सम्मेदशिखर माहात्म्यम् ग्रन्थ का प्रकाशन हो रहा है। इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद श्री १०८ गणधराचार्य कुन्थुसागरजी महाराज ने किया है। अतः हमारा इस कार्य के लिए पूर्ण आशीर्वाद है। यह ग्रन्थ जन-जन के लिए कल्याण प्रद व हितकर हो, और जैन शासन की इस ग्रन्थ के माध्यम से प्रभावना हो, यही हमारी मंगल कामना है।

—आचार्य विमल सागर

शुभाशीर्वाद



परमपूज्य श्री १०८ आचार्यरत्न
धर्मसागरजी महाराज का
मंगलमय शुभाशीर्वाद

★

बड़े हर्ष की बात है कि श्री दिगम्बर जैन कुंथु विजय ग्रन्थ-माला समिति जयपुर (राजस्थान) ने लोहाचार्य द्वारा प्रणित श्री सम्मेदशिखर माहात्म्यम् ग्रन्थ का प्रकाशन किया है, जिसकी हिन्दी टीका शास्त्रानुसार श्री १०८ गणधराचार्य कुंथुसागरजी महाराज ने की है। इस कार्य के लिए मेरा शुभाशीर्वाद है।

—आचार्य धर्मसागरजी

शुभाशीर्वाद



परमपूज्य

श्री १०८ गणधराचार्य

कुंथुसागरजी महाराज

का

मंगलमय शुभाशीर्वाद

★

इस अनादिनिधन संसार में परिभ्रमण करने वाले जीव राशि, जो भव्य है उनको एक न एक दिन मुक्ति अवश्य प्राप्त करना है, कोई तीर्थंकर केवली होकर तो कोई सामान्य केवली होकर, त्रेशठशाला का महापुरुष के जन्म का स्थान और मुक्ति गमन का स्थान भी कोई महानगरी अथवा महाक्षेत्र पर ही होता है उसमें भी तीर्थंकर केवली की जन्म-भूमि जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरतक्षेत्र के अन्तर्गत अनादिनिधन, अयोध्या नगरी ही होती है, और मुक्ति क्षेत्र सम्मेदशिखर जी ही होता है किन्तु हुण्डा व सर्पिणी काल के प्रभाव से अलग-अलग नगरी मे जन्म हुआ व अलग-अलग क्षेत्रों से मुक्ति गये, बीस तीर्थंकर शिखरजी से और चार तीर्थंकर गिरनार, चम्पापुर, पाँवापुर, कैलाश पर्वत से वैसे जन्म नगरी अलग-अलग है। ये सब काल के प्रभाव से ही होता है बाकी कालों में एक ही नगरी से जन्म लेना, और एक क्षेत्र से मुक्ति जाना, यह नियम ही है, अयोध्या नगरी व सम्मेदशिखर क्षेत्र, प्रलय के समय भी नष्ट नहीं होते हैं यह शास्वत क्षेत्र है, इन क्षेत्रों के प्रतीक रूप स्वस्तिक और सुपारी के आकार चिन्ह भूमि पर अंकित है, प्रलय के बाद इन्द्र के द्वारा फिर से अयोध्या और सम्मेदशिखर की रचना होती है संकेत देखकर। इसलिए इनको अनादिनिधन कहा है। इस अयोध्या नगरी में अनादिकाल से अनन्त तीर्थंकर पैदा हुए है, और अनादि से अनन्त तीर्थंकर भी सम्मेदशिखर जी से ही मोक्ष गये हैं, इस सम्मेदशिखर क्षेत्र का अचिन्तय महात्म्य है, इस क्षेत्र पर अनादि काल से अनन्तानन्त जीव शास्वत क्षेत्र में जाकर विराजमान हुए हैं ये क्षेत्र अनन्त जीवों की सिद्धभूमि है इसलिए इस क्षेत्र को क्षेत्रों में अति उत्तम कहा है, वर्तमान कालीन चौबीसी से बीस तीर्थंकर

इस क्षेत्र से मोक्ष पधारे हैं, और उनके साथ में व आगे पीछे कोटयावधि जीव मोक्ष पधारे हैं और अनेकों जीवों ने समाधिपूर्वक मरण कर स्वर्गादिक की प्राप्ति की है। इस क्षेत्र के देव, विद्याधर, मनुष्यादिक आकर वंदना करते हैं, और अपने भव का सुधार करते हैं। इस क्षेत्र पर आने वाले जीव व पैदा होने वाले जीव निश्चित ही भव्य जीव ही है, इस क्षेत्र की बारह योजन की सीमा में (अडतालीस कोस) भव्य ही पैदा होते हैं या आते हैं अभव्य इस क्षेत्र की सीमा में भी नहीं आ सकता है और न पैदा ही हो सकता है। इस क्षेत्र की वंदना करने वाला जीव नरक गति व तीर्यंचगति में नही जाता है। जिसको नरक गति व तीर्यंचगति का बंध हो गया है उसको इस क्षेत्र की वदना नही होती, बहुत अभव्य या नरकादि में जाने वाले जीव इस क्षेत्र की सीमा मे नही आ सकते है, अगर आने का प्रयत्न भी करे तो, इस क्षेत्र का अधिपति देव क्षेत्र की सीमा मे नहीं आने देता है। इस क्षेत्र का अधिपति देव, प्रभूत नाम का बारह लक्ष व्यतर देवों का अधिपति है, वो ही इस क्षेत्र का सरक्षण करता है, और आने वाले भव्य जीवों का भी, इस सम्मेदगिरी सिद्धक्षेत्र का महात्म्य राजा श्रेणिक ने अपनी प्रजा के साथ भगवान् महावीर के समवशरण में जाकर तीर्थंकर महावीर से पूछा था और श्रेणिक को भगवान् ने क्षेत्र का महात्म्य सविस्तारपूर्वक वर्णन किया था, क्षेत्र का महात्म्य सुनकर राजा श्रेणिक की भी क्षेत्र पर जाने की इच्छा हुई और अपने वैभव के साथ चला भी, किन्तु राजा श्रेणिक को नरक गति का बध पड़ जाने से क्षेत्र की सीमा मे भी प्रवेश न कर सका, वहाँ के अधिपति देव ने राजा श्रेणिक को सीमा में भी प्रवेश नहीं करने दिया, और भी अनेक ऐसे दृष्टान्त है। राजा श्रेणिक को वापस ही अपनी राजधानी में लौटना पड़ा, अभी भी ऐसा ही होता है, बहुत से यात्रियों को वन्दना नहीं होती और वापस आ जाना पडता है, इस क्षेत्र पर बड़े-बड़े राजा महाराजाओं ने यहाँ आकर वन्दना करके यहाँ ही दीक्षा लेकर आत्माराधना किया है, इस क्षेत्र का महात्म्य पूर्ण परम्परानुसार सभी तीर्थंकरो ने वर्णन किया और अंतिम तीर्थंकर भगवान् महावीर ने गौतम स्वामी को कहा, गौतम स्वामी ने सुधर्माचार्य को सुधर्माचार्य ने जम्बूस्वामी को और पंचश्रुत केवली से लगाकर क्रम में सभी आचार्यों ने कहा उसके बाद श्रुतविच्छेद न हो उसके लिए अंगधारी लोहाचार्य ने सविस्तार वर्णन किया और लिपिबद्ध किया, उसी के अनुसार देवदत्त कवि ने संस्कृत भाषामयी काव्य रचना में बावीस सौ श्लोकों में वर्णन किया। रचना बहुत ही सुन्दर है इस महात्म्य में अजितनाथ तीर्थंकर से लेकर पार्श्व तीर्थंकर तक प्रत्येक तीर्थंकरों के जन्म स्थान, मोक्ष स्थान, केवलज्ञान स्थान, दीक्षा स्थान आदि का वर्णन किया है, तीर्थंकरों के वैभव का वर्णन, जन्माभिषेकों का वर्णन, पूर्व जन्मों का वर्णन, चक्रवर्तियों का वर्णन और उनके वैभवों का वर्णन, प्रत्येक टोंकों का वर्णन, कौन-कौन टोंक से कौन तीर्थंकर मोक्ष गये और उस टोंक की किसने वंदना की और वंदना करने का फल क्या मिला आदि वर्णन उस टोंक से कितने भव्य जीव मोक्ष पधारे आदि का वर्णन प्रत्येक टोंक की वंदना करने से उपवासों का

फल मिलता है आदि इक्कीस अध्यायों में सुन्दर वर्णन किया है और सम्पूर्ण क्षेत्र की वंदना करने से क्या फल मिलता है कौन से वर्ण के वस्त्र धारण कर वंदना करने से कौन-कौन से इष्टफल की प्राप्ति होती है किस-किस राजा को वंदना नहीं हुई और उसको वापस लौटना पड़ा आदि वर्णन है और भी अनेकानेक सन्दर्भानुसार कवि ने सुन्दर वर्णन किया है, यह महात्म्यम् पढ़ते ही क्षेत्र की वंदना करने के लिए, भव्य जीवों का आकर्षण हो जाता है। यह क्षेत्र महान् है, भव्य जीवों को इस क्षेत्र की यात्रा करना ही चाहिए, हम भव्य हैं या नहीं अथवा नरक तीर्यच में तो नहीं जाने वाले हैं इसकी परीक्षा इस क्षेत्र पर जीवों को मिल जाती है, वर्तमान समय में प्रत्यक्ष ज्ञानी कोई नहीं है, हम भव्य है या नहीं इसको कोई बताने वाला नही, इसकी परीक्षा आने से स्वतः ही हो जाती हैं। वंदना हो गई तो मानो हम भव्य हैं और नरक तीर्यंच गति में पैदा होने वाले नहीं हैं और निश्चित ही उनचास भवों में मोक्ष जायेंगे। ऐसा हमारा भविष्य निश्चित हो जाता है। इस क्षेत्र पर कभी किसी का कोई अनिष्ठ नहीं होता है, इस क्षेत्र पर कभी-कभी अतिशय भी होते रहते है जैसे बुढ़िया के ज्वार के दाने चढ़ाने पर मोती हो जाना, ग्वाला के कुल्हाड़ी चढ़ाने पर प्रत्येक टोंक पर सोने की कुल्हाड़ी हो जाना, यात्री मार्ग भूल जाने पर भी यात्रियों को कोई भी हानि नहीं होना, सिंहादि हिंसक प्राणियों के द्वारा भी यात्रियों को कोई क्षति नहीं होना, यात्री रात्रि के एक बजे से ही अपनी भावना रूपी कुसुम को लेकर पर्वतराज की वंदना करने के लिए चल देता है, उसमें बाल, वृद्ध, रोगी, युवक आदि सब रहते हैं और निर्भयता से क्षेत्र की वंदना करते हैं और हर्षयुक्त होकर अपने मोक्ष का टिकट लेकर घर जाते हैं, हर साल हजारों की तादाद से यात्री इस क्षेत्र की वंदना करने को आते हैं। क्षेत्र की तलेहटी में मधुवन हैं, और मधुवन में तीन कोठी हैं, एक बीस पंथी कोठी. दूसरी तेरापंथी कोठी, तीसरी श्वेताम्बर कोठी आदि हैं। तेरापंथी कोठी, बीसपंथी कोठी में बड़े-बड़े जिनालय, वीतराग जिन-मूर्तियाँ हैं चौबीस टोंक, बाहुबली मूर्ति, समवशरण की रचना आदि बहुत ही सुन्दर-सुन्दर रचना बनीं है। अब तो मधुवन बहुत ही विस्तार में द्रुतगति से बढ़ रहा है कुछ समय पहले तो मधुवन में सिर्फ कोठियों के सिवाय कुछ भी नहीं था यहाँ तक कि यात्रियों को पीने के लिए पानी भी दूसरे बाजार से लाना पड़ता था और यात्रा कर खाना-पीना खाकर वापस यात्री दूसरी जगह जाकर ठहरता था। इसमें एक कारण था, कुओं का पानी खराब होने से, यहाँ के कुओं का पानी पीने से अवश्य ही यात्री बीमार पड़ जाता था। इस क्षेत्र पर आचार्य १०८ महान् तपस्वी, अध्यात्म योगी गुरुदेव महावीर कीर्तिजी महाराज ने चातुर्मास किया और सब कुओं में प्रति दिन शांतिधारा का पानी डलवाया और नाना प्रकार के मन्त्रों के यंत्र से और स्व तपस्या के योग से कुओं का पानी यात्रियों के पीने योग्य किया, आज इतने यात्री यहाँ के कुओं का पानी पीकर यात्रा का आनन्द मनाते हैं वह सब गुरुदेव की ही बदोलत है। स्वयं चातुर्मास में बहुत बिमार पड़े किन्तु यात्रियों के

लिए रास्ता खोल दिया, आज मधुवन चमन बन गया है। इस क्षेत्र पर आचार्य श्री को बहुत उपसर्ग भी सहन करने पड़े हैं। आचार्य शान्तिसागर जी महाराज का संघ भी महायात्रा के लिए आया था। क्षेत्र पर दोनों कोठियों की व्यवस्था बहुत अच्छी है। साधु लोगों का चातुर्मास भी होता है। कोठियों में कमरे आदि की व यात्रियों के ठहरने के लिए सुव्यवस्था है। इस क्षेत्र का प्राकृतिक सौन्दर्य तो इतना बढ़ा-चढ़ा है कि अन्य क्षेत्र इसके सामने कुछ भी नहीं है।

हमारा संघ का (कर्नाटक) प्रांत में बिहार के अन्तर्गत हमने श्री सम्मेद-शिखर माहात्म्यम् देवदत्त कवि विरचितम् का मराठी अनुवाद विद्वान् श्री सोलापुरवासी जिनदास फडकुले के द्वारा किया हुआ श्री १०८ आचार्य कुलभूषणजी महाराज द्वारा सम्पादित देखा। इसे देखकर मेरी भी इच्छा इस कृति का हिन्दी अनुवाद करने की हुई और मैंने मराठी कृति को सामने रखकर हिन्दी अनुवाद करना प्रारम्भ किया और ४५ रोज में अनुवाद का कार्य पूर्ण कर दिया। अनुवाद का कार्य बड़ा मुश्किल होता है। बड़ी कठिनाईयाँ आती हैं। बहुत जगह श्लोकों का भावार्थ समझ में नही आया इसलिए मराठी अनुवाद का सहारा ले लिया है। इस मराठी कृति से हमको अनुवाद करने में बहुत ही सहायता प्राप्त हुई है इसके लिए हम ऋणी हैं। प्रेस कापी भी तैयार हो गई। अब प्रश्न आया प्रकाशन का। ग्रन्थ प्रकाशन में आर्थिक सहयोग की आवश्यकता होती है। अतः जिन दातारों ने इस ग्रन्थ के प्रकाशन में आर्थिक सहयोग दिया है उनको हमारा आशीर्वाद है।

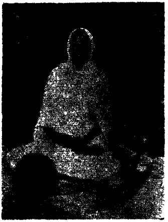
ग्रन्थमाला से इस महत्त्वपूर्ण प्रकाशन के लिए ग्रन्थमाला के प्रकाशन संयोजक परमगुरु भक्त संगीताचार्य श्री शान्तिकुमारजी गंगवाल व उनके सुपुत्र प्रदीपकुमारजी गंगवाल व सर्व परिवार का महत्त्वपूर्ण योगदान है। उनके कथनीय परिश्रम से ही इस ग्रन्थमाला से अल्पकाल में ही आठ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं उनका सर्व कार्य प्रशंसनीय हैं। ग्रन्थमाला के अन्य सभी इनके सहयोगी भी अच्छे लोग हैं। अतः इन सभी कार्यकर्ताओं को मेरा पूर्ण आशीर्वाद है।

यह ग्रन्थ घर-घर मे पहुँचे और प्रत्येक जैन बन्धु इस ग्रन्थ को पढ़कर लाभ प्राप्त करेगा तभी हमारा परिश्रम सार्थक हो पावेगा।

अनुवाद कार्य मे कुछ भी त्रुटि रह गई हो तो समस्त सरस्वती के उपासक-गण, विद्वत समाज मुझे छद्मस्त जानकर सुधार कर पढ़ें और मुझे क्षमा करें।

विशेष :—इस क्षेत्र पर आने वालों को अवश्य ही अपनी शुद्धि रखनी चाहिये। भाव सहित वंदना करनी चाहिये। क्षेत्र पर रहकर विशेष शुद्धि का विचार नहीं रखने से कुछ वर्षों से यात्रियों की लूटमार आदि वारदातें होने लगी हैं। अतः हमारा तन, मन, धन इस क्षेत्र पर शुद्ध रहना चाहिये।

—गणधराचार्य कुन्थुसागर



परमपूज्य
श्री १०५ गणिनी आर्यिका
विदुषीरत्न, सम्यग्ज्ञान शिरोमणि,
सिद्धान्त विशारद
विजयामती माताजी
का
मंगलमय शुभाशीर्वाद

★

ता० २६ जनवरी-गणतंत्र दिवस की शुभवेला में यहाँ पोन्नूरमलै में श्री विश्व-शान्ति इन्द्रध्वज महाविधान पूजा प्रारम्भ हुई जिसमें प्रतिदिन ४०० श्रावक-श्राविकाएँ अभिषेक पूजन में भाग लेते थे। इसी अवसर पर श्री शान्तिकुमार जी गंगवाल जयपुर से सपरिवार पधारे थे तथा एक दिन की पूजा के फलादि को ५००) देकर एवं ऐशान इन्द्र की बोली लेकर पूजा में सम्मिलित होकर पुण्यार्जन किया। आपकी देव, शास्त्र गुरुभक्ति विशेष अनुकरणीय है। इसी अवसर पर आपने परम पूज्य श्री १०८ गणधराचार्य श्री कुन्थुसागर जी महाराज द्वारा हिन्दी भाषा में अनुदित "सम्मेदशिखर माहात्म्यम्" (श्री लोहाचार्य द्वारा) की पाण्डुलिपि दिखलाई। तथा कुन्थु विजय ग्रन्थमाला से प्रकाशनार्थ आशीर्वाद चाहा। यह ग्रन्थ अत्यन्त प्राचीन अंगधारी आचार्य श्री द्वारा प्रणीत प्रमाणित है। हिन्दी हो जाने से सार्वजनिक उपयोगी रहेगा। यह मूल संस्कृत और कन्नड़ में व्याख्यायित था। आचार्य श्री ने हिन्दी अनुवाद कर जनहित का विशेष कार्य किया है।

ग्रन्थमाला के (प्रकाशन संयोजक) श्री शान्तिकुमारजी गंगवाल, प्रदीप जी एवं अन्य सभी कार्यकर्ताओं को मेरा पूर्ण आशीर्वाद है वे निरन्तर जिन-वाणी की सेवा, प्रकाशन, प्रचार कर सम्यग्ज्ञान प्राप्त करें और उसका फल सम्यक् चारित्र भी धारण करें।

१०५ आ० ग० विजयामती



प्रस्तावना

जैन उपासना में आत्मोपलब्धि के लिए नवदेव पूजन, पंच परमेष्ठी आराधना, तीर्थंकर स्तुति, रत्नत्रय चिंतन, जिन-वाणी, मनन और जिनतीर्थों की पूजा स्तुति का विशेष विधान है।

मानव जीवन में धर्मपूर्वक अर्थ का उपार्जन और संसार इन्द्रिय शरीर भोगों की अनित्यता का वास्तविक ज्ञान लेकर मोक्ष प्राप्ति का चतुर्वर्गीय संदेश दिया गया है। क्षण भंगुरता और नश्वरता ही संसार की परिभाषा है और परिवर्तन-प्रगति नूतनता ही उसकी विशेषता। कालद्रव्य के अनुसार प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है। किन्तु कई वस्तुएँ अनादि सिद्ध लोकमान्य और विशेष पूज्य, आराध्य एव अतिशयशाली हैं। श्री सम्मेद शिखर जी का नाम उनमें अग्रगण्य और निर्विवाद है।

लोक पुरुषाकार है। शिखर पर सिद्ध शिला और मोक्ष की स्थिति है। उसकी उपलब्धि मानव पर्याय में ही सम्भव है। उर्ध्वगमन और लोकाग्र भाग में स्थित होना, शुद्ध आत्मा का स्वभाव है, इस प्रकार यह जीव अपने शुद्ध-अविनाशी, अनंत सुख ज्ञान, चरित्र स्वरूप सहित लोक के शिखर भाग पर जाकर स्थित होता है।

सम्मेद शिखर तीर्थराज की स्थिति यही दर्शाती है। विचार और मार्ग दर्शन कराती है। यह तीर्थराज अनुपम, अलौकिक, अपरिवर्तनशील, अनेक दुर्लभ ऋद्धियों सिद्धियों से परिपूर्ण होने के साथ, शुद्ध परम चैतन्य का अनुभव कराने वाला, शांतिदायक एवं सुखदायक तो है ही, साथ में असंख्यात कोड़ा-कोड़ी भव्य जीवों का मुक्तिदाता भी है। वर्तमान काल के विंशति तीर्थंकरों की मोक्षस्थली भी है, यहाँ से अनेक गणधर, आचार्य, उपाध्याय, मुनि, श्रावक, साधु भव्य आत्माओं ने आत्मज्ञान पूर्वक मुक्ति प्राप्त की है और इस पर्वतराज के कण-कण को ऋद्धि सिद्धि दायक पवित्र और चमत्कारों से अतिशय शाली और गौरववान बनाया है।

कुछ लोग सम्मेद शिखर जी को पार्श्वनाथ हिल भी कहते हैं, यह तीर्थ जैन धर्मावलम्बी सभी सम्प्रदायों और मतावलंबियों द्वारा पूज्यनीय, वदनीय, उपास्य और अतिशयों से परिपूर्ण है।

"एक बार वंदै जो कोई, तांहि नरक पशु गति नहीं होई। अथवा भाव सहित वंदै जो कोई, तांहि नरक पशु गति नहीं होई।" यह उक्ति प्रसिद्ध होने के साथ-साथ यथार्थ और आत्म-बोध की ओर संकेत चिह्न एवं आत्मसुख एवं स्वस्थिति का भान भी कराती है।

प्रस्तुत ग्रन्थ सम्मेद शिखर पर प्राचीनतम उपलब्ध शास्त्र का राष्ट्रभाषा हिन्दी में प्रथम बार अनुवाद एवं प्रस्तुतीकरण है, जिसे, भाव, भाषा और ज्ञान चारित्र्य के मूर्तिमान स्वरूप १०८ पूज्य गणधराचार्य प्रवर श्री कुंथुसागर जी महाराज ने मनोयोग से अनुवादित कर जिन आगम जिनवाणी एवं हिन्दी संसार की अपूर्व सेवा की है, तथा सम्यक् दर्शन के प्रभावना अंग का मूर्तिमान स्वरूप प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत कृति रंगीन, मोहक, दुर्लभ, अनुपम चित्रों के साथ तीर्थंराज की महिमा का सुन्दर प्रस्तुतीकरण है। भारतीय साहित्य और हिन्दी भाषा एवं जैन वाङ्मय का परम सौभाग्य मैं कि यह कृति सुधी पाठकों के हाथों में है।

आत्मोपलब्धि के लिए मुमुक्षु विज्ञजन इसकी पूजा, महात्म्य का परिचय प्राप्त कर—पठन, पाठन, स्वाध्याय, चिंतन और तीर्थाटन एवं प्रचार प्रसार के द्वारा मानव पर्याय को धन्य करेंगे, ऐसी आशा हैं।

कुन्थु विजय ग्रन्थ माला का यह आठवाँ ग्रन्थ रत्न कोहनूर, कौस्तुममणि और कामधेनू की तरह पाठकों द्वारा अभिनन्दनीय होगा। इस अनुपम ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए इसके प्रबन्ध संपादक संगीताचार्य बी. काम. श्री शांतिकुमार जी गंगवाल एवं उनके सहयोगी विशेष साधुवाद के पात्र हैं।

अक्षयकुमार जैन

हिन्दी विभाग—गुजराती कला एव विधि महाविद्यालय.

इन्दौर— २० मई, १९८५



प्रकाशकीय

मुझे हार्दिक प्रसन्नता है कि हमारी ग्रन्थमाला समिति ने सात महत्त्वपूर्ण पुष्पों (लघुविद्यानुवाद, श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर अनाहत यंत्र-मंत्र विधि, तजोमान करो ध्यान, हुम्बुज श्रमण सिद्धान्त पाठावलि, पुनर्मिलन, श्री शीतलनाथ पूजा विधान, वर्षायोग स्मारिका) का प्रकाशन करवाने के बाद अष्टम पुष्प श्री सम्मेदशिखर माहात्म्यम् ग्रन्थ का प्रकाशन करवाने में सफलता प्राप्त की है।

प्रकाशन कार्य का निर्विघ्न पूरा होना, इस ग्रन्थमाला के लिए श्री जिनेन्द्र प्रभु की कृपा व पूज्य आचार्यों व साधुओं के मंगलमय शुभाशीर्वाद के साथ-साथ परमपूज्य श्री १०८ गणाचार्य कुन्थुसागरजी महाराज व श्री गणिनी १०५ आर्यिका विजयामती माताजी के शुभाशीर्वाद का फल मानता हूँ।

प्रस्तुत ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद श्री १०८ गणधराचार्य कुन्थुसागरजी महाराज ने बहुत ही कठिन परिश्रम से अल्प समय में किया है। श्री १०८ गणधराचार्य कुन्थुसागरजी महाराज स्वकल्याण के साथ-साथ परकल्याण का भी हमेशा ध्यान रखते हैं। महाराज का इस ग्रन्थ के प्रकाशन के लिये भी यही भाव रहा है, कि इस ग्रन्थ का हिन्दी में प्रकाशन होने से अधिक से अधिक लोग इसे पढ़ेंगे और पढ़ने से इस क्षेत्र की वंदना के महत्व को समझकर इस क्षेत्र की वंदना करके अपने मनुष्य जन्म को सफल करेंगे इस क्षेत्र की वंदना का कितना फल है यह किसी से छिपा हुआ नहीं है कहा भी है—

भाव सहित वंदे जो कोई। ताहि नरक पशु गति नहीं होई॥

जो भी प्राणी भाव सहित इस क्षेत्र की वंदना कर लेगा वह नरक और पशु गति को प्राप्त नहीं करेगा और ४९वें भव में निश्चय से मोक्ष को प्राप्त कर लेगा।

अतः गणधराचार्य महाराज ने जो यह महान कार्य किया है उसके लिए हम सभी कृतज्ञ हैं और उनके चरणकमलों में कोटि-कोटि बार नतमस्तक होकर नमोस्तु करते हैं। मैं आशा करता हूँ कि श्रावकबन्धु इस ग्रन्थ को पढ़कर अवश्य ही लाभ प्राप्त करेंगे।

श्री १०८ गणधराचार्य कुन्थुसागरजी महाराज बहुत ही तपस्वी व शान्त स्वभावी साधु हैं वर्तमान में आपके संघ मे आपके द्वारा ही दीक्षित १८ साधु हैं, जिनमें ११ मुनि ४ आर्यिका माताजी, २ क्षुल्लक महाराज व १ क्षुल्लिका माताजी है।

इतने विशाल संघ का संचालन कर सभी संघस्थ साधुओं को धर्म ध्यान मे लगाये हुए हैं वह आपकी संघस्थ साधुओं के प्रति वात्सल्य, करुणाभाव व शान्त परिणामो का परिचय देता है। समता वात्सल्य व निर्ग्रन्थता आपके विशेष गुण है। संघ मे कोई आरम्भ परिग्रह नही है। इतना विशाल संघ होते हुए भी संघ की व्यवस्था के लिये संघ के साथ कोई ब्रह्मचारी व ब्रह्मचारिणी नहीं है। यह बात विशेष उल्लेखनीय है सभी व्यवस्था श्रावकों पर निर्भर है। संघ आगम के अनुकूल विचरण कर रहा है अधिकतर युवा मुनि ही हैं। सभी कठिन तपस्या में लीन होकर आत्मसाधना में लगे हुए है। यह बहुत ही प्रसन्नता की बात है। गणधराचार्य महाराज के जो एक बार दर्शन कर लेता है वह कह उठता है

महाराज तुम्हारे दर्शन को दुनियां दोड़ी आती है।
कुछ बात अनोखी है तुम में जो औरों में नहीं पाती है।।

गणधराचार्य महाराज के बारे में आगे कुछ विशेष लिखना मेरे लिए उसी प्रकार अनुपयुक्त होगा जैसे सूर्य को दीपक दिखाना। गणधराचार्य महाराज वास्तव में त्याग व तप की मूर्ति हैं।

गणधराचार्य महाराज ने इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ को आठवें पुष्प के रूप में इस ग्रन्थमाला से प्रकाशित करवाने की स्वीकृति प्रदान की इसके लिये यह ग्रन्थमाला बड़ी आभारी हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन में लगभग ५०,०००) रु० का खर्चा हुआ है जिसमें २८११४) रु० दातारों की सहायता से प्राप्त हो सका है। मैं ग्रन्थमाला की ओर से इन सभी दातारों को बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूँ अन्य दातारों से भी निवेदन करता हूँ कि हमें अधिक से अधिक सहयोग प्रदान करें।

ग्रन्थमाला के प्रकाशन कार्यों में श्री लल्लूलालजी जैन (गोधा), श्री मोतीलाल जी हाड़ा, जैन संगीत कोकिला रानी एवं आध्यात्मिक संगीत विदुषी बहिन श्रीमती कनकप्रभाजी हाड़ा, श्रीमती मेमदेवी गंगवाल, श्री लिखमीचन्दजी बख्शी, आदि महानुभावों का बड़ा आभारी हूँ क्योंकि ये सभी समय-समय पर मेरे अनुरोध पर कार्य में सहयोग प्रदान करते रहते है। इसके अलावा अन्य सभी महानुभावों का जिनका सहयोग मिला है उन सभी का मैं बड़ा आभारी हूँ और उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

मेरी धर्मपत्नि श्रीमती मेमदेवी गंगवाल व सुपुत्र श्री प्रदीपकुमार गंगवाल का भी बड़ा आभारी हूँ कि जिन्होंने मुझे गृहकार्य से मुक्त रखकर प्रकाशन कार्य को करने मे पूर्ण सहयोग प्रदान किया है। श्री प्रदीपकुमार गंगवाल अपने अध्ययन कार्य में व्यस्त होते हुए भी महाराज व माताजी के आशीर्वाद से ग्रन्थमाला के लिए की जा रही सेवाएँ काफी प्रशंसनीय हैं।

आदरणी प्रो. अक्षयकुमारजी जैन इन्दौर का भी बड़ा आभार व्यक्त करते हुए बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूँ कि आपने बहुत ही सुन्दर शब्दों में ग्रन्थराज की प्रस्तावना लिखने की कृपा की है। प्रो. अक्षयकुमारजी जैन बहुत ही उच्चकोटि के विद्वान हैं। जिसका अन्दाज आप स्वयं ही ग्रन्थ में छपी प्रस्तावना को पढ़कर लगा सकते हैं। आशा है आपका आशीर्वाद, सहयोग, मार्गदर्शन भविष्य में भी इसी प्रकार का मिलता रहेगा।

परमपूज्य श्री १०८ आचार्य विमलसागरजी महाराज, श्री १०८ आचार्य धर्मसागरजी महाराज, श्री १०८ गणधराचार्य कुन्थुसागरजी महाराज व श्री १०५ गणिनी आर्यिका विजयामती माताजी का भी बड़ा आभारी हूँ कि आपने ग्रन्थ प्रकाशन कार्य के लिए शुभाशीर्वाद प्रदान करने कृपा की है। अतः सभी के चरण-कमलों में शतशत वन्दन अर्पित करता हूँ।

ग्रन्थमाला समिति के द्वारा प्रकाशन कार्यों को बहुत ही सावधानी पूर्वक किया गया है, फिर भी त्रुटियों का रहना स्वाभाविक है। मेरा स्वयं का अल्पज्ञान है और पुस्तक में प्रकाशित सामग्री मेरे सामान्यज्ञान की परिधि के बाहर है। परमपूज्य श्री १०८ गणधराचार्य कुन्थुसागरजी महाराज की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए मैंने यह विकट कार्य किया है। अतः साधुजन, विद्वतजन व पाठकगणों से नम्र-निवेदन है कि त्रुटियों के लिए क्षमा करें।

ज्ञानी पण्डित हूँ नहीं, प्रकाशन का नहीं ज्ञान।
अशुद्धि त्रुटि होवे जहाँ शोध पढ़े श्रीमान ।।

जैन मित्र, जैन गजट, जैन दर्शन, करुणादीप, महिला जागरण आदि पत्रों के सम्पादक महोदयों को भी उनके ग्रन्थमाला के लिए दिये गये सहयोग के लिए भी बड़ा आभारी हूँ और उनके सद्‌योग के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूँ। आशा है आप सभी का सहयोग ग्रन्थमाला के प्रकाशनों के प्रचार में हमेशा प्राप्त होता रहेगा।

अन्त में परमपूज्य श्री १०८ गणधराचार्य कुन्थुसागरजी महाराज की आज्ञा से यह ग्रन्थ विमोचन हेतु परमपूज्य श्री १०८ आचार्यरत्न धर्मसागरजी महाराज के करकमलो मे समर्पित करते हुए आज मैं अतीव प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ।

पुन. आशीर्वाद की भावना के साथ
संगीताचार्य
परम गुरुभक्त प्रकाशन संयोजक
शान्तिकुमार गंगवाल
[बी. कॉम.]

दिनांक १४-७-८५



दिनांक १४-७-८५ को श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र लूणवां (राजस्थान) में आयोजित श्री सम्मेद शिखर माहात्म्यम् ग्रंथ के विमोचन समारोह पर लिये गये चित्रों की झलक



श्री सम्मेद शिखर माहात्म्यम ग्रंथ की प्रति विमोचन करने हेतु भेंट करते हुए ग्रंथमाला के प्रकाशन संयोजक शान्तिकुमार गंगवाल व ग्रंथ का विमोचन करते हुए परम पूज्य श्री १०८ आचार्यरत्न धर्म सागरजी महाराज



उपस्थित जन समुदाय को ग्रंथमाला के द्वारा किये गये कार्यों व प्रकाशनों के बारे में जानकारी देते हुए प्रकाशन संयोजक शान्तिकुमार गंगवाल



समारोह में केशलुंचन करते हुए परम पूज्य श्री १०८ आचार्यरत्न धर्म सागरजी महाराज व ग्रंथमाला के द्वारा किये गये कार्यों की प्रशंसा करते हुए समाजरत्न पण्डित लाडली प्रशादजी (सवाई माधोपुर) पीछे की पंक्ति में खड़े हैं ग्रंथमाला के सहयोगी जैन संगीत कोकिला रानी श्रीमती कनकप्रभाजी हाडा, मोतीलालजी हाडा, प्रकाशन संयोजक शान्तिकुमार गंगवालव क्षेत्र के अध्यक्ष श्री पूनमचन्दजी गंगवाल



समारोह में भक्ति संगीत का कार्यक्रम प्रस्तुत करते हुए जैन संगीत कोकिला रानी एवं आध्यात्मिक संगीत विदुषी बहिन श्रीमती कनकप्रभा जी हाडा

ॐ

॥ ॐ नमः श्रीपार्श्वनाथाय ॥

श्रीदेवदत्तकविविरचितम्

श्रीसम्मेदशिखरमाहात्म्यम्

प्रथमोऽध्यायः

ध्यात्वा यत्पदपाथोजं भव्याः संसारपारगाः ।
सारात्सारं सदाधारं तमर्हन्तं नमाम्यहम् ॥१॥

जिनके चरण-कमलों का हृदय से चिन्तन करके भव्य जीव संसार-समुद्र के दूसरे किनारे पर पहुँचते हैं, उन अरहन्त भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ। ये अरहन्त भगवान् सज्जन पुरुषों के आधार हैं अर्थात् उन भव्य जीवों का दुर्गति में पतन नहीं होता जो अरहन्त भगवान् का आधार (शरण) लेते हैं, ये सर्व पदार्थों में उत्तम सार हैं ॥१॥

गुरुं प्रणेशं वाणीं च ध्यात्वा स्तुत्वा प्रणम्य च ।
सम्मेदशैलमाहात्म्यं प्रकटीक्रियते मया ॥२॥

जिन्होंने भव्यजीवों को उपदेश देकर गुरु के नाम को सार्थक किया है ऐसे गौतमादि गणधरों को व जिनवाणी को हृदय से ध्या करके, उनके गुणों की स्तुति करके व नमस्कार करके मैं (देवदत्त कवि) सम्मेदगिरि क्षेत्र के माहात्म्य को कहता हूँ ॥२॥

जिनेन्द्रभूषणयतिर्मुनिर्धर्मपरायणः ।
तस्योपदेशात्सम्मेदवर्णने मतिरुत्सुका ॥३॥

दिगम्बर जैन मुनि श्री जिनेन्द्रभूषण, जो मुनि धर्म का पालन करने में तत्पर हैं, उनके उपदेश को सुनकर मेरी बुद्धि सम्मेदशिखरजी क्षेत्र का वर्णन करने में उत्साहित हुई है ॥३॥

भट्टारकपदस्थायी स यतिः सत्कविप्रियः ।
भवाब्धितारणायेह सत्कथापोतसज्जकः ॥४॥

जो भट्टारक पद पर विराजमान हैं तथा उत्तम-उत्तम कवि भी जिनकी प्रशंसा करते हैं—ऐसे श्री जिनेन्द्र भूषण यति संसार-समुद्र से पार होने के लिए इस उत्तम कथा रूपी नाव के सिद्धहस्त नाविक हैं ॥४॥

माहात्म्यपूर्तिसिद्ध्यर्थं वन्दे सिद्धगणं हृदि ।
सद्बुद्धिं ते प्रयच्छन्तु वाणीं मे काव्यरूपिणीम् ॥५॥

यह 'सम्मेदगिरि माहात्म्य' निर्विघ्न पूर्ण हो—इसके लिए मैं (कवि) सिद्ध-परमेष्ठी के समूह का हृदय में ध्यान करता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि मुझे सद्बुद्धि व काव्यरूपी वाणी प्रदान करें ॥५॥

सम्मेदशैलवृत्तान्तो महावीरेण भाषितः ।
गौतमं प्रति भूयः स लोहःचार्येण धीमता ॥६॥
तत्सद्वाक्यानुसारेण देवदत्ताख्यसत्कविः ।
सम्मेदशैलमाहात्म्यं प्रकटीकुरुतेऽधुना ॥७॥

सम्मेदशिखरजी क्षेत्र का माहात्म्य श्री १००८ भगवान् महावीर प्रभु ने गौतम गणधर को कहा, फिर बुद्धिशाली एकाङ्गपाठी लोहाचार्य ने भव्यजीवों को कहा. बुद्धिशाली सार अब देवदत्त नामक इस सत्कवि द्वारा 'सम्मेदगिरि माहात्म्य' प्रकट किया जाता है ॥६-७॥

तत्रोत्तमे शैलवरे कूटानां विंशतिर्वरा ।
तत्रस्थान्सर्वदा वन्दे तत्प्रमाणाञ्जिनेश्वरान् ॥८॥

सम्पूर्ण सिद्धक्षेत्र पर्वतों में श्रेष्ठ इस सम्मेदगिरि पर बीस पर्वत रूप श्रेष्ठ शिखर हैं और वहाँ से उसी प्रमाण में बीस जिनेश्वर मोक्ष को गये हैं – उनको मैं (कवि) नित्य ही वन्दन करता हूँ ॥८॥

अजितादिमहासिद्धतीर्थकृद्विंशतिं हृदि ।
ध्यात्वा पृथक्पृथग्वक्ष्ये कूटनामान्यनुक्रमात् ॥९॥

अजितादिक महासिद्ध बीस तीर्थंकरों को मैं हृदय में ध्या करके पृथक्-पृथक् टोंकों (कूटों) के नाम क्रमपूर्वक कहता हूँ ॥९॥

यस्य सिद्धस्य यत्कूटं तत्तेन स्यादधिष्ठितम् ।
ततस्तन्नाम तत्कूटनाम सम्भाष्यते मया ॥१०॥

जिस तीर्थंकर का जो सिद्धि-स्थान है (कूट है), वही उनका अधिष्ठित-स्थान हुआ–ऐसा समझें। मैं उन जिनेश्वरों के नाम-पूर्वक, तत्संबंधी कूट (स्थान) का नाम क्रमानुसार कहूँगा ॥१०॥

अजितेशस्य यः कूटः स सिद्धवर उच्यते ।
दत्तातिधवलस्तद्वच्छम्भवस्य विदुर्बुधाः ॥११॥

अजितनाथ जिनेश्वर का जो कूट है उसका नाम 'सिद्धवर कूट' है और संभवनाथ जिनेश्वर के कूट का नाम विद्वज्जन 'दत्तधवल' कहते हैं ॥११॥

अभिनन्दनकूटो यः स आनन्द इतीरितः ।
सुमतीशस्याविचलः सदाचलरमालयः ॥१२॥

अभिनन्दन जिनेश्वर के मोक्ष स्थान का नाम 'आनन्द कूट' है और सुमति तीर्थंकर का कूट नित्य ही निश्चल रमा–लक्ष्मी का स्थान होने से 'अविचल' है ॥१२॥

पद्मप्रभाभिधानस्य मोहनो नाम कीर्त्यते ।
सुपार्श्वनाथस्य तथा प्रभाकूटः समिष्यते ॥१३॥

चन्द्रप्रभस्य ललितघननामा स वर्णितः ।
सुप्रभः पुष्पदन्तस्य वैद्युतः शीतलस्य च ॥१४॥

श्रेयसः सङ्कुलस्तद्वद्विमलो वीरसङ्कुलः ।
अनन्तस्य स्वयम्भूश्च धर्मो दत्तवरस्तथा ॥१५॥

पद्मप्रभ भगवान के कूट का नाम 'प्रभाकूट' कहा जाता है । चन्द्रप्रभ जिनेश्वर के कूट को 'ललितघन कूट' के नाम से वर्णित किया है और पुष्पदन्त के कूट को 'सुप्रभ कूट' तथा शीतल जिनेश्वर के कूट को 'वेद्युत कूट' कहा है । श्रेयांस जिनके कूट को 'संकुल कूट', विमलप्रभु के कूट को 'वीर संकुल कूट', अनन्तनाथ का 'स्वम्भू कूट' और धर्मनाथ के कूट का 'रत्नवर कूट' नाम है ॥१३-१५॥

प्रभासी शान्तिनाथस्य कौन्थो ज्ञानधरः स्मृतः ।
नाटकश्चारनाथस्य मल्लिनाथस्य सम्बलः ॥१६॥

मुनिसुव्रतकूटस्य निर्जराख्यः स्मृतो बुधैः ।
सुप्रभासी नमेः कूटः सुभद्रः पार्श्वकप्रभोः ॥१७॥

शांतिनाथ के कूट को 'प्रभासी' तथा कुन्थुनाथ के कूट को 'ज्ञानधर' नाम से स्मरण किया जाता है । अरनाथ के कूट को 'नाटक' और मल्लिनाथ के कूट को 'संबल' कहते

हैं। मुनिसुव्रतनाथ के कूट को 'निर्जर कूट' के नाम से स्मरण किया किया गया है। तथा नमिनाथ के कूट को 'सुप्रभासी' व पार्श्वनाथ के कूट को विद्वानों ने 'सुभद्र कूट' कहा है ॥१६-१७॥

विंशकूटा इमे नित्यं ध्येयाः सम्मेदभूभृतः ।
स्वस्वस्वामिसमायुक्ता ध्यानात्सर्वार्थसिद्धिदाः ॥१८॥

श्री सम्मेदशिखर पर्वत के ये २० कूट नित्य ही ध्यान करने योग्य हैं। अपने-अपने स्वामी (सिद्ध) के नाम से युक्त ये कूट ध्यान करने वालों को सर्व इष्ट पदार्थों की प्राप्ति कराने वाले हैं ॥१८॥

इदानीं चालितः सङ्घो यैः पूर्वं भव्यसाधुभिः ।
तेषां नामानि वक्ष्येऽहं शृणुताखिलसज्जनाः ॥१९॥

प्रथमः सगरः प्रोक्तो मघवांश्च ततः परम् ।
सनत्कुमार आनन्दः प्रभाश्रेणिक ईरितः ॥२०॥

पूर्वकाल में जिन-जिन भव्य सत्पुरुषों ने इस सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र की यात्रा करने के लिए संघ निकाला था, उनके नाम अब मैं कहता हूँ। हे सज्जनो ! तुम सुनो। प्रथम संघपती का नाम सगर था, दूसरे संघपती का नाम मघवान् था। तीसरा संघपती सनतकुमार, चौथा आनन्द व पाँचवां संघपती प्रभाश्रेणिक था ॥१९-२०॥

छोतको ललितादिश्च ततः कुन्दप्रभस्ततः ।
शुभश्रेणिकदत्ताविचरौ सोमप्रभस्ततः ॥२१॥

सुप्रभश्च ततश्चारुश्रेणिको भावदत्तकः ।
तथाविचल आख्यात आनन्दश्रेणिकस्तथा ॥२२॥
सुन्दरो रामचन्द्रश्चामरश्रेणिक उच्यते ।
सुवरान्ता इमे भव्याः सङ्घाधिपतयः स्मृताः ॥२३॥

छटवें संघपती का नाम ललितद्योतक, सातवें का नाम दत्त और आठवें सघपती का नाम कुन्दप्रभ था। नवमें का नाम दत्तश्रेणिक, दसवें का चरश्रेणिक तथा ग्यारहवें का नाम सोमप्रभ था। उसके बाद अविचल नामक बारहवाँ संघपती था। तेरहवें संघपती का नाम अविचल और चौदहवें संघपती का नाम आनन्द श्रेणिक था। पन्द्रहवें का नाम सुप्रभ, सोलहवें का चारुश्रेणिक, सत्रहवें का भवदत्त, अठारहवें का सुन्दर रामचन्द्र तथा उन्नीसवें का नाम अमरश्रेणिक था। बीसवाँ संघपती श्रेणिक था ॥२१-२३॥

एकैकस्मिंस्तत्र कूटे मुक्ताः सिद्धा ह्यनन्तकाः ।
सर्वःशैलवरस्तस्मादयं द्वादशयोजनः ॥२४॥

इस क्षेत्र के एक-एक टोंक से अनन्त योगिराज मुक्ति को गये हैं ये श्रेष्ठ पर्वत बारह योजन प्रमाण हैं अर्थात् बारह योजन प्रमाण में विस्तरित हैं ॥२४॥

भव्या हि तत्र यात्रार्हा अभव्या नैव संस्मृताः ।
भव्या भाविशिवाः प्रोक्ताः क्वचिन्मुक्ता न तत्पराः ॥२५॥

इस श्रेष्ठतम क्षेत्र की यात्रा भव्यजीवों को ही होती है, अभव्य जीवों को कभी भी इस क्षेत्र की यात्रा नहीं होती। जिसको भाविकाल में मुक्ति होने वाली है उसको भव्य कहते हैं और जिसको कभी भी मुक्ति प्राप्त नहीं होगी उन्हें अभव्य कहते हैं ॥२५॥

वदन्ति मुनयश्चैवं केवलज्ञानसंयुताः ।
भव्यराशेः कोऽपि पापिष्ठस्तत्र तिष्ठति ॥२६॥

एकोनपञ्चाशज्जन्ममध्ये सोऽपि प्रमुच्यते ।
एकेन्द्रियेभ्यः संसार आपञ्चेन्द्रियजन्तवः ॥२७॥

ये तत्र भागादुत्पन्ना नानानामाकृतिप्लुताः ।
गणितव्यं भव्यराशेश्चान्येषां तत्र नोद्भवः ॥२८॥

भव्य जीवों की गिनती में आने वाले जीव कैसे भी पाप करने वाले क्यों न हों, किन्तु इस क्षेत्र की यात्रा करते ही उन्चास (४९) भवों में नियम से मोक्ष जायेंगे – ऐसा केवल-ज्ञानियों व मुनियों ने कहा है।

विशेष बात यह है कि एकेन्द्रिय जीव से लेकर पंचेन्द्रिय जीव पर्यन्त जो नाना प्रकार की आकृति को धारण कर व नाना प्रकार के जीव इस क्षेत्र पर पैदा होने वाले हैं–वे सब भव्य की गिनती में ही आते हैं। इस क्षेत्र पर अभव्य का जन्म ही नहीं होता। इस क्षेत्र की सीमा में आ भी नहीं सकता है अभव्य जीव ।२६-२८॥

क्षारं क्षारं खनौ प्रोक्तमिष्टं मिष्टं खनौ जलम् ।
रत्नानामेव सम्भूतिः सदा धातुः खनौ स्मृतः ॥२९॥

तथैव जीवः संसारी ये भव्याः कर्मबन्धनात् ।
भूम्यां तदाकरीभूतः सम्मेदाख्यो नगेश्वरः ॥३०॥

जैसे प्रत्येक खान से क्षार पदार्थ व क्षार पानी उत्पन्न होता है, वैसे ही प्रत्येक खान से मीठा जल भी उत्पन्न होता है। प्रत्येक खान से जैसे धातु उत्पन्न होती है, वैसे प्रत्येक खान से रत्न भी उत्पन्न होते हैं। उसी प्रकार कुछ भव्य जीव संसार से

कर्मबन्धन-रहित होने वाले हैं उन भव्य जीवों के उत्पन्न होने के लिए श्रेष्ठ पर्वतराज सम्मेदगिरि क्षेत्र खान के समान है ॥२६-३०॥

उद्धारकाः स्वसङ्घस्य प्रभूता यात्रिकाः पुरा ।
तत्पूजकास्तथा चोक्तास्तान्वक्ष्ये शृणुताधुना ॥३१॥

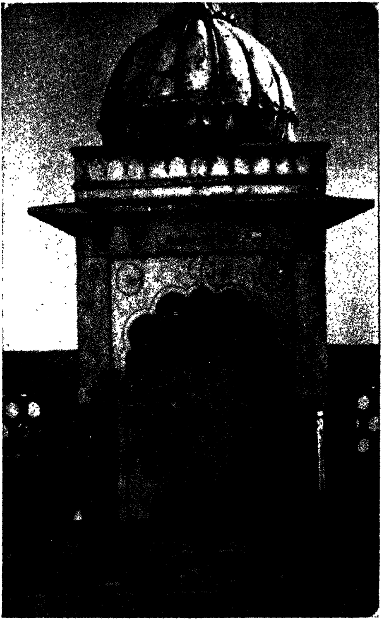
सम्मेदगिरि क्षेत्र की यात्रा करके अपने संघ का उद्धार करने वाले अनेक यात्री पहले हो गये हैं। वे इस क्षेत्र के पूजक थे–आराधक थे, इसलिए उनका वृत्तान्त अब मैं कहता हूँ, उसे सुनिये ॥३१॥

भरतेन कृता पूर्वं यात्रैषा चक्रवर्तिना ।
सगरेण तथा भक्त्या सिद्धानन्दरसेप्सुना ॥३२॥

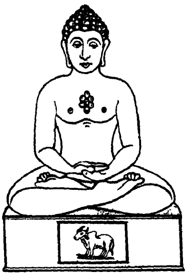
मुक्ति-सुख की इच्छा रखने वाले सगर चक्रवर्ती ने इस क्षेत्र की यात्रा की थी। उसी प्रकार भरत चक्रवर्ती ने भी इस अनादि-सिद्ध क्षेत्र की यात्रा की थी ॥३२॥

ततो यतीनामार्याणां श्रावकाणां ततः पुनः ।
श्राविकाणां च सम्मानं कृत्वा श्रेणिकभूपतिः ॥३३॥
महावीरं स पप्रच्छ महावीर दयानिधे ।
सम्मेदयात्राभावोऽद्य वृद्धो मम हृदि ध्रुवम् ॥३४॥
अब्रवीत्तं महावीरः शृणु श्रेणिक-भूपते ।
यात्राकालोऽधुना ते न मया संवीक्ष्यते शुभः ॥३५॥

उसके बाद मुनि-आर्यिका, श्रावक-श्राविका का पुनः सम्मान करके श्रेणिक राजा ने महावीर प्रभु से कहा–दयानिधि ! मेरे हृदय में निश्चय से आज यात्रा करने का भाव उत्पन्न हुआ है।



आदिनाथ भगवान् की-टोंक



ऋषभदेव जिन सिद्ध भये, गिरि कैलाश से जाय ।
मन वच तन कर पूजहूँ, थापित चरण संजोय ।

ओ३म् ह्रीं श्री ऋषभनाथ जिनेन्द्रादि १० हजार मुनि, मुनि कैलाश पर्वत से सिद्ध भए तिनके चरणारविन्द को मेरा मन वचन काय से बारम्बार नमस्कार हो जलादि अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।।१।।

तब केवलज्ञान ही लोचन है जिनके ऐसे श्री वीर प्रभु ने कहा–
हे राजन ! जो तुम्हारा यह यात्रा-काल है, वह इस समय तुम्हारे
लिए शुभ नहीं है – ऐसा मुझे लगता है ।।३३-३५।।

प्रथमे नरके स्थानं निश्चयात्ते भविष्यति ।
श्रुत्वाऽप्रीतिप्रभोर्वाक्यं सोत्कण्ठवशतो नृपः ।।३६।।

यात्रोद्योगं चकारासौ सम्मेदाख्यगिरिं प्रति ।
पर्वतोपरि यक्षोऽभूद् भूतको नामतो महान् ।।३७।।

दशलक्षव्यन्तराणां भूपतिः स महाबलः ।
चालितः श्यामपवनो दुस्तरस्तिमिराकृतिः ।।३८।।

दृष्ट्वा तमुपसर्गं स राजा यात्रां न्यवारयत् ।
तस्यासोच्चेलना राज्ञी सा तमाह प्रियं नृपम् ।।३९।।

महाराज ! महावीरकेवलज्ञानिनो वचः ।
सत्यमेवाचलं मन्ये ते यात्रावसरो न हि ।।४०।।

हे राजन ! निश्चय से तुम्हारा जन्म पहले नरक में होने वाला है – ऐसे अप्रीतियुक्त भगवान महावीर के वचन सुनकर उत्कंठा में राजा श्रेणिक ने सम्मेदशिखर क्षेत्र की यात्रा करने का उद्योग किया अर्थात् यात्रा के लिए प्रयाण किया। तब सम्मेदगिरि क्षेत्र का अधिपति एक भूतक नामक यक्ष था। वह दस लाख व्यंतरों का अधिपति व बड़ा बलवान था। उसने आंधी से युक्त, असह्य व श्यामवर्ण की पवन प्रारम्भ कर दी। तब इस प्रकार का बड़ा उपसर्ग देखकर राजा श्रेणिक ने यात्रा का विचार बदल दिया। तब महारानी चेलना ने राजा से कहा– महाराज ! केवलज्ञानी के वचन कभी झूठ नहीं होते, वे सत्य व अचल होते हैं। इस समय आपको इस क्षेत्र की यात्रा नहीं हो सकती है ।।३६-४०।।

अथ श्रेणिकवृत्तान्तः कथ्यते कविनाधुना ।
लोहाचार्यानुक्रमेण शृणुध्वं साधवो जनाः ॥४१॥

अब राजा श्रेणिक के वृत्तान्त को कहता हूँ, जिसे लोहाचार्य ने कहा था। हे साधु पुरुषो ! उसे सुनो ॥४१॥

लक्षयोजनविस्तारो वृत्ताकारो महीतले ।
जम्बूद्वीपो महानास्ते साधुरत्नाकरस्सदा ॥४२॥
सुदर्शनश्च तन्मध्ये उन्नतो लक्षयोजनः ।
तत्स्कन्धो दशसाहस्रयोजनैर्भुवने स्थितः ॥४३॥
भूमेरुपर्यसौ　　मेरुस्तद्वृत्तन्निकटस्थितैः ।
दृष्टो*नवतिसाहस्रं योजनैस्तुङ्गतां गतः ॥४४॥

इस मध्यलोक में पृथ्वी पर एक लाख योजन विस्तार वाला थाली के आकार का गोल व बड़ा जम्बूद्वीप है। वह सत्पुरुष-रत्नों की खान है। इस जम्बूद्वीप के मध्य में एक लाख योजन ऊँचा मेरुपर्वत है। वह मेरुपर्वत जमीन के अन्दर दस हजार योजन और भूमि के ऊपर ९० हजार योजन भुवन में स्थित है। उसके निकटस्थ जो हैं, उन्होंने उसे देखा है अर्थात् महाज्ञानी तीर्थंकर, गणधरादिकों ने उसके स्वरूप को जाना है ॥४२-४४॥

षट् तत्र कुलशैलाः स्युस्सरितश्च चतुर्दश ।
शून्यरन्ध्रैकभागैश्च द्वीपस्य गुणितैः क्रमात् ॥४५॥
एकभागेन षड्विंशादधिकैः पञ्चभिः शतैः ।
योजनैः षट्कलायुक्तैः प्रमितं सर्वतः शुचि ॥४६॥
भरतं　क्षेत्रमाख्यातं　कर्मस्थलमनुत्तमम् ।
शुभाशुभक्रमो यत्र सुखितो दुःखितस्तथा ॥४७॥

---

* एकसहस्रयोजनानि भूमिमध्ये स्थितः नवनवतिसहस्रयोजनानि बहिरुन्नतः । इति सर्वार्थसिद्धयादिग्रंथेषु ॥

एकोनविंशतिकला योजनस्य च या कृताः ।
तास्वेव षट्कलाधिक्यं बोध्यं तेन ततः परम् ।।४८।।

इस जम्बूद्वीप में हिमवान आदिक छह कुलाचल पर्वत हैं तथा गंगा-सिंधु आदिक चौदह महानदियाँ हैं। इस जम्बूद्वीप के १९० भाग करके उसमें १ भाग लें, अर्थात् ५२६ योजन व एक योजन का उन्नीस भाग करके उसमें से छह भाग लें। इस प्रकार ५२६–६/१९ योजन भरत क्षेत्र का प्रमाण है। यह भरत क्षेत्र कर्मभूमि है। यहाँ जीव शुभाशुभ कर्म करके अर्थात् पुण्य-पाप करके सुखी व दुखी होते हैं। इस प्रकार इस भरत क्षेत्र का प्रमाण ५२६ योजन ६/१९ भाग है ।।४५-४८।।

मगधाख्यस्तत्र देशो वर्ण्यतेऽखिलपण्डितैः ।
यत्र भान्ति महारामा मनोहरणतत्पराः ।।४९।।
येष्वाम्रबीजपूराद्या नानावृक्षाः स्म भान्ति वै ।
भूषिताः फलिताः कुञ्जे विहङ्गकुलशब्दिताः ।।५०।।

इस भरत क्षेत्र में स्थित मगध देश की सर्व विद्वान् प्रशंसा करते हैं। इस देश में बड़े-बड़ व सुन्दर बगीचे हैं, जो सबका मनहरण करने में तत्पर हैं। इन बगीचों में आम्र, बीजपुर (बिजौरा) आदि वृक्ष शोभित थे और कोई वृक्ष पुष्पों से सुन्दर दिखाई देते थे तो कोई फलों के गुच्छों से सहित थे और उन वृक्षों पर पक्षी मधुर शब्द करते थे ।।४९-५०।।

तस्मिन्देशे राजगृहं नामतः पुरमुत्तमम् ।
द्वादशैर्नवभिस्तद्वद्योजनैर्लम्बितायतम् ।।५१।।

उस देश में बारह योजन लम्बा और ९ योजन चौड़ा एक राजगृह नगर अत्यन्त सुन्दर था ।।५१।।

श्रेणिको नाम राजाभूत्तत्पुरस्यैव रक्षकः ।
चेलनाख्या तस्य राज्ञी रूपयौवनशालिनी ॥५२॥

सर्वलक्षणसम्पन्ना शीलादिगुणसंयुता ।
धर्मशीला शुद्धदेहा प्रियचेतोहरा गुणैः ॥५३॥

इस नगरी के राजा का नाम श्रेणिक था और वही राजा इस नगर का रक्षक था अर्थात् नगर के लोग समृद्ध बनें – इसलिए वह अच्छी तरह प्रजा की रक्षा करता था। उस राजा की रानी का नाम चेलना था। रानी चेलना, सामुद्रिक शास्त्रों में वर्णित रूपमती नारियों के समस्त लक्षणों से युक्त सुन्दर व रूपवती युवती थी और शील, सत्य-भाषण, विनय आदि गुणों से सुशोभित थी। धर्मशील होने से उसके शरीर में पवित्रता आ गई थी। अपने सुगुणों के कारण चेलना ने राजा श्रेणिक का मन-हरण कर लिया था ॥५२-५३॥

यस्य राज्ञो यशः शुभ्रं जगत्प्रथितमुत्तमम् ।
ग्रन्थेषु कविभिः सर्वैः स्ववाग्भिः समुदीरितम् ॥५४॥

इस राजा का उत्तम व शुभ्र यश सारे जगत में फैला हुआ था, उनका यह यश कविजनों द्वारा अपने ग्रन्थों में अपने वचनों से प्रशंसित किया गया था ॥५४॥

पत्तनान्तर्बहिर्यस्य भान्त्यारामाः समन्ततः ।
येष्वाम्रबीजपूराश्च तिन्दुकद्रुमराजयः ॥५५॥

श्रीबिल्वदाडिमास्तद्वद्रम्भाद्याः फलशालिनः ।
खर्जुराः सालतालाश्च पनसाश्च तथापरे ॥५६॥

तिलकाः कोविदाराश्च देवदारुद्रुमाः शुभाः ।
तमालाश्चम्पकाश्चैव बकुलाः क्रमुकद्रुमाः ॥५७॥

नारिकेलादयस्तद्वद्बहवो भूरुहोत्तमाः ।
बभुः सर्वर्तुफलदा हिमच्छायाहतातपाः ।।५८।।

राजगृह नगर के बाहर चारों ग्रोर सुन्दर बगीचे शोभित होते थे। वहाँ पर ग्राम्रवृक्ष, बिजौरा, नीबू ग्रादि वृक्षों की पंक्तियाँ शोभित थीं ग्रौर इसी प्रमाण बेल, दाड़िम (ग्रनार), केला ग्रादि वृक्ष फलों के गुच्छों से सहित थे। खजूर, साल, ताल, कटहल, तिलक, कोविदार, देवदारु ग्रादि वृक्ष दूसरे वृक्षों को ग्रपेक्षा ग्रधिक शोभा को प्राप्त हो रहे थे। तमाल, चम्पक, बकुल, सुपारी, नारियल ग्रादि ग्रनेक वृक्ष सभी ऋतुग्रों में फल देने वाले थे। वे ग्रपनी छाया से ग्रीष्म ऋतु की गर्मी को शांत कर रहे थे ।।५५-५८।।

स्थलपङ्कजमालाश्च मालत्यो यूथिकास्तथा ।
केतकादिसमायुक्ता नृपारामा मनोहराः ।।५९।।
नानापुष्पसुगन्धाढ्याः सुधास्वादलसत्फलाः ।
मालाकारप्रयत्नैश्च वर्धितास्ते सदा बभुः ।।६०।।

उस उपवन में स्थल-कमल (गुलाब) की पंक्तियाँ, मालती, केवड़ा ग्रादि ग्रनेक सुगन्धित पुष्पलतायें दिखाई देती थीं, जिससे कि वह बगीचा मनोहर दिखाई देता था। नाना प्रकार के पुष्पों की सुगन्ध वहाँ पर फैली हुई थी। ग्रमृत के स्वाद-युक्त फल शोभित थे। इस समस्त बगीचे को मालियों ने बड़े प्रयत्नों से बढ़ाया था व ग्रहोरात्र इस बगीचे की शोभा वृद्धिगत हो रही थी ।।५९-६०।।

कूपाः समुद्रगम्भीरा वापिकाश्च तथैव हि ।
विहङ्गपथिकोत्कृष्टतृषातपविनाशकाः ।।६१।।

उस नगर के बाहर कुआ व वापिकादि समुद्र के समान गंभीर थे। राहगीर व पक्षियों की तृषा (प्यास) को व गर्मी से होने वाले कष्ट को दूर कर रहे थे ।:६१।।

तटाका महदाकारगम्भीरजलपूरिताः ।
प्रफुल्लनानाकमला गुञ्जद्भ्रमरशब्दिताः ।।६२।।

जलचारिविहङ्गैश्च पुलिने कृतकेलयः ।
उच्चलर्झषशोभाढ्या राजन्ते स्म पुराद्बहिः ।।६३।।

और भी, राजगृह नगर के बाहर अनेक बड़े-बड़े तालाब थे, गम्भीराकार और पानी से भरे हुए। वे प्रफुल्लित नाना प्रकार के कमलों से सहित व भ्रमरों की गुञ्जार से सहित थे। उन तालाबों के किनारे पर जलचर पक्षी क्रीड़ा कर रहे थे और मछलियों के उछलने से वे तालाब शोभित हो रहे थे ।।६२-६३।।

प्राकारो भूपतेस्तुङ्गस्तत्र भाति स्म चाद्भुतः ।
शिखरैः स्वैर्य आकाशं स्पृशतीव महोज्ज्वलः ।।६४।।

राजा के नगर का कोट, प्राकार, अति ऊँचे व आश्चर्यकारी शिखर से तट शोभित हो रहे थे अर्थात् अपने देदीप्यमान शिखरों से आकाश को ही स्पर्श कर रहे हों—ऐसा भासित हो रहा था ।।६४।।

उच्चहर्म्यसमुद्दिव्यत्पुरं यत्र महाधनाः ।
पौराः प्रवीणा गुणिनः स्वधर्मनिपुणा बभुः ।।६५।।

उच्च हर्म्यों (महलों) से सहित वह नगर अतिशय श्रीमन्त, प्रवीण, गुणी व अपने धर्माचार पालने में दक्ष नगरवासियों से सुशोभित था ।।६५।।

सुन्दर्यः सुन्दराकाराः शरद्विधुनिभाननाः ।
गुणलक्षणसम्पन्ना विरेजुर्यत्र निर्मलाः ।।६६।।

उस नगर की स्त्रियाँ अतिशय सुन्दर आकार वाली और शरद-ऋतु के चन्द्रमा के समान मुख वाली थीं। उनके गुण-लक्षण अच्छे थे ।।६६।।

तयोस्तत्र सुतावास्तां यौ द्वौ सद्भाग्यशालिनौ ।
एकोऽभयकुमारोऽन्यो वारिषेणः शुभाकृतिः ।।६७।।
ज्येष्ठो न्यायप्रवीणोऽभूत्तदन्यस्तापसोत्तमः ।
द्वाभ्यां स शुशुभे सूर्यचन्द्राभ्यामिव संततम् ।।६८।।

राजा श्रेणिक और रानी चेलना के दो पुत्र उत्पन्न हुए। बड़े पुत्र का नाम अभयकुमार व छोटे पुत्र का नाम वारिषेण था। दोनों पुत्र अत्यन्त सुन्दर थे। बड़ा पुत्र न्याय-नीतिवान् और छोटा पुत्र तपस्वी था। ये दोनों पुत्र सूर्य-चन्द्रमा के समान शोभित हो रहे थे ।।६७-६८।।

वने राजगृहस्यान्ते उज्ज्वलाः पंच पर्वताः ।
विपुलाचलनामैको वैभाराख्यो द्वितीयकः ।।६९।।
रत्नाचलस्तृतीयश्च चतुर्थश्चोलपर्वतः ।
हेमाचलः पञ्चमश्च पञ्चैते पर्वताःस्मृताः ।।७०।।
जम्बूद्वीपे प्रसिद्धास्ते तेषां यो विपुलाचलः ।
प्रभोः समवसारं श्रीमहावीरस्य तत्र वै ।।७१।।

उस राजगृह नगर के समीप वन में पाँच पर्वत शोभा को प्राप्त थे। उनमें प्रथम विपुलाचल, दूसरा वैभार पर्वत, तीसरा रत्नाचल, चौथा चूलगिरि व पाँचवाँ स्वर्णगिरि नाम से जम्बूद्वीप में प्रसिद्धि को प्राप्त हैं। प्रथम विपुलाचल पर कभी एक समय

महावीर प्रभु का समवशरण आया था। वह (समवशरण) एक योजन लंबा-चौड़ा व गोल था ॥६९-७१॥

समायाता कदाचित्तद्वर्णनं क्रियतेऽधुना।
एकयोजनमानेन लंबोऽभूदायतस्तथा ॥७२॥

प्रथमं धूलिसालोऽस्ति ततः सालत्रयं स्मृतम्।
तद्वृत्तं धूलिसालस्तु रत्नरेणुमयो मतः ॥७३॥

तस्मात् प्रथमसालस्तु जांबुनदविनिर्मितः।
ततो रूप्यमयो ज्ञेयो द्वितीयः साल उत्तमः ॥७४॥

तृतीयः स्फाटिकाख्योद्यन्मणिप्रचुरतां गतः।
धूलिसालान्तरे तत्र चतुर्दिक्षु हिरण्मयाः ॥७५॥

मानस्तम्भाश्च चत्वारस्तेषां पार्श्वे शुभोदकाः।
चतुश्चतुः सरोवर्याश्चतुर्दिक्षु प्रभान्ति वै ॥७६॥

त्रिमेखलासनस्थास्ते त्रित्रिसालयुताः शुभाः।
मानस्तम्भाश्चतुर्दिक्षु तेषु सत्फलदायकाः ॥७७॥

महावीर प्रभु के समवशरण का वर्णन इस प्रकार है—पहली भूमि धूलिसाल व रत्नों के चूर्ण की बनी हुई थी, उसके बाद की रचना तीन साल की थी—प्रथम स्वर्णमय, दूसरी रुप्यमय (चांदी की) व तीसरी स्फटिकमय थी। उसमें चमकने वाले रत्न जड़े हुए थे। धूलिसाल तट के अन्दर प्रवेश करने पर चारों दिशाओं में चार स्वर्णमयी मानस्तम्भ थे। उनके चारों ओर चार-चार सुन्दर सरोवर थे। उन सरोवरों का जल अत्यन्त निर्मल था। वे मानस्तम्भ तीन-तीन मेखलाओं से शोभित थे व पुनः उसके तीन तट थे। ऐसे वे मानस्तम्भ चारों दिशाओं में थे। उन मानस्तम्भों का दर्शन उत्तम फलदायक होता था ॥७२-७७॥

चतुश्चतुः सिद्धबिम्बाः प्रतिस्तम्भं समीक्षिताः ।
प्रथमं हेमसालो यस्तद्बहिः खातिका स्मृता ।।७८।।
तस्यामन्तर्गता भाति विचित्रा वनवेदिका ।
तदन्तर्विविधोत्फुल्लप्रसूना पुष्पवाटिका ।।७९।।

प्रत्येक मानस्तम्भ के ऊपर चार-चार जिनबिम्ब थे। पहले स्वर्णमय तट के बाहर एक खातिका (खंदक) थी, जिसके अन्दर एक विचित्र वन-वेदिका थी व उसके अन्दर नाना प्रकार के पुष्पों से फूली हुई पुष्पवाटिका थी ।।७८-७९।।

तदन्तर्गतो वै भाति स्वर्णसालो मनोहरः ।
तत्र चतुर्द्वारे दीप्तोऽस्ति मङ्गलद्रव्यसंचयः ।।८०।।
तत्प्रतिद्वारकं द्वे द्वे नाट्यशाले प्रकीर्तिते ।
ततश्चोपवनं दिव्यं ततश्चाद्भुतवेदिका ।।८१।।
तदन्तर्गतदीप्ताश्च पदार्थास्ते ध्वजादिकाः ।
एकमेव द्वितीयोऽपि रूप्यसालोऽवधार्यताम् ।।८२।।
विशेषः कश्चिदस्त्यत्र वर्ण्यते ललितैः पदैः ।
तच्छालान्तर्गतः कल्पवृक्षाणां वनमुत्तमम् ।।८३।।
तस्मिन्स्तूपावली चाधोमुखदुन्दुभिसन्निभा ।
दर्शनीयास्पदाः सिद्धबिम्बास्तदुपरि स्थिताः ।।८४।।
ततो हर्म्यावली देवक्रीड़ा स्थानमनूत्तमम् ।
देवा विचित्रक्रीडाभिर्विहरन्ति यथास्थिताः ।।८५।।

उस पुष्प-वाटिका के अन्दर मनोहर स्वर्णतटों की रचना थी। उसके चारों ओर चार दरवाजे थे। उन दरवाजों के पास चमकने वाले अष्ट मंगल-द्रव्यों का समूह शोभित था। उसके प्रत्येक द्वार के पास दो-दो नाट्यशालायें थीं। उसके बाद दिव्य

उपवन व विस्मय उत्पन्न करने वाली वेदिका थी। उस वेदिका के अन्तर्गत चमकने वाले ध्वजा आदिक पदार्थ थे। इसी प्रकार दूसरा जो चाँदी का तट था, उसका वर्णन भी पूर्व-वर्णनानुसार समझना; किन्तु यहाँ पर कुछ विशेष है, वह यह कि चाँदी के तट के अन्दर कल्पवृक्षों का वन है। इस वन में, नीचे की ओर मुख किये हुए दुन्दुभि के समान स्तूपों की एक पंक्ति थी व उसके ऊपर अतिशय मनोहर सिद्ध-प्रतिमा विराजमान थी। अनन्तर देवों के प्रासाद व उत्तम क्रीड़ा-स्थान थे। उसके अन्दर रहने वाले देव नाना प्रकार से क्रीड़ा करते हुए विहार करते थे ॥८०-८५॥

ततः स्फटिकसालोऽपि पूर्ववद्वर्णितो बुधैः।
विशेषो वर्ण्यतेऽस्माभिः संक्षेपेणैव सज्जनाः ॥८६॥
कोष्ठा द्वादश सम्प्रोक्तास्तन्मध्ये विस्तृताः शुभाः।
तत्रस्थानाश्रितान्वक्ष्ये गणेशाद्यान्यथाक्रमम् ॥८७॥
तत्रैव प्रथमे कोष्ठे गणेशाश्च मुनीश्वराः।
द्वितीये कल्पवासिन्यस्तृतीये चार्यिकाः स्मृताः* ॥८८॥
तुर्ये ज्योतिष्कसुन्दर्यः पञ्चमे व्यन्तरस्त्रियः।
षष्ठे भवनकान्ताश्च सप्तमे भावनामराः ॥८९॥
अष्ठमे व्यन्तरा देवा ज्योतिष्का नवमे तथा।
दशमे कल्पदेवाश्च तथा चैकादशे नराः ॥९०॥
तिर्यञ्चो द्वादशे प्रोक्ता एवं द्वादशकोष्ठगाः।
स्वस्वाधिकारसन्दीप्ताः प्रभुसंवीक्षणोत्सवे ॥९१॥

उसके बाद तीसरे स्फटिक के तट का, जो कि सामान्यतः पूर्व के समान ही है, विशेष वर्णन करता हूँ, उसे सुनो – इस

* आर्यिकाः तथा राजपत्न्यादि सर्वाः स्त्रियाःसन्ति।

स्फटिक के तट के अन्दर बारह कोठे थे अर्थात् सभायें थीं। वे अत्यन्त सुन्दर थीं। उनके अन्दर गणधरादिक क्रम से बैठे रहते हैं। अर्थात् प्रथम सभा में गणधर व मुनि बैठते हैं। दूसरी सभा में स्वर्ग की देवांगनायें, तीसरे कोठे में आर्यिकायें, चौथे में ज्योतिष्क देवियाँ, पाँचवें में व्यन्तर देवियाँ, छठवें में भवनवासिनी देवियाँ, सातवें कोठे में भवनवासी देव, आठवें कोठे में व्यंतर देव, नवमें कोठे में ज्योतिष्क देव, दसवें कोठे में कल्पवासी देव, ग्यारहवें कोठे में मनुष्य व बारहवें कोठे में तिर्यञ्च (पशु) बैठे रहते हैं। सभी प्रभु को एकाग्र-दृष्टि से देखते हुए बड़े ही आनंदित होते हैं ॥८६-६१॥

ततः श्रीमण्डपो नानाजातिरत्नविनिर्मितः ।
तन्मध्ये सुविचित्रे हि पीठमस्ति त्रिमेखलम् ॥६२॥
तस्योपर्यन्तरिक्षे स भगवांश्चतुरङ्गुलः ।
विराजते स चात्यर्थं महावीरो दयानिधिः ॥६३॥

उसके बाद नाना प्रकार के रत्नों से रचित "श्री मंडप" होता है, जिसके बीच में तीन मेखलाओं वाली पीठ (सिंहासन) होती है। इस पीठ के ऊपर अन्तरिक्ष (अधर) में चार अंगुल ऊपर दयानिधि भगवान महावीर विराजते थे ॥ ६२-६३॥

तस्योपरि प्रभादीप्तं छत्रत्रयमनूत्तमम् ।
चतुःषष्टिप्रमाणौघचामराणां प्रचालनम् ॥६४॥
अशोकादीनि भान्ति स्म प्रातिहार्याणि चाष्ट वै ।
दृश्यन्ते सप्तपर्यायास्त्रयोभूताश्च भाविनः ॥६५॥
त्रयस्तथा वर्तमान एकैकमनुक्रमात् ।
प्रभाधिक्येन दिवसो रात्रिर्न ज्ञायते क्वचित् ॥६६॥

प्रभु के ऊपर कांतियुक्त, उज्ज्वल, अत्युत्कृष्ट तीन छत्र थे। भगवान के दोनों ओर खड़े रहकर यक्ष चौंसठ चँवर ढार रहे थे। अशोक वृक्ष, सुर-पुष्पवृष्टि आदि आठ प्रातिहार्य शोभित हो रहे थे। प्रभु के पीछे भामण्डल शोभित था, जिसमें कि भव्य जीवों के सात भव (३ भूतकालीन, १ वर्तमान व ३ भावि) प्रतिभासित होते हैं। समवशरण में भामण्डल के अतिशय तेज के कारण रात्रि-दिन का भेद दिखाई नहीं पड़ता था ॥६४-६६॥

क्वचिज्जिनेन्द्रप्रतिमापूजनं चामरैः कृतम् ।
क्वचिन्नृत्यं क्वचिद्वाद्यं क्वचिन्मङ्गलमुत्तमम् ॥६७॥
क्वचिज्जिनगुणग्रामकीर्तनं साधुभिः कृतम् ।
केऽपि शुक्लाग्निना दग्धुं घातिकर्माणि चोत्सुकाः ॥६८॥
सार्धं द्वादश कोट्युक्तां वाद्यभेदाश्च ये स्मृताः ।
नदन्ति स्वस्वरीत्या ते मृदुध्वनिमनोहराः ॥६९॥

समवशरण में कहीं पर देवगण जिन-प्रतिमा की पूजन करते हुए दिखाई दे रहे थे तो कहीं पर नृत्य, वाद्य तथा मंगल स्तुति की जा रही थी। कहीं पर साधु-समूह प्रभु का गुण-स्मरण कर रहे थे तो कहीं पर साढ़े बारह कोटि प्रकार के बाजे अपने प्रकार से, मनोहर व मृदु ध्वनि से बजाये जा रहे थे ॥६७-६९॥

पंचाश्चर्याणि जायन्ते यत्र देवप्रभावतः ।
निरीक्ष्यन्तेऽखिलैर्दृष्ट्या तत्रस्थैर्भाग्यदुन्दुभिः ॥१००॥
वैरभावविनिर्मुक्ता यत्र सर्वे निरीक्षिताः ।
स्वभाववैरिणोऽन्योन्यं येऽत्र सिद्धा महीतले ॥१०१॥

भगवान के समवशरण में भगवान के प्रभाव से नित्य ही पंचाश्चर्य वृष्टि होती हुई सबको सब तरफ दीखती थी। यहाँ

आने वाले सभी जीव वैर-भाव छोड़कर आते हैं। जिन जीवों में परस्पर स्वभाव से ही (जन्मजात) वैर पाया जाता है, वे भी समवशरण में वैर-भाव छोड़कर शांत चित्त से बैठे हुए हैं। यहाँ पर जगत्-प्रसिद्ध वैरी भी अपना वैर-भाव छोड़ देते हैं ॥१००-१०१॥

मृगेन्द्रश्च गजेन्द्रेण शार्दूलोऽपि गवा सह।
बिडालो मूषकेनाथ मयूरो भुजगेन च ॥१०२॥

अन्येऽपि सर्वे निर्वैराः परस्परविरोधिनः।
विहरन्ति सदा यत्र श्रीजिनेन्द्रप्रभावतः ॥१०३॥

महावीर प्रभु के प्रभाव से सिंह हाथी के साथ, व्याघ्र बैल के साथ, बिल्ली चूहों के साथ, मयूर सर्प के साथ और अन्य भी जिनका परस्पर वैर-भाव रहता है, वे निर्वैर होकर यहाँ विहार करते हैं ॥१०२-१०३॥

इत्थं समवसारोऽयं समासादनुवर्णितः।
महापुराणे द्रष्टव्यस्तद्विस्तारो बुधैर्यथा ॥१०४॥

इस प्रकार मैंने (देवदत्त ने) संक्षेप से समवशरण का वर्णन किया है। जिसको विशेष रूप से समवशरण का ज्ञान अपेक्षित हो उसे महापुराण देखना चाहिए ॥१०४॥

प्रभोरिच्छानुसारेण महावीरस्य धीमतः।
स स्वयं यत्र सम्प्राप्ते विपुलाचलपर्वते ॥१०५॥

यत्र प्रभुर्महावीरः स्वयं भव्यजनान्प्रति।
धर्मोपदेशव्याख्यानं करोति करुणामयः ॥१०६॥

भगवान महावीर समवशरण सहित विहार करते हुए विपुलाचल पर्वत पर आये, जहाँ उन्होंने भव्यजीवों को धर्मोपदेश दिया ।।१०५-१०६।।

भूपालं वनपालः षड्ऋतूनां वनसंचयम् ।
पुष्पाण्यपि तदादाय श्रेणिकं समुपागमत् ।।१०७।।
तानि भूमाग्रतः स्थाप्य वचनं चेदमब्रवीत् ।
शृणु राजन् ! महावीरप्रभोः समवसारकः ।।१०८।।
प्राप्तो विपुलशैलेऽस्मिन् महानन्दमयः शुभः ।
तद्बोधनार्थं संहृष्टस्त्वामहं समुपागतः ।।१०९।।

छहों ऋतुओं के पुष्पों व फलों को देखकर वनपाल ने हाथ में पुष्प लेकर राजा को भेंट किये और कहा कि—हे राजन् ! भगवान महावीर समवशरण सहित विपुलाचल पर्वत पर आये हैं । मैं सहर्ष आपको यह सूचित करने आया हूँ ।।१०७-१०९।।

श्रुत्वा पुलकितो राजा महावीरमुपागतम् ।
स्वसमाजसमेतोऽयं महानंदमनोऽभवत् ।।११०।।
यस्यां दिशि समायातः प्रभोः समवसारकः ।
तत्संमुखं पदं सप्त गत्वा तं प्रणनाम सः ।।१११।।
भूषणान्वनपालाय सम्यग्दत्वा प्रशस्य तम् ।
महावीरमनुध्याय राजानन्तसुखं गतः ।।११२।।

वनपाल के मुख से इस प्रकार के वृतान्त को सुनकर राजा आनन्द से रोमाञ्चित हो गया और अपने परिवार सहित दर्शन हेतु उद्यत हो गया । जिस दिशा में प्रभु का समवशरण विराजमान था, उस दिशा में सात कदम आगे जाकर उसने भगवान

को नमस्कार किया और अपने शरीर पर जो भी वस्त्राभूषण थे उन्हें वनपाल को देकर उसकी प्रशंसा करता हुआ, मन में प्रभु का स्मरण कर राजा अतिशय सुखी हुआ ॥११०-११२॥

समादिशद् बोधकरांस्तदाज्ञप्ताश्च ते यदा ।
भेर्यादिवाद्यसद्घोषं चक्रुः श्रवणसौख्यदम् ॥११३॥

राजा ने नगर के भेरी-ताड़न करने वाले को आदेश दिया। उसने राजाज्ञानुसार भेरी-ताड़नपूर्वक सर्व नगरवासियों के कानों को सुख देने वाला यह समाचार कह सुनाया ॥११३॥

वारणाश्वरथादींश्च सज्जयित्वा नरेश्वरः ।
दुन्दुभेर्मन्द्रनिर्घोषमकारयदनूत्तमम् ॥११४॥

राजा श्रेणिक ने हाथी, घोड़े, रथ आदि सजवा कर उत्तम दुन्दुभि का गम्भीर शब्द करवाया ॥११४॥

कुमाराः सज्जिताः सर्वे स्वदीप्त्यानङ्गसन्निभाः ।
सज्जिता नरनार्यश्च तद्वदेव सुखोद्गमात् ॥११५॥
सर्वांस्तान्सर्वगान्कृत्वा चेलनादेविकायुतः ।
अष्टद्रव्याणि सङ्गृह्य पूजार्थं शुद्धभावतः ॥११६॥
महावीरेक्षणाकांक्षी पुलकोद्गमलक्ष्यतः ।
श्रेणिकस्तत्र सम्प्राप्तो देवं भव्यदयानिधिम् ॥११७॥

अपने शरीर की कांति से कामदेव के समान दिखने वाले सर्व राजकुमार सज्जित हुए। उसी प्रकार आनन्दपूर्वक सभी स्त्री-पुरुष भी सज्जित हुए। तुम सब भी चलो — ऐसा कहते हुए राजा ने, चेलना रानी सहित, शुद्ध भाव धारण करके,

पूजा के लिए अष्ट द्रव्य लेकर प्रस्थान किया। पुलकित-वदन श्रेणिक, भव्यों के प्रति दयानिधि भगवान श्री महावीर प्रभु के दर्शनों की तीव्र उत्कंठा से उनके समीप पहुँचा ॥११५-११७॥

त्रिःपरिक्रम्य तं भक्त्या जराजन्ममृतित्रयम् ।
वन्दीकृत्य प्रणम्याथ सम्पूज्य विधिवत्ततः ॥११८॥

नृकोष्ठगः श्रेणिकोऽसौ वाक्यमेवमुवाच सः ।
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं अद्य नाथ ! त्वदीक्षणात् ॥११९॥

मत्तुल्याकृतिपापिष्ठः त्वयानुभुवि ईरितः ।
त्वत्सङ्गमान्महाभाग्यभाजनत्वं ममागतम् ॥१२०॥

यतो दीनदयालुस्त्वं स्वभावात्परमेश्वर ।
कर्मविद्धे नते दीने, दयां कुरु मयि प्रभो ॥१२१॥

राजा ने, जिनके जन्म-जरा-मरण तीनों ही समाप्त हो चुके हैं– ऐसे महावीर प्रभु की तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार किया और अष्ट-द्रव्यों से विधिवत् पूजा करके मनुष्यों की सभा में जाकर बैठ गया। अनन्तर खड़ा होकर कहने लगा–प्रभो ! आज मुझे आपके दर्शन हुए, मैं आज धन्य हो गया हूँ। आपने मेरे समान पापिष्ठ को भी अपनी ओर प्रेरित कर दिया। आपके सहवास से मुझे आज बहुत ही भाग्य का उदय प्राप्त हुआ है। हे परमेश्वर ! आप स्वभाव से ही दीनदयालु हैं। मैं कर्म-बंधनों से सहित हूँ, मेरे ऊपर दया करो ॥११८-१२१॥

शार्दूलविक्रीडितम्

यस्योद्यत्कृपयात्र भव्यनिवहः संसारघोराम्बुधिम् ।
तीर्त्वा मुक्तिपदं गताश्च कति ते सद्धर्मकर्माश्रिताः ॥

तं संभावयिताधुनाखिलजना वीरं महाद्यं प्रभुम् ।
यद्ध्यानोद्भवशुद्धभाववशतः सिद्धाय सम्प्राप्यते ॥१२२॥

इस जगत में जिनके उपकार व कृपा से भव्य-समूह संसार-रूपी घोर समुद्र से पार होकर मोक्ष को गये हैं और कितने ही जीव उत्तम जिनधर्म के अहिंसामय सद्धर्म का पालन करते हैं, उन अतिशय पूज्य वीर जिनेश्वर की, सर्वजन पूजा करें, क्योंकि प्रभु के ध्यान से उत्पन्न शुद्ध-भाव सिद्धपर्याय की प्राप्ति कराने वाले हैं ॥१२२॥

इति देवदत्तकृते सम्मेदशिखरमाहात्म्ये श्रीमहावीर-श्रेणिक समागमवर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

इस प्रकार देवदत्तकृत सम्मेदशिखर माहात्म्य में श्री महावीर-श्रेणिक समागम वर्णन नाम का प्रथम अध्याय हिन्दी भाषा में समाप्त हुआ ॥१॥

जिसने राग-द्वेष-कामादिक जीते,
सब जग जान लिया ।
सब जीवों को मोक्षमार्ग का,
निस्पृह हो उपदेश दिया ।
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा,
या उसको स्वाधीन कहो ।
भक्तिभाव से प्रेरित हो यह,
चित्त उसी में लीन रहो ।

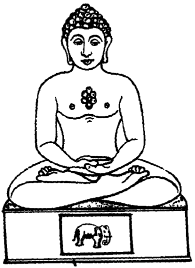
अथ द्वितीयोऽध्यायः

अथ प्रसाद्य देवेशं महावीरं महाप्रभुम् ।
श्रेणिकः समयं प्राप्य बद्धाञ्जलिरुवाच तम् ।।१।।
भगवन्मुक्तिदोऽसि त्वमद्वितीयो महीतले ।
शरणागतजीवानामार्तानां पालकः सदा ।।२।।
संसारिणोऽत्र ये जीवा नानाभ्रमभराकुलाः ।
सर्वदा ह्यसमर्थास्ते संयमव्रतसाधने ।।३।।
तेषां निर्वाणकल्याणे संशयो मे महान्प्रभो ।
ज्ञानं विना महाराज ! दुर्वारा कर्मणां गतिः ।।४।।
चोग्रं तपो विना ज्ञानं नैव नाथ ! प्रजायते ।
संयमं व्रतरूपं तत्तेषु ते नाधिकारिणः ।।५।।
तेषां समीपवर्ती यः स्वल्पायासो महाप्रभो ।
तेषां निर्वाणसन्मार्गोऽधुना स चोपदिश्यताम् ।।६।।

देव, नरेन्द्र, खेचरेन्द्र के प्रभु भगवान को नमस्कार करके राजा श्रेणिक हाथ जोड़कर, योग्य समय पर विनती करने लगा कि – हे भगवान ! आप इस पृथ्वी पर अद्वितीय हैं, भव्यों को मुक्ति प्रदान करने वाले हैं, शरणागत दुखीजनों का पालन करने वाले हैं । हे प्रभो ! इस जगत में अनेक जीव नाना प्रकार के भ्रम, संशय व विपरीतता के कारण दुखी हैं, संयम और व्रतों का पालन करने में असमर्थ हैं, उनको मोक्ष होगा या नहीं ?— इसमें हमें बहुत संशय हुआ है । हे प्रभो ! उन्हें, ज्ञान न होने से, मोक्ष की प्राप्ति कैसे होगी ? हे नाथ ! संसारी जीवों के कर्मों की गति दुर्निवार है । हमको समझ में नहीं आता,



सिद्धवर कूट



अजितनाथ जिनराज का, सिद्धवर कूट है गेह।
मन वच तन कर पूजहूं, शिखर सम्मेद यजेह ।।

ओ३म् ह्रीं श्री अजितनाथ जिनेन्द्रादि मुनि एक अरब ८० करोड़ ५४ लाख मुनि इस कूट से सिद्ध भए तिनके चरणारविन्द को मेरा मन वचन काय से बारम्बार नमस्कार हों जलादि अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।।२।।

इस टोंक को भाव सहित वन्दना करने से ३२ करोड़ उपवास का फल होता है।

हे नाथ ! उग्र तप किये बिना वह ज्ञान उत्पन्न होने वाला नहीं है; वह तप, ध्यान, व्रत, संयम रूप है, व्रत-संयम सहित ही तप होता है । संसारी जीव उस संयम, व्रत के अधिकारी नहीं हैं और संसारी जीव ज्ञान में बालक के समान हैं। इसलिए आप व्रत और संयम का उपदेश करें ।।१-६।।

तद्वाक्यमेवमाकर्ण्य महावीरस्तमब्रवीत् ।
संसारिणामपि शिवं यथा स्यात्तत् तथा शृणु ।।७।।
यात्रा सम्मेदशैलस्य भावतो यैर्नरैः कृता ।
सर्वार्थसिद्धिसंयुक्ता मुक्तिस्तेषां करे स्थिता ।।८।।
आदौ सिद्धवरस्तत्र कूटः प्रथित उत्तमः ।
तत्र स्थितोऽजितस्वामी केवलेन शिवं गतः ।।९।।

इस प्रकार श्रेणिक राजा के प्रश्न को सुनकर भगवान कहने लगे – संसारी जीवों को मोक्ष कैसे होगा, सो मैं कहता हूँ। जिन जीवों (मनुष्यों) ने श्री सम्मेदगिरि की यात्रा भक्ति-भाव से की है, उन्हें सर्व इष्ट पदार्थों की प्राप्ति होती है। अर्थात् वह सर्वार्थ-सिद्धि नामक पांचवें अनुत्तर विमान में अहमिन्द्र होता है व अन्त में मोक्ष प्राप्त करता है। इस सम्मेदपर्वत पर सिद्धवर नाम का प्रसिद्ध व उत्तम कूट है, उस पर से अजित तीर्थंकर मोक्ष को प्राप्त हुए हैं ।।७-९।।

सगरेण कृता यात्रा प्रथमं चक्रवर्तिना ।
तत्कथां शृणु राजेन्द्र ! प्रथितां भूमिमण्डले ।।१०।।

सगर चक्रवर्ती ने इस क्षेत्र की सर्वप्रथम यात्रा की है। हे राजेन्द्र ! इस भूमि पर उसकी कथा प्रसिद्ध है, तुम सुनो ।।१०।।

पूर्वाख्योस्ति विदेहोऽत्र जम्बूद्वीपो महोत्तमः ।
तत्र सीता नदी रम्या दर्शनात्कल्मषापहा ।।११।।
तस्या दक्षिणदिग्भागे वत्साख्यो देश उत्तमः ।
तत्र पृथ्वीपुरं धर्मवार्ताभिः सफलंकृतम् ।।१२।।

इस जम्बूद्वीप में अतिशय उत्तम पूर्व विदेह क्षेत्र है। वहाँ पर सीता नाम की नदी है, जिसको देखने मात्र से मन प्रसन्न हो जाता है। उस नदी के दक्षिण दिशा में वत्स नाम का उत्तम देश है। उस देश में पृथ्वीपुर नाम का नगर है। इस नगर के सब लोग धर्माचरण सहित होकर रहते थे।।११-१२।।

तत्र सम्यक्त्वसम्पन्नो जयसेनो महीपतिः ।
धर्मभावः सदा यस्य सुबुद्धिः स महान् अभूत् ।।१३।।
जयसेना तस्य देवी सती गुणवती तथा ।
द्वयोर्बभूवतुः पुत्रौ द्वावेव शुभलक्षणौ ।।१४।।

वहाँ सम्यक्त्व से सहित जयसेन नामक राजा रहता था। वह धर्म-भाव से युक्त, सदाशय, निर्मल बुद्धि से युक्त महान् राजा था। उस राजा की जयसेना नाम की सती व गुणवती रानी थी। उन दोनों के शुभ लक्षणों के धारक दो पुत्र उत्पन्न हुए।।१३-१४।।

धृतिषेणोऽग्रजस्तद्रविषेणोऽनुजः स्मृतः ।
दम्पत्याभ्यां प्रजाभ्यस्तौ ददतुः सुखमुत्तमम् ।।१५।।
धर्मवन्तौ भाग्यवन्तौ भोगवन्तौ बभूवतुः ।
तौ कर्मवशतो मृत्युमेकोऽगादनुजस्तदा ।।१६।।

बड़े पुत्र का नाम धृतिषेण व छोटे पुत्र का नाम रविषेण था। दोनों पुत्र माता-पिता व प्रजाजनों को सुख प्रदान करने

वाले थे। वे दोनों धार्मिक व भाग्यवान थे, किन्तु छोटा पुत्र कर्मवश मरण को प्राप्त हुआ ॥१५-१६॥

ततः संमूर्च्छितो राजा मन्त्रिभिः प्रतिबोधितः ।
तदा सम्प्राप्य चैतन्यं विरक्तस्तद्गुणादभूत् ॥१७॥
अनुप्रेक्षां हृदि स्थाप्य द्वादशायं ततोऽचिरम् ।
ज्येष्ठपुत्राय तद्राज्यं दत्वा समगृहीत्तपः ॥१८॥

राजा को छोटे पुत्र की मृत्यु से बहुत सन्ताप हुआ और वह उस दुख से मूर्च्छित हो गया। मंत्रियों ने राजा को सावधान करके उपदेश किया, जिससे राजा को पुत्र-मरण होने से वैराग्य उत्पन्न हुआ। वे बारह भावनाओं का चिन्तवन हृदय में करने लगे। उसके बाद उन्होंने शीघ्र ही बड़े पुत्र को राज्य सौंप कर मुनि-दीक्षा ले ली ॥१७-१८॥

समुत्साह्य वनं गत्वा यशोधरसमीपतः ।
दीक्षां गृहीत्वा केशानां लुञ्चनं पञ्चमुष्टिभिः ॥१९॥
कृत्वा पञ्चमहाध्यानि व्रतानि समितीस्तदा ।
पंच चाथ अगुप्तीश्च प्रमोदात्समधारयत् ॥२०॥
तपः कृत्वायुषश्चान्ते संन्यासं प्राप्य चोत्तमम् ।
देवोऽभूत्षोडशे कल्पे नामतोऽयं महाबलः ॥२१॥

अर्थात् उत्साह से वन में जाकर यशोधर मुनिराज के समक्ष उन्होंने दीक्षा ले ली। पंचमुष्ठि केश लोंच करके, पाँच महाव्रत, पाँच समिति व तीन गुप्ति—इस प्रकार तेरह प्रकार का चारित्र धारण किया और घोर तप करके आयु के अन्त में उत्तम सन्यास धारण कर मर कर सोलहवें स्वर्ग में महाबल नामक देव के रूप में जन्म लिया ॥१९-२१॥

द्वात्रिंशत्सागरायुश्च तत्प्रमाणसहस्रतः ।
वर्षेभ्यः परमाहारं मानसं समुपाहरत् ॥२२॥
द्वाविंशत्पक्षगमने श्वासोच्छ्वासंगतो भवन् ।
इत्थं तत्रमहानन्दमृद्भूत्वान्ते स चायुषः ॥२३॥
तद्भोगेभ्यो महद्भ्योऽपि ह्यनाकृष्टः स देवराट् ।
कर्मक्षयं विचिन्त्याप भूतले अवतीर्षुताम् ॥२४॥

वहाँ पर उसकी आयु २२ सागर की थी तथा वह २२ हजार वर्ष बीतने पर अमृताहार करता था। बाबीस पक्ष व्यतीत होने पर वह देव श्वासोच्छ्वास लेता था। इस प्रकार उसने स्वर्ग में महानन्द को धारण किया। आयुष्य के अन्त में, वह देव उन भोगों के प्रति आकृष्ट न होकर, मन में इस प्रकार विचार करने लगा कि अब इन भोगों को छोड़ कर पृथ्वी पर जन्म लेना ही पड़ेगा, अब यहाँ का सुख-योग समाप्त हो गया है। ऐसा विचार करता हुआ, वह मन में किञ्चित् भी संतप्त न होकर वस्तु-स्वरूप का विचार करने लगा ॥२२-२४॥

जम्बूद्वीपे शुभे क्षेत्रे भारते चार्यखण्डके ।
कोशलाख्ये महादेशे अयोध्यानामसत्पुरे ॥२५॥
समुद्रविजयो नाम राजाभूत्किल धार्मिकः ।
सुबला नाम तद्देवी सस्नेहौ तौ बभूवतुः ॥२६॥
इक्ष्वाकुवंशसम्भूतः सोऽयं काश्यपगोत्रजः ।
समुद्रविजयस्तस्य गेहे देवो महाबलः ॥२७॥
स्वर्गाच्च्युतस्य समभूत् पुत्रः परमधर्मभृत् ।
नाम्ना सगर इत्युक्तस्तेजस्वी विक्रमाम्बुधिः ॥२८॥
लक्षसप्ततिपूर्वाणामस्य चायुः प्रकीर्तितम् ।
चतुःशतानां सार्धानां धनुषामुच्छ्रिता स्मृता ॥२९॥

बाल्येष्टादशलक्षोक्त पूर्वाण्यस्यायुषो नृपः ।
गतानि चक्रवर्तित्वं तदासौ प्राप्तवान् किल ॥३०॥

इस जम्बूद्वीप में भारत नाम के शुभ क्षेत्र के कोशल नामक देश में अयोध्या नाम की सुन्दर नगरी है। वहाँ पर समुद्रविजय नामक राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम सुबला था। राजा और रानी का परस्पर बहुत प्रेम था। वह राजा इक्ष्वाकुवंशीय, काश्यपगोत्रीय था। महाबल ने स्वर्ग से चय कर इस राजा के यहाँ जन्म लिया और उसका नाम सगर रखा गया। सगर महान धार्मिक, तेजस्वी व सूर-वीरों का स्वामी था। उसकी आयु ७० लाख पूर्व की थी तथा शरीर साढ़े चार सौ धनुष प्रमाण ऊँचा था। उसकी बाल अवस्था अठारह लक्ष पूर्व की थी। उसके बाद उस सगर को चक्रवर्ती पद मिला ॥२५-३०॥

चक्रादिशुभरत्नानि चतुर्दशमितानि च ।
निधयो नव तद्वच्च सम्प्राप्तास्तेन चक्रिणा ॥३१॥
षड्नवत्युक्तसहस्रप्रमिताः शुभाः ।
राज्ञस्तस्य समाख्याता राज्ञ्यः सौन्दर्यनिर्भराः ॥३२॥

चक्रादि शुभ चौदह रत्न उसको प्राप्त हुए तथा वह नवनिधि का स्वामी हुआ। उसकी ९६ हजार रानियाँ अतिशय सुन्दर रूपवती थीं ॥३१-३२॥

षष्टिषष्टि सहस्रोक्त महाबलपराक्रमाः ।
लीलाश्वा गणिता नित्यं तत्राष्टादशकोटिभिः ॥३३॥
चतुःपराशीतिलक्षगणितैर्मत्तवारणैः ।
सहजाशुशुभेधामगतैरिव धराधरैः ॥३४॥

कतिचिद्देवतासार्धं तस्य विद्याधरास्तथा ।
महासमर्थास्तैर्युक्तः सगरोराज्यमन्वभूत् ।।३५।।

उस चक्रवर्ती सगर का पराक्रम बहुत बड़ा था। उसके ६० हजार पुत्र, १८ कोटि घोड़े चौरासी लाख हाथी ऐसे मालूम पड़ते थे मानो चक्रवर्ती के प्रदेश में पर्वतों ने ही प्रवेश किया है। कुछ देवताओं के साथ महासमर्थ विद्याधर भी सगर चक्रवर्ती की आज्ञा मानते थे और चक्रवर्ती सगर भी उनके साथ राज्य का आनन्दानुभव लेता था ।।३३-३५।।

एकदाभूतपोद्याने चारणौ द्वौ समागतौ ।
अजितंजय एको मूद्नाम्नान्यश्चामितञ्जयः ।।३६।।
श्रुत्वा तावागतौ राजा हर्षेण महतोत्सुकः ।
तत्र गत्वा चिरं भूयः शिरसा प्रणनाम सः ।।३७।।
प्रणम्य पश्चात्सम्पूज्य विधिवत्सुखमाश्रितः ।
बद्धाञ्जलिस्तौ पप्रच्छ मनोभावं प्रकाशयन् ।।३८।।
यद्दिनावजितेशस्य मोक्षः सम्मेदपर्वते ।
श्रुतो मया मुने ! तस्माद्दिनादत्युत्सुकं मनः ।।३९।।

एक बार भूतप नामक उद्यान में अजितंजय और अमितंजय नामधारी दो चारण मुनि आये। उनके आगमन का समाचार सुनकर, हर्षित हो राजा उनके दर्शनों के लिए अत्यन्त उत्सुक हुआ। उसने उद्यान में जाकर भक्ति से बार-बार मस्तक झुकाकर मुनिद्वय को नमस्कार किया। तदनन्तर हाथ जोड़कर, अपने मन की बात प्रकट कर वह पूछने लगा – भगवन् ! जिस दिन से मैंने भगवान अजितनाथ का निर्वाण-दिवस सुना, उसी दिन से मेरा मन अत्यन्त उत्कंठित हो रहा है ।।३६-३९।।

सम्मेदशैलयात्रार्थं यात्राविधिरिहोच्यताम् ।
क्रियते केन विधिना कथं किं फलमाप्यते ॥४०॥

सम्मेदगिरि की यात्रा के लिए कैसे जाया जावे ? उसकी क्या विधि है ? कैसे यात्रा की जाये ? इस क्षेत्र की यात्रा पूर्व में किस-किसने की है और उसका फल क्या है ? ॥४०॥

नृपवाक्यमिति श्रुत्वा चारणो मुनिरब्रवीत् ।
धन्योसि भाग्यजलधे त्वत्समः को महीतले ॥४१॥
यतः सम्मेदशैलेन्द्रयात्रार्थं त्वं महोत्सुकः ।
शृणु राजेन्द्र ! तद्यात्राविधिं फलमिहोत्तमम् ॥४२॥

राजा के इस प्रकार के वचन सुनकर चारण मुनि ने कहा कि हे राजन् ! तुम धन्य हो, इस महीतल पर तुम्हारे समान अन्य कोई भाग्यवान् नहीं; है क्योंकि तुम सम्मेदशिखरजी की यात्रा करने के लिए उत्सुक दिखाई दे रहे हो । हे राजेन्द्र ! मैं यात्रा की विधि और उसके फल का वर्णन करता हूँ, उसे तुम सुनो ॥४१-४२॥

यात्रोन्मुखो भव्यजीवः प्रथमं सिद्धवन्दनाम् ।
विधाय विधिवद् भूप चतुःसङ्घान् प्रपूज्य च ॥४३॥
सत्कारैः सार्धगान् कृत्वा कुर्याद्यात्रां च शैखरीम् ।
यतयश्चार्यिकास्तद्वच्छ्रावकाः श्राविकास्तथा ॥४४॥
चतुःसङ्घाः समाख्याताः सानियोगाः शुचिव्रताः ।
यस्तु मोक्षफलाकाङ्क्षी तितीर्षुं मोहसागरम् ॥४५॥

यात्रा के लिए उत्सुक भव्यजीवों को, प्रथम सिद्ध वन्दना करना, उसके बाद चतुर्विध संघ की पूजा करना, सत्कार करना,

सबको आमंत्रित करना, आप सब हमारे साथ यात्रा के लिए पधारें – ऐसी प्रार्थना करके उनके साथ में सम्मेदगिरि क्षेत्र की यात्रा करना चाहिये। मुनि-आर्यिका, श्रावक-श्राविका – ये चतु:संघ है। यह चतु:संघ निर्मल व्रतधारक व नियमपूर्वक आचरण करने वाले, मोक्ष के फल की इच्छा रखने वाले और मोहरूपी सागर से तिर कर जाने की इच्छा करने वाले हैं ।।४३-४५।।

स श्वेतवस्त्रमादाय कुर्यात्सम्मेदयात्रिकाम् ।
पुत्राभिलाषी यो नित्यं स भूत्वा पीतवस्त्रकः ।।४६।।

सम्मेदयात्रां कुर्वीत सुपुत्र-प्राप्तये ध्रुवम् ।
रोगार्तः कृष्णवस्त्राणि धृत्वा चेद्यात्रिको भवेत् ।।४७।।

दिनैः कतिपयैरेव सरोगोऽरोगतां व्रजेत् ।
सम्मेदयात्रिकश्चेद्धि शोकं कुत्रापि नाप्नुयात् ।।४८।।

लक्ष्मीकामो नरो यस्तु स धृत्वा रक्तवाससी ।
सम्मेदशैलराजस्य यात्रां कुर्यात्प्रयत्नतः ।।४९।।

इत्थं चारणसद्वाक्यं श्रुत्वा हर्ष-समन्वितः ।
सगरश्चक्रवर्त्येव पुनर्वचनमब्रवीत् ।।५०।।

श्रीमतोऽजितनाथस्य कथां सङ्क्षेपतो मुने ।
श्रोतुमुत्साहवानस्मि कथयस्व यथाक्रमम् ।।५१।।

इस गिरि की यात्रा करने वाले को शुभ्र वस्त्र धारण करना चाहिए। पुत्राभिलाषी मनुष्यों को पीले वस्त्र पहिन कर इस क्षेत्र की यात्रा करना चाहिए। जो रोग से पीड़ित हैं उन्हें काले वस्त्र धारण कर यात्रा करना चाहिए, जिससे कि उसका रोग नष्ट हो जायेगा। सम्मेदशिखर क्षेत्र की यात्रा करने वाला कभी भी शोक को प्राप्त नहीं होता। लक्ष्मी की कामना करने वाले को

ताम्रवस्त्र धारण कर यात्रा करना चाहिए। चारण मुनि के इस प्रकार के हितकर उपदेश को सुनकर सगर बहुत आनन्दित हुआ। उसने पुनः मुनिराज से कहा कि – प्रभो! श्री अजितनाथ जिनेश्वर की कथा को संक्षेप में सुनने का तीव्र अभिलाषी हूँ। इसलिए आप कृपा करके उसे कहो ॥४६-५१॥

चक्रिवाक्यमिति श्रुत्वा मुखेन्दुरदनांशुभिः।
ह्लादयन्तन्मनो नूनं मुनिः पुनरुवाच तम् ॥५२॥
जम्बूद्वीपे विदेहे वै पूर्वस्मिन्साधुसङ्कुले।
सीतादक्षिणदिग्भागे वत्साख्यो देश उत्तमः ॥५३॥

सुसीमानगरं तत्र धर्मभृत्सज्जनावृत्तम्।
तस्मिन्राजा महानासीत् श्रीमान्विमलवाहनः ॥५४॥

समयं प्राप्य भूपोऽसौ विरक्तस्तपसे गतः।
वनं मुनिजनाकीर्णं शुद्धभावसमन्वितः ॥५५॥

सम्भाव्य भावनास्तत्र षोडशायं मुनीश्वरः।
तीर्थकृद्गोत्रसंपन्नो बभूवार्कसमप्रभः ॥५६॥
आयुरन्ते स सन्यासविधिना त्यक्तदेहकः।
अहमिन्द्रत्वमगमत् विमाने विजयाभिधे ॥५७॥

त्रयस्त्रिंशत्सागरायुस्तस्य तत्र बभूव सः।
तत्प्रमाणसहस्त्रेषु गतेष्वेतेषु मानसम् ॥५८॥

आहारमेष जग्राह देवः परमधार्मिकः।
त्रिंत्रिंशत्पक्षगमने श्वासोच्छ्वासधरस्तदा ॥५९॥

एवं विजयको देवः सर्वकल्मषवर्जितः।
अन्वभूत्परमं मोदं देवमानवदुर्लभम् ॥६०॥

चक्रवर्ती के इस प्रकार के वचन सुनकर मुखरूपी चन्द्रमा की किरणों से लोगों को शान्त करने वाले और मन को आनंदित करने वाले वे मुनिराज कहने लगे – जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में, सीता नदी के दक्षिण भाग में, सत्पुरुषों से शोभित होने वाला वत्स नामक उत्तम देश है। उस देश में सज्जनों से युक्त सुसीमा नामक एक नगर है। इस नगरी का राजा विमलवाहन था। एक समय राजा को वैराग्य हुआ, और उसने मुनिजनों से युक्त एक वन में जाकर शुद्धभावपूर्वक दीक्षा ले ली तथा दर्शन-विशुद्धि आदि भावनाओं का चिन्तन किया, जिसके प्रभाव से तीर्थंकर नामकर्म का बन्ध हुआ और उसका तेज सूर्य के समान हो गया। आयुष्य के अन्त में सन्यास-विधि से देह त्याग कर वह विजय नाम के विमान में अहमिन्द्र हुआ। वहाँ उसकी आयु ३३ सागर प्रमाण थी और वह ३३ हजार वर्ष बीतने पर अमृताहार करता था। वह देव परम धार्मिक था। ३३ पक्ष बीतने पर वह श्वासोच्छ्वास लेता था। इस प्रकार सर्व पाप-रहित होकर विजय विमान में उस अहमिन्द्र देव ने मनुष्यों को भी दुर्लभ आनन्द का अनुभव किया ॥५२-६०॥

जम्बूद्वीपेऽथ भरतक्षेत्रगः कोसलाभिधः।
देशस्तत्र पुरी रम्या अयोध्यानाम विश्रुता ॥६१॥
राजा दृढरथाख्योऽभूत्तत्र धर्माब्धिचन्द्रमाः।
राज्ञी विजयसेनास्य स्वप्नान्षोडश वीक्ष्य च ॥६२॥
अहमिन्द्रं स्वगर्भे सा दधार सुतमुत्तमम्।
षण्मासरत्नवृष्टेश्च सौख्यं सम्प्राप्य पूर्वतः ॥६३॥
ज्येष्ठमासे ह्यमायां च रोहिण्यां गर्भगोऽभवत्।
तेन सा शुशुभे देवी सुबुद्धिर्ज्ञानतो यथा ॥६४॥

माघशुक्लदशम्यां च रोहिण्यां भाग्यतोऽद्भुतात् ।
आविरासीत्प्रभुस्तस्य गृहे सूर्यगृहोपमे ॥६५॥

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में कौसल नाम का एक देश है। उस देश में अयोध्या नाम की नगरी अतिशय सुन्दर व प्रसिद्ध है। वहाँ पर धर्मरूपी समुद्र को बढ़ाने वाले चन्द्रमा के समान दृढ़रथ नामका राजा राज्य करता था। दृढ़रथ की रानी का नाम विजयसेना था। उस रानी ने रात्रि में सोलह स्वप्न देखकर उस अहमिन्द्र को अपने उदर में धारण किया। उस देव के गर्भ में आने से पहिले छह मास और नव मास बाद तक देवों ने रत्न-वृष्टि की। माँ के ये दिन सुख से व्यतीत हो गये। ज्येष्ठ कृष्णा अमावस्या के दिन रोहिणी नक्षत्र में चन्द्रमा था, तब वह अहमिन्द्र देवलोक से चय कर गर्भ में आया। जैसे ज्ञान से सुबुद्धि की शोभा होती है वैसे वह देवी विजयसेना अहमिन्द्र के गर्भ में आन से शोभित होने लगी। माघ शुक्ला दशमी के दिन रोहिणी नक्षत्र में अद्भुत भाग्य से सहित, सूर्य के समान तेजस्वी अजित जिनेन्द्र ने जन्म लिया ॥६१-६५॥

तदैव देवैः सामोदैः सुरेन्द्रप्रमुखैः प्रभुः ।
स्नापितः स्वर्णशैलेन्द्रे क्षीरवारिधिवारिभिः ॥६६॥

पुनस्त्वयोध्यां सम्प्राप्याजितत्वादजिताभिधाम् ।
प्रभोर्विधाय देवेन्द्रस्तदग्रे भक्तिभावतः ॥६७॥

अकरोत्ताण्डवं चित्रं देवा हर्षसमन्विताः ।
विलासान्विविधिना चक्रुरयोध्यामिदमप्यभूत् ॥६८॥

सेन्द्रा देवा ययुः स्वर्गं दम्पती पुत्रवीक्षणात् ।
तद्बालचेष्टितैश्चित्रैश्चित्रानन्दं प्रजग्मतुः ॥६९॥

इन्द्रादि मुख्य देवों ने उसी समय आनन्दपूर्वक प्रभु अजितनाथ को मेरुपर्वत की पाण्डुक-शिला पर ले जाकर, क्षीरसागर के जल से उनका अभिषेक किया। उसके बाद वे प्रभु को वापस अयोध्या में लाये। प्रभु का नाम अजित रखा गया, कारण— अभी वे बाह्य-अभ्यंतर शत्रुओं से सहित थे। तदनन्तर देवेन्द्र ने प्रभु के समक्ष ताण्डव-नृत्य किया, सभी देव बहुत हर्षित हुए और नाना प्रकार के आमोद-प्रमोद किये। सम्पूर्ण अयोध्या आनंदित हुई। सभी देव इन्द्र के साथ स्वर्ग चले गये। इधर माता-पिता पुत्र के बाल्यपन की क्रीड़ा को देखकर आनंदित हुए, उनके मन को बहुत विस्मय हुआ ।।६६-६६।।

द्विसप्ततिमितानां हि लक्षाणामायुरीरितम् ।
पूर्वाणामस्य चोत्सेधः शून्यबाणचतुर्मितः ।।७०।।
कौमारं स व्यतीयोक्तं राज्यं लब्ध्वा च पैतृकम् ।
राजा समनुभूयाथ विरक्तः स बभूव हि ।।७१।।

प्रभु की आयु ७२ लक्षपूर्व की थी। उनका शरीर साढ़े चार सौ धनुष ऊँचा था। कुमारावस्था के पूर्ण होने पर उन्होंने राज्यभार सम्हाला। राज्य का अनुभव करके प्रभु विरक्त हुए ।।७०-७१।।

माघशुक्लनवम्यां च रोहिण्यां देवतार्चितः ।
दीक्षां जग्राह तपसा तपश्चक्रे महेश्वरः ।।७२।।
घातिकर्मक्षयं कृत्वा तपसोग्रेण तद्वने ।
पौषमासे च शुक्लायामेकादश्यां महाप्रभुः ।।७३।।
तथापराह्णवेलायां केवलज्ञानमाप सः ।
तदा समवसारं स श्रीमद्धनदनिर्मितम् ।।७४।।

सम्प्राप्य दिव्यध्वनिना गणेशादींश्च तत्रगान् ।
सर्वानाह्लाद्य द्वात्रिंशत्सहस्त्रैः सम्मितेषु च ॥७५॥

क्षेत्रेषु विहरन्देवो धर्मानुपविशन्सतः ।
सम्मेदशैलं सम्प्राप्य मासमेकं वसन्प्रभुः ॥७६॥

संहृत्य दिव्यनिर्घोषं सहस्त्रमुनिभिः सह ।
चैत्रस्य शुक्लपञ्चम्यां प्रतिमायोगमास्थितः ॥७७॥

कूटे सिद्धवरे तत्र मोहारिविजयी तथा ।
ध्यानाग्निदग्धकर्मासावजितो मुक्तिमाप सः ॥७८॥

माघ शुक्ला नवमी के दिन जब रोहिणी नक्षत्र पर चन्द्र था, तब देवपूज्य अजित जिनेश्वर ने दीक्षा ली। उन्होंने वन में जाकर तपस्या की और उग्र तप करके घातिकर्मों का नाश किया। पौष मास की शुक्ल एकादशी की दोपहर भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हुआ, तब कुबेर ने आकर समवशरण की रचना की। प्रभु ने समवशरण में अपनी दिव्यध्वनि से सर्व गणधरादि को आह्लादित किया। उन्होंने बत्तीस हजार आर्य देशों में विहार किया व धर्म का प्रचार किया। अन्त में प्रभु एक मास पर्यन्त सम्मेदगिरि पर रहे। वहाँ उन्होंने दिव्यध्वनि को रोक करके एक हजार मुनियों के साथ में, चैत्र शुक्ल पंचमी के दिन (उत्तर पुराण के अनुसार चैत्र शुक्ला प्रतिपदा काल) प्रतिमायोग धारण कर, मोह-शत्रु पर विजय प्राप्त की, ध्यानाग्नि से सर्वकर्म दहन कर सिद्धवरकूट से मोक्ष गये ॥७२-७८॥

इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं प्रसन्नवदनाम्बुजः ।
शुभे मुहूर्ते संकल्प्य यात्रार्थं संमुखोऽभवत् ॥७९॥

त्रिकोशं प्रथमे घस्रे चचाल नृपसत्तमः ।
सार्वगांश्च चतुःसंघान् विधायातीव सादरम् ॥८०॥

गजाश्चतुरशीत्युक्ता लक्षसङ्ख्यामिताः शुभाः ।
वातवेगधरास्तद्वत्कोटयोऽष्टादश वाजिनः ॥८१॥

तथा हस्तिप्रमाणाश्च पत्तीनां कोटयः स्मृताः ।
विद्याधरास्तथा चेलुश्चक्रिसद्वाक्यरक्षकाः ॥८२॥

एकाकोटीध्वजानां च तथादुन्दुभयो मताः ।
एवं वाद्यध्वनिर्मार्गे रवात्सर्वान्प्रहर्षयन् ॥८३॥

इस प्रकार चारण मुनि के मुख से अजित प्रभु का चरित्र सुनकर सगर चक्रवर्ती का मुख प्रफुल्लित हुआ। उसने सम्मेद-शिखर क्षेत्र की यात्रा करने का संकल्प किया और शुभ मुहूर्त में प्रयाण किया। प्रथम दिन राजश्रेष्ठ सगर ने तीन कोस प्रयाण किया। उसने आदर के साथ चतुर्विध संघ को अपने साथ में लिया। इस यात्रा में चौरासी लाख हाथी थे, पवन के समान वेग से चलने वाले १८ करोड़ घोड़े थे और हाथियों की संख्या के समान ही रथ थे; पैदल सेना भी उतनी ही थी। चक्रवर्ती की आज्ञा को मानने वाले विद्याधर राजा भी यात्रा के लिए निकले। इस यात्रा में ध्वज संख्या एक करोड़ थी व बजने वाले नगाड़ों की संख्या भी उतनी ही थी, जिनकी ध्वनि सर्व यात्रिकों को आनन्दित कर रही थी ॥७९-८३॥

नृपः सम्मेदमेवासौ कूटे सिद्धवरे प्रभुः ।
स्थापनामजितेशस्य कृत्वा सम्पूज्य भक्तितः ॥८४॥

परिक्रम्य त्रिवारं च सर्वं सम्मेदपर्वतम् ।
महोत्सवं चकारासौ जयध्वनिविमिश्रितम् ॥८५॥

उस सगर चक्रवर्ती ने सम्मेदगिरि पर्वत पर सिद्धवरकूट की अतिशय भक्ति से पूजा कर अजित जिनेश्वर की प्रतिमा स्थापित की और पूरे पर्वतराज की तीन प्रदक्षिणायें कीं तथा जयघोषों के बीच एक महोत्सव किया ॥८४-८५॥

पञ्चाश्चर्याणि तत्रासन् देववृन्दकृतानि च ।
तानि दृष्ट्वाखिलास्तत्र विस्मिता अभवन्किल ॥८६॥
सहस्रमुनयस्तत्र कूटे सिद्धवराभिधे ।
श्रीमताजितनाथेन सार्धं मुक्तिपदं गताः ॥८७॥

उस सिद्धवरकूट पर देव-समूह ने पंचाश्चर्य की वृष्टि की, जिसे देखकर सब लोगों को बहुत आश्चर्य हुआ । इसी कूट से जिनराज अजितनाथ के साथ एक हजार मुनि भी मोक्ष को गये ॥८६-८७॥

एकार्बुदप्रमाणास्तत्पश्चादुक्तमुनीश्वराः ।
तत्र वाथ चतुर्युक्ताशीतिकोटिप्रमाणकाः ॥८८॥
पंचान्तचत्वारिंशद्भिः लक्षैः परिमितास्ततः ।
श्रीशम्भवा ह्यतिप्रौढा मुक्ताः सिद्धा ह्यनन्तकाः ॥८९॥
एककूटस्य ते सर्वे शक्या न गणितुं बुधैः ।
सर्वेषां मुक्तिसिद्धानां कः कुर्याद् गणनं कविः ॥९०॥

उसके बाद इस कूट से एक अरब चौरासी करोड़ पैंतालीस लाख मुनियों ने मोक्ष प्राप्त किया । इस प्रकार इस कूट से आज पर्यन्त अनन्त मुनि मोक्ष पधारे । एक कूट पर से मोक्ष को प्राप्त हुये सर्व-मुनियों की संख्या की गणना करना शक्य नहीं है तब सभी कूटों से मुक्ति प्राप्त करने वालों की गणना कौन कर सकता है ? अर्थात् कोई नहीं ॥८८-९०॥

सम्मेदाचलयात्रां यः कुर्याद् भावेन संयुतः ।
तस्य पुण्यफलं भूप ! शृणु संसारदुर्लभम् ॥९१॥
द्वात्रिंशत्कोटिसंप्रोषधोपवासफलं विदुः ।
यत्फलं तत्फलं नूनं लभेत् सम्मेदयात्रिकः ॥९२॥
तिर्यङ् नारकगत्योश्च नाशो भवति निश्चितम् ।
महावीरेण कथितं प्रमाणं तच्च साधवः ॥९३॥

–शार्दूलविक्रीडितम्–

ईदृक् श्रीजिनराजधर्मकथनं नानाभ्रमध्वंसनम् ।
श्रीसम्मेदगिरिप्रमाणिकफलं श्रीवर्धमानेरितम् ।
लोहाचार्यवरेण भूय उदितं श्रुत्वाखिलाः सज्जनाः ।
सम्मेदं प्रति यान्तु भावसहिताः सर्वार्थसिद्धिप्रदम् ॥९४॥

हे राजा श्रेणिक ! जो मनुष्य भक्ति से सम्मेद पर्वत की यात्रा करेगा, उसके पुण्य-फल का वर्णन इस संसार में कौन कर सकता है ? इस प्रकार के पुण्य का लाभ दूसरे प्राणियों को दुर्लभ है। बत्तीस करोड़ प्रोषधोपवास का फल सम्मेदगिरि की यात्रा करने वाले को मिलता है। इस क्षेत्र की यात्रा करने वाले को पशुगति व नरकगति का बंध नहीं होगा—ऐसा निश्चित ही है। हे मुनिजनो ! श्री भगवान महावीर ने जो कहा है वह नियम से ही सत्य है। इस प्रकार जिनराज के वचन नाना-प्रकार के संशयों को दूर करने वाले हैं। सम्मेदशिखर की वंदना के लिये आगमन का फल जो भगवान महावीर ने कहा है, लोहाचार्य ने भी उसे ही कहा है। यह सब सुनकर, सर्व सज्जनों को सर्वार्थ-सिद्धि-प्रदाता सम्मेदाचल की यात्रा करनी चाहिये ॥९१-९४॥

इतिश्रीसगरचक्रवर्तियात्रानाम द्वितीयोऽध्यायः ।

इस प्रकार सगर चक्रवर्ती की महायात्रा का वर्णन करने वाला दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।

अथ तृतीयोऽध्यायः

(श्री सम्भवनाथजिनकथा)

अथ शम्भवनाथस्य कथा संवर्ण्यतेऽधुना ।
यो दत्तधवलं कूटमास्थाय प्राप सिद्धताम् ॥१॥

अब, दत्तधवलकूट पर पद्मासन से बैठकर जिसने सिद्धपद प्राप्त किया है उन श्री सम्भव जिनेश्वर का चरित्र मैं कहता हूँ ॥१॥

जम्बूद्वीपेऽत्र पूर्वेस्मिन्विदेहे भाग उत्तरे ।
सीतानद्याः कच्छनाम्नि देशे क्षेमपुरं शुभम् ॥२॥

इस जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह क्षेत्र में सीता नदी के उत्तर दिशा में क्षेमपुर नामक जनता का कल्याण करने वाला एक नगर है ॥२॥

राजाविमलवाहोऽभूत्तत्रासौ काललब्धितः ।
मेघ उत्पन्ननष्टश्च नभसि प्रेक्ष्य तत्क्षणात् ॥३॥
संसारसौख्यं सकलमसारमवबुद्ध्य वै ।
विरक्तस्तृणवद्राज्यं त्यक्त्वा विमलकीर्तये ॥४॥

उस नगर में विमलवाहन नाम का राजा राज्य करता था। काललब्धि निकट आने पर एक दिन राजा ने मेघ-पंक्तियों को नष्ट होते हुए देखा। संसार के सुखों को मेघ-पंक्तियों के समान असार जानकर, राज्य को तृण के समान (तुच्छ) समझते हुए राजा विमलवाहन ने अपना राज्य अपने पुत्र विमलकीर्ति को दे दिया ॥३-४॥

दत्वा, समवसारेऽथ स्वयंप्रभजिनेशितुः ।
गत्वा समग्रहीद्दीक्षां विवेकभरसंकुलाम् ॥५॥

स्वीकृत्यैकादशाङ्गानि ततः षोडशभावनाः ।
बद्ध्वा तीर्थङ्करं गोत्रं चकार तप उत्तमम् ॥६॥

अन्ते संन्यासविधिना प्राणत्यागं विधाय सः ।
पूर्वग्रैवेयके तत्र सुदर्शनविमानके ॥७॥

अहमिन्द्रो बभूवास्य त्रयोविंशत्समुद्रकैः ।
आयुः षडङ्गुलोन्मानं शरीरं च प्रकीर्तितम् ॥८॥

शुक्ललेश्यासमायुक्तस्त्रयोविंशत्सहस्रकैः ।
गतैरब्दैः स जग्राह मानसाहारमुत्तमम् ॥९॥

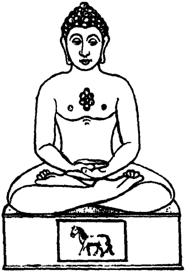
त्रयोविंशत्सु पक्षेषु व्यतीतेषु च देवराट् ।
श्वासोच्छ्वासधरो ब्रह्मचर्यभोगमनूत्तमम् ॥१०॥

अथाभूत्सप्तनरकपर्यन्तावधिबोधदृक् ।
तावत्प्रमाणविकृतिस्तेजोबलपराक्रमः ॥११॥

पुत्र को राज्य सौंपकर विमलवाहन ने स्वयंप्रभ जिनेश्वर के समवशरण में जाकर भगवान के समक्ष दीक्षा ले ली। तीर्थंकर के सानिध्य में रहकर उन्होंने ११ अंग का ज्ञान प्राप्त किया और उन्हीं के चरण-कमलों में षोडसकारण भावनाओं को भाकर, तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया। मुनिराज ने आयु पर्यन्त उत्तम तप किया और अन्त में समाधिमरण धारण कर मृत्यु को प्राप्त हुए। मरकर वह प्रथम ग्रैवेयक के सुदर्शन विमान में उत्पन्न हुआ। वहाँ उस देव की आयु तेबीस सागर की थी, व शरीर छह अंगुल उन्मान का था। उसकी द्रव्य व भाव—दोनों लेश्यायें शुक्ल थीं। वह २३ हजार वर्ष के बाद अमृताहार



धवल कूट



सम्भवनाथ जिनराज का, धवल कूट है जेह।
मन वच तन कर पूजहूं, शिखर सम्मेद यजेह ।।

ओ३म ह्रीं श्री सम्भवनाथ जिन्नेद्रादि मुनि ६ कोड़ा कोड़ी २ लाख ४२ हजार ५०० मुनि इस कूट से सिद्ध भए तिनके चरणारविन्द को मेरा मन वचन काय से बारम्बार नमस्कार हो जलादि अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।।३।।

इस टोंक की भाव सहित वंदना करने से ४२ लाख उपवास का फल होता है।

करता था और २३ पक्ष उपरान्त श्वासोच्छ्वास लेता था। अतिशय उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य-सुख का उसने २३ सागर पर्यन्त सुखानुभव किया। उसने अपने अवधिज्ञान से सातों नरकों को देख लिया था, उसी प्रमाण वैक्रियक सामर्थ्य तथा तेज, बल, पराक्रम आदि की उसको उत्तम प्राप्ति हुई थी ॥५-११॥

अणिमाद्यष्टसिद्धीनामीश्वरोऽयं तपोनिधिः।
अहमिन्द्रसुखास्वादी तत्रातिष्ठत्तपोबलात् ॥१२॥
सर्वायुष्येऽवशिष्टेषु षट्सु मासेषु तत्र वै।
पुनर्भूम्यवताराय समयोऽन्तिकमागतः ॥१३॥

वह तपोनिधि अणिमा आदि आठों ही ऋद्धियों का स्वामी था। तप के बल से अहमिन्द्र-सुख का अनुभव करता हुआ वह वहाँ रहता था। सम्पूर्ण आयु समाप्त होने में जब केवल छह माह बाकी रह गये तब इस पृथ्वी पर अवतार लेने का अन्तिम समय उसे ज्ञात हुआ ॥१२-१३॥

जम्बूद्वीपोदितक्षेत्रे भारते विषयो महान्।
अभार इति विख्यातः पवित्रो धर्मवृद्धितः ॥१४॥
श्रावस्तिपुरमत्रास्ते तत्रेक्ष्वाकुकुले महान्।
राजा काश्यपगोत्रस्य जितारिः सम्बभूव हि ॥१५॥
तस्य राज्ञी सुषेणा च शुभलक्षणसंयुता।
स्वैस्तैस्तैः शुभभावैश्च भूपतेः प्राणतः प्रिया ॥१६॥

इस जम्बूदीप के भरतक्षेत्र में, धर्म-वृद्धि से पवित्र अभार नामक एक देश है। उस देश के श्रावस्ती नाम के नगर में इक्ष्वाकु वंश का काश्यपगोत्रीय जितारि नामक महान पराक्रमी राजा राज्य करता था। उस राजा की शुभ लक्षणों से युक्त

सुषेणा नाम की रानी थी। वह (रानी) अपनी विनय, शील, पतिप्रेम इत्यादि गुणों से राजा को प्राणों से भी प्रिय थी ॥१४-१६॥

सुरेन्द्रोऽवधितश्चाहमिन्द्रस्यागमनं पुरः ।
बुद्ध्वात्र रत्नसंवृष्टयै धननाथं समादिशत् ॥१७॥

षण्मासं तेन संहृष्टया रत्नवृष्टिस्तथा कृता ।
सप्रधानः स भूपालः सपौरो विस्मयं ययौ ॥१८॥

एकदा फाल्गुणे मासि शुक्लपक्षे मृगाङ्कभे ।
सा देवी षोडशस्वप्नावसाने गजमास्यगम् ॥१९॥

दृष्ट्वाद्भुतयुता प्रातः प्रियवक्त्राच्च तत्फलम् ।
श्रुत्वा प्रमुदिता गर्भे चाहमिन्द्रं दधार सा ॥२०॥

तं देवं गर्भगं पुण्यैः कृत्वा सदम्बिका बभौ ।
अन्तरीकृत्य बालार्कं शारदी वा नु चन्द्रिका ॥२१॥

सौधर्मेन्द्र ने अपने अवधिज्ञान से, अहमिन्द्र का आगमन पृथ्वी पर होने वाला है—यह छह मास पूर्व ही जान लिया और कुबेर को रत्नवृष्टि की आज्ञा दी। कुबेर ने अति आनन्द से छह महीने तक रत्नवृष्टि की, जिसे देखकर सर्व प्रजाजनों को व प्रधानमण्डल के साथ राजा को बहुत ही आश्चर्य हुआ। एक बार, फाल्गुन शुक्ल अष्टमी को, चन्द्र नक्षत्र के उदयकाल में सुषेणा रानी ने सोलह स्वप्न देखे। उसके बाद रानी ने मुख के अन्दर प्रवेश करते हुए गज को देखा। प्रातःकाल आश्चर्ययुक्त होकर पूछने पर, अपने पति के मुख से स्वप्नों का फल सुनकर उसको बहुत आनन्द हुआ। उसने अहमिन्द्र (के जीव) को गर्भ में धारण किया। पुण्योदय से अपने उदर में बाल-सूर्य के

समान जिनप्रभु को धारण करने वाली वह जिनमाता रानी सुषेणा शरद ऋतु की चन्द्रिका के समान शोभित होने लगी ॥१७-२१॥

मार्गमासि ततः शुक्लपञ्चदश्यां मृगाङ्कभे ।
आविरासीत्प्रभुः प्रातः सुषेणायां शुभालये ॥२२॥
तद्भावं विदितः शक्र ऐरावतमसज्जयत् ।
लक्षयोजनमुत्तुङ्गो द्वात्रिंशद्वदनो हि सः ॥२३॥
प्रत्यास्यमष्टाष्टरदाः प्रतिदन्तं सरांसि च ।
एकैकं प्रतिकासारं सपादशतसंमिताः ॥२४॥
अम्भोजिन्यः शुभास्तद्वत्प्रत्यम्भोजिनि चाभवन् ।
पंचविंशत्पंचविंशत्कमलानि वराणि च ॥२५॥
अष्टोत्तरसहस्रोक्तपत्राणि प्रतिवारिजं ।
प्रतिपत्रं सुरीणि च नृत्यं विश्वमनोहरम् ॥२६॥
सप्तविंशतिकोट्युक्ता एवं हस्तिमुखोपरि ।
नृत्यन्ति स्माङ्गहारैश्च व्यञ्जकैर्नृत्यकोविदैः ॥२७॥
ऐरावतं समुत्सृज्य एवमिन्द्रो विमानगैः ।
सुरैरशेषैः संयुक्तः स्नावस्तिनगरं ययौ ॥२८॥

उसके बाद मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमा के दिन राजप्रासाद में, रोहिणी नक्षत्र के उदय रहते हुए, सुषेणा रानी के गर्भ से भगवान ने जन्म लिया (उत्तर पुराण के अनुसार संभव जिन का जन्म कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को हुआ था) । प्रभु के जन्म का समाचार पाकर सौधर्मेन्द्र ने ऐरावत हाथी को सज्जित करवाया । वह हाथी एक लाख योजन उत्तुंग था । उसकी ३२ सूंडें थीं व प्रत्येक मुख पर आठ-आठ दांत थे, जिस पर एक-एक

सरोवर था। प्रत्येक सरोवर में १२५ कमल व १२५ कमलिनी थीं। प्रत्येक कमलिनी पर २५२ सुन्दर कमल थे तथा प्रत्येक कमल में १००८ पंखुड़ियाँ थीं, जिनमें ने प्रत्येक पर एक-एक देवाङ्गना हाव-भावपूर्वक नृत्य कर रही थी। इस प्रकार इस ऐरावत हाथी के मुख पर २७ कोटि देवाङ्गनायें नृत्य कर रही थीं। उस नृत्य का स्वरूप, नृत्य कला के विशेषज्ञों को भी आश्चर्य उत्पन्न करने वाला था। इस प्रकार इन्द्र ऐरावत को सज्जित करके, सर्व देवों के साथ श्रावस्ती नगर में पहुँचा ॥२२-२८॥

त्रिःपरिक्रम्य तद्भूयः प्रभुं सङ्ग्राह्य यक्तितः।
सुमेरुपर्वतं गत्वा चक्रे जन्माभिषेचनम् ॥२९॥
अष्टोत्तरशतैः कुंभैः पूर्णैः क्षीरोदवारिभिः।
देवमस्तोषयद्भक्त्या कानकैरतिविस्मितः ॥३०॥
जयनिर्घोषपूर्वं च तत्राहुर्मङ्गलं परं।
देवेशलक्षणं दिव्यं विदीपे देवतार्चिते ॥३१॥
सहस्राष्टशताधिक्यगणितानि शुभानि च।
बाह्याभ्यन्तरचिह्नेन बभूवुस्तस्य वर्ष्मणि ॥३२॥

प्रथम उस इन्द्र ने प्रभु की तीन प्रदक्षिणा देकर, प्रभु को लेकर मेरुपर्वत पर गया, जहाँ पाण्डुक-शिला पर प्रभु का १००८ कलशों के क्षीरसागर जल से जन्माभिषेक किया। जन्माभिषेक के बाद भक्ति से प्रभु का गुणगान किया। जय-जयकार पूर्वक प्रभु का मंगल गुणगान करने के बाद इन्द्र ने प्रभु के शरीर में १००८ दिव्य लक्षण देखे और आनन्दित हुआ ॥२९-३२॥

ततः सुरेन्द्रस्तं देवं श्रावस्तिपुरमानयत्।
नृपाङ्गणे समारोप्य ताण्डवं समदर्शयत् ॥३३॥

प्रसन्नचेतसा कृत्वा ततस्त्वं शम्भवाभिधम् ।
मातुरङ्के समर्प्याथ सदेवः स्वां पुरीं ययौ ॥३४॥
गते कालेऽथ त्रिंत्रिंशत्कोटिसागरसंमिते ।
अजितेशादभूत्तत्र काले श्रीशम्भवप्रभुः ॥३५॥
षष्टिलक्षोक्तपूर्वायुस्तस्य देवस्य चाभवत् ।
चतुःशतधनुर्मानं कायोत्सेधः प्रकीर्तितः ॥३६॥
पंचोत्तरदशप्रोक्त लक्षपूर्वप्रमाणतः ।
कालस्तस्य व्यतीयाय कौमारे तत्कुतूहलात् ॥३७॥

उसके बाद सौधर्मेन्द्र प्रभु को श्रावस्ती नगर में लेकर आया। नाना प्रकार के वस्त्राभूषणों से अलंकृत कर, इन्द्र ने प्रभु के समक्ष ताण्डव नृत्य किया और आनन्दित होकर उसने प्रभु का नाम संभवनाथ रखा। तत्पश्चात् प्रभु को माता को सौंपकर इन्द्र सपरिवार स्वर्ग चला गया।

श्री अजित तीर्थंकर के बाद ३३ कोटि सागर बीतने पर संभव तीर्थंकर हुए। संभवनाथ की आयु ६० लाख वर्ष पूर्व की थी। उनके शरीर की ऊँचाई चार सौ धनुष की थी। कुमार-काल के १५ लाख पूर्व बीत जाने पर प्रभु का राज्याभिषेक हुआ ॥३३-३७॥

ततो राजा बभूवासौ राज्ये तस्य सुधर्मिणः ।
चतुरुत्तरचत्वारिंशत्पूर्वा भोगतो गताः ॥३८॥
एकदा सिंहपीठे स सुखासीनः प्रजेश्वरः ।
तारापातं ददर्शाग्रे तदा चित्ते व्यचिन्तयत् ॥३९॥
नश्वरश्चैव संसारः सारो न हृदि चिन्तितः ।
अनुप्रेक्षा द्वादशका भावयामास मानसे ॥४०॥

तदा लौकान्तिका देवाः प्राप्ताः भूपतिसन्निधौ ।
जगुस्ते त्वामृते देव विमर्शयति को भुवि ।।४१।।

उत्तम धर्म से युक्त प्रभु के ४४ लाख पूर्व व्यतीत होने पर, एक दिन, जब वे सिंहासन पर विराजमान थे, उन्होंने आकाश से टूटते हुए तारों को देखा। उसी समय उनके मन में ऐसा विचार आया कि यह तारों का टूटना हमें बता रहा है कि शरीर व इन्द्रिय-भोग के पदार्थ कुत्सित, पाप व ताप के कारण हैं; इसलिए इनमें प्रेम नहीं करना चाहिए। यह संसार नाशवान् है। इसमें कुछ भी सार नहीं है। प्रभु ने इस प्रकार मन में चिन्तवन किया और बारह भावनाओं का चिन्तवन करने लगे ।।३८-४१।।

विशालराज्यसंपत्तावपि प्राप्तो विरक्तताम् ।
तदा राज्यं स्वपुत्राय दत्वासौ सार्वभौमकम् ।।४२।।

स्वयमारुह्य सिद्धयर्थं शिबिकामद्भुतप्रभाम् ।
नृपविद्याधरसुरैरूढां　　देवकृतोत्सवः ।।४३।।

उसी समय लौकान्तिक देव संभवनाथ भगवान के पास आये और कहने लगे कि प्रभो! आपके समान विचारवान मनुष्य दूसरा कौन होगा? विशाल राज्य-सम्पत्ति उपस्थित होने पर भी आप उनसे विरक्त हुए हैं, आप धन्य हैं। उसके बाद प्रभु अपने पुत्र को राज्य सोंपकर, अद्भुत कान्ति से युक्त पालकी में विराजमान हुए। उस पालकी को, प्रथम राजाओं ने (मनुष्यों ने), उसके बाद विद्याधरों ने तथा अन्त में देवों ने उठाकर तपोवन में पहुँचाया ।।४२-४३।।

तपोवनमुपागच्छत् गीर्वाणगणसंस्तुतः ।
सहेतुकाभिधारण्ये मार्गे मासि सिते बले ।।४४।।
पंचदश्यां स जग्राह तपोदीक्षामनाकुलः ।
सहस्रैः सह भूपालैर्दीक्षितोयं सहस्रगुः ।।४५।।
महाव्रतानि पञ्चाश्च धृत्वा तेजोऽर्कसन्निभम् ।
मनःपर्ययबोधाढ्यो बभूव किल तत्क्षणात् ।।४६।।
अन्तर्मुहूर्ते तज्ज्ञानं प्रादुरासीत्प्रभोर्महत् ।
द्वितीये दिवसे देवो नगरं कनकाभिधम् ।।४७।।

देव-समूह ने प्रभु की स्तुति की। प्रभु ने सहेतुक वन में मार्गशीर्ष शुक्ल पूर्णिमा को प्रवेश कर, एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा ले ली। उन्होंने पाँच महाव्रत धारण किये। वे सूर्य के समान तेजस्वी थे। दीक्षा के तत्काल बाद ही प्रभु को अत्यन्त निर्मल परिणाम होने से मनःपर्ययज्ञान प्राप्त हुआ। तीर्थंकरों को दीक्षा लेने के बाद अन्तमुहूर्त में नियम से मनःपर्ययज्ञान प्रकट हो जाता है ।।४४-४७।।

गत्वा भिक्षां समकरोत् कनकप्रभभूपतेः ।
आहारसमये लेभे पंचाश्चर्याणि भूपतिः ।।४८।।
पुनः समागमद्देवस्तपोवनमनुत्तमम् ।
द्विसप्ततिसमं देवश्छद्मस्थस्तप आचरन् ।।४९।।
कार्तिकस्य चतुर्थ्यां स कृष्णायामपराह्णकैः ।
षष्ठोपवासकृच्छिलातले केवलमाप सः ।।५०।।
तदा समवसारः स स्वयं शक्रादिनिर्मितः ।
यथासंख्यं गणेन्द्राद्यास्तिर्यगन्ताः प्रहर्षिताः ।।५१।।

दूसरे दिन भगवान संभवनाथ कनकपुर नगर में आहार के लिए पधारे। उस नगर के राजा ने प्रभु को आहार दिया।

आहार के बाद उस राजा के यहाँ पंचाश्चर्य की वृष्टि हुई। आहार के बाद प्रभु ने तपोवन की ओर प्रयाण किया। बहत्तर वर्ष तक प्रभु ने तपश्चरण किया। कार्तिक कृष्णा चतुर्थी के दिन दोपहर में दो उपवास की प्रतिज्ञा करने वाले, शिलातल पर ध्यानारूढ़ प्रभु को केवलज्ञान प्राप्त हुआ ।।४८-५१।।

स्वस्वकोष्ठे विराजन्ते प्रभुस्तवनतत्पराः ।
सहस्रसूर्यसदृशस्तत्र सिंहासने शुभे ।।५२।।
विभूतिसहितः सम्यग् व्यराजत तपोनिधिः ।
गणेन्द्राद्यैश्च सम्पृष्टो दिव्यध्वनिमुदाहरत् ।।५३।।
नानाधर्मोपदेशं स कृतवांस्तत्र निर्मलः ।
विहृत्य धर्मोपदेशान् शिष्टे मासप्रमाणतः ।।५४।।
आयुषि स्वदिव्यनादं तदा समहरत्प्रभुः ।
सम्मेदवत्तधवलकूटं मुनिवरैः सह ।।५५।।
संप्राप्य तत्र शुद्धात्मा मासमेकमुवास वै ।
वैशाखकृष्णषष्ठ्यां च सहस्रमुनिभिः सह ।।५६।।
देवाधिदेवः सम्प्राप मुक्तिं परमदुर्लभाम् ।
तत्पश्चात् कोटिकोट्यश्च नव चैवं द्विसप्ततिः ।।५७।।
लक्षान्सप्तसहस्राणि द्विचत्वारिंशदुत्तरम् ।
शतानि पंच मुनयः सन्ति संख्याप्रमाणतः ।।५८।।
अभिनन्दनपर्यन्तगतास्तत्रैव सिद्धताम् ।
तद्दत्तधवलस्यास्य सम्यग्यात्राविधायिनः ।।५९।।
तिर्यङ्नरकगत्योश्च नाशो भवति निश्चितम् ।
द्विचत्वारिंशदुद्भूतं लक्षप्रोषधजं फलम् ।।६०।।
अनायासादवाप्नोति तत्कूटस्य च यात्रिकः ।
एककूटफलं ह्येतत्सर्वकूटप्रपूजनात् ।।६१।

यत्फलं तत्फलं वक्तुं वाग्देव्यापि न शक्यते ।
मादृशश्चाल्पमेधास्तत्कथं कथयितुं क्षमः ॥६२॥

उसी समय इन्द्रादिकों ने समवशरण की रचना की। क्रम से गणधर आदि से लेकर पशु पर्यन्त सर्व जीव आनन्दित होकर अपने-अपने कोठों में शोभित होने लगे। बाह्याभ्यंतर विभूति से सहित तपोनिधि व गणधरादिकों ने प्रभ से धर्म का स्वरूप पूछा। तब भगवान ने दिव्यध्वनि से सबको धर्म का स्वरूप कहा। प्रभु ने अनेक देशों में विहार करते हुए धर्मोपदेश दिया। एक माह की आयु शेष रहने पर दिव्यध्वनि व विहार बन्द हो गया। प्रभु ने सम्मेदगिरि पर्वत पर दत्तधवल नामक कूट पर अनेक मुनियों के साथ आकर एक माह का योग धारण कर लिया। एक हजार मुनियों के साथ प्रभु ने बैशाख शुक्ला षष्ठी के दिन (उत्तरपुराण के अनुसार चैत्र शुक्ला षष्ठी के दिन) परम दुर्लभ मुक्ति को प्राप्त किया। प्रभु के मुक्त होने के बाद इस कूट पर से नौ करोड़ बहत्तर लाख सात हजार एक सौ सेंतालीस मुनियों ने मोक्ष प्राप्त किया। अभिनन्दननाथ भगवान के पूर्व तक इस कूट से इतने मुनियों ने मोक्ष प्राप्त किया। इस दत्तधवलकूट की भक्ति-भाव से यात्रा करने वाले को तिर्यञ्च व नरक गति नियम से नहीं होती। उसे ४२ लक्ष प्रोषधोपवास का फल प्राप्त होगा। यह सिर्फ एक कूट की पूजा का फल है। जो इस प्रकार सभी कूटों की यात्रा-दर्शन करता है उसके पुण्य के फल का वर्णन करने में सरस्वतीदेवी भी समर्थ नहीं हैं, तब फिर मेरे समान अल्पबुद्धि मनुष्य उस फल को कहने में कैसे समर्थ हो सकता है।॥५२-६२॥

जम्बूद्वीपेऽथ सुक्षेत्रे बंगदेशे पुरं वरम् ।
हेमाख्यं तत्र राजाभूत् हेमदत्तः सुधार्मिकः ॥६३॥

तद्राज्ञी जयसेनाख्या पुत्रहीना न सा बभौ ।
महापरात्मिकाप्येषा पुत्रवाञ्छासमाकुला ।।६४।।

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में बंगदेश के हेमपुर नामक नगर में हेमदत्त नामक अतिधार्मिक राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम जयसेना था। सन्तान न होने के कारण वह दुखी रहती थी। यद्यपि वह आत्मस्वरूप को ही देखती थी, तो भी पुत्रेच्छा से व्याकुल रहती थी ।।६३-६४।।

एकदा सा महाराजं व्यजिज्ञपदुदारधीः ।
देव पुत्रनिमित्तं हि यत्नः कार्यस्त्वयाधुना ।।६५।।
स प्राह कर्मवशतः प्राप्यतेत्र शुभाशुभम् ।
उवाचैषा तथापीश यत्नात्सिद्धिः स्मृता बुधैः ।।६६।।
द्वौ तदानीं च विपिने गतौ चम्पाशिलोपरि ।
अशोकवृक्षमूले चापश्यतां चारणौ मुनी ।।६७।।
परिक्रम्य च तौ धीरं ववंदेते स्वस्वभावतः ।
पुनस्तं प्राह भूमीशो मुने ! शृणु वचो मम ।।६८।।
अपुत्रोऽहं जगत्यस्मिन् भविष्यत्यपि वा न मे ।
विचार्याह मुनिर्भूपं राजन्मद्वचनं कुरु ।।६९।।
सम्मेदशैलयात्रातस्तव पुत्रो भविष्यति ।
पुत्रसौख्यमनुप्राप्य पश्चात्त्वं मुक्तिमेष्यसि ।।७०।।

एक समय उदारबुद्धिवाली रानी ने राजा से निवेदन किया कि, प्रभो ! अब हम लोगों को शीघ्र ही पुत्र-प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए। राजा कहने लगा—देवी ! कर्मों के अधीन होकर शुभाशुभ फल जीवों को प्राप्त होता है। यह सुन कर रानी ने कहा—प्रभो ! कर्मवश होकर भी प्रयत्न से जीवों को इच्छित

कार्यों की सिद्धि होती है, ऐसा विद्वानों ने कहा है। तब वे राजा और रानी दोनों वन में गये। वहाँ पर उन्होंने अशोक वृक्ष के नीचे चम्पा नामक शिला पर बैठे हुए दो चारण-मुनियों को देखा और तीन प्रदक्षिणा देकर उन्हें नमस्कार किया। राजा कहने लगा—महाराज ! मैं निःसंतान हूँ, कृपा करके यह बतायें कि मुझे पुत्र-प्राप्ति होगी या नहीं ? मुनिराज ने विचार कर कहा—राजन् ! सम्मेदाचल की वन्दना करने पर तुम्हें पुत्र प्राप्त होगा, पुत्र-सुख का अनुभव कर तुम्हें मुक्ति प्राप्त होगी ॥६५-७०॥

मुनेराज्ञां समादाय देव्या सह महीपतिः ।
रक्ताम्बरधरस्तूर्णं यात्रार्थं सम्मुखोऽभवत् ॥७१॥

कोटिमानवसंयुक्तः चतुःसंघान्प्रपूज्य सः ।
महोत्साहेन संयुक्तः सम्मेदमगमन्नृपः ॥७२॥

स सिद्धपर्वतं भूपः संपूज्य विधिवत्तदा ।
त्रिः परिक्रम्य हर्षेण सहसागात्स्वमालयम् ॥७३॥

रत्नदत्तस्तत्प्रभावात् तस्य पुत्रो बभूव हि ।
तस्यैव वंशे समभून्मघवान् चक्रवर्त्यपि ॥७४॥

तेनापि संघतो यात्रा सम्मेदस्य कृता शुभा ।
द्वात्रिंशल्लक्षसङ्घेन विलाससुखदायिनी ॥७५॥

मुनीश्वरों की आज्ञा लेकर रानी के साथ राजा ताम्र-वस्त्र धारण कर सम्मेदगिरि क्षेत्र की यात्रा के लिए उद्यत हुआ। एक कोटि मनुष्यों के साथ चार प्रकार के संघ की पूजन करके, बहुत उत्साह से वह राजा सम्मेदगिरि की वन्दना के लिए गया। उसने विधिपूर्वक सिद्ध-पर्वत की पूजा की, हर्ष से तीन प्रदक्षिणायें

कीं और अपने घर वापस आ गया। सम्मेदगिरि की यात्रा के माहात्म्य से राजा को रत्नदत्त नामक पुत्र प्राप्त हुआ, जिसके वंश में मघवा नामक चक्रवर्ती उत्पन्न हुआ। मघवा चक्रवर्ती ने भी ३२ लाख मनुष्यों के साथ उत्तम सुख प्रदान करने वाली, इस शुभ क्षेत्र की यात्रा की ॥७१-७५॥

यात्रा सम्मेदशैलस्य सर्वकामफलप्रदा।
कर्तव्या सततं सुज्ञैः चतुर्वर्गफलार्थिभिः ॥७६॥

वर्धमानोक्तितः पश्चाल्लोहाचार्येरितं च यत्।
तद्भव्येषु प्रमाणं हि अभव्या नाधिकारिणः ॥७७॥

इस क्षेत्र की यात्रा सर्व इच्छित फल को देने वाली है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों ही पुरुषार्थ के फल की इच्छा रखने वाले मनुष्य को सम्मेदगिरि की यात्रा अवश्य करना चाहिए। जो वर्द्धमान भगवान के कथनानुसार श्री लोहाचार्यजी ने जो कहा है, वह भव्यों को प्रमाण है, अभव्यों को कुछ भी अधिकार नहीं हैं ॥७६-७७॥

शार्दूलविक्रीडितम्

श्रीसम्मेदगिरीन्द्रदत्तधवलप्रख्यातकूटस्थितः ।
कायोत्सर्गविधानतत्परमतिर्योगीन्द्रवृन्दार्चितः ॥
योगादाप्तनिरामयं सुखमयं ध्यानाग्निदग्धाखिल-
व्यामोहप्रविकस्स पातु सततं श्रीशम्भवो वः प्रभुः ॥७८॥

सम्मेदगिरि क्षेत्र के दत्तधवल कूट पर जो चढ़ चुके हैं और जो कायोत्सर्ग-विधान में तत्पर हैं, जो योगीन्द्रों से पूजित हैं तथा जिन्होंने ध्यानाग्नि से व्यामोह को नष्ट कर दिया

है—ऐसे श्री संभवनाथ जिनेश्वर तुम्हारा नित्य ही रक्षण करें ।।७८।।

इति श्रीसम्मेदगिरिमाहात्म्ये दत्तधवलकूटवर्णनंनाम तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ।।

इस प्रकार श्री सम्मेदगिरि माहात्म्य में दत्तधवल कूट का वर्णन करने वाला तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।



जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु में लोग दिन में तरुओं की छाया का आश्रय लेते हैं, शीतल जल वाले सरोवरों में डूबे रहकर ताप निवारण करते हैं, शीतल पेय पीते हैं और रात्रि में खुले आकाश के नीचे चन्द्र की शीतल किरणों से शांति प्राप्त करते हैं; उसी प्रकार जिनेन्द्र कल्पतरु के पादकमलों में संसार के जन्म-जरा-मरणरूप तापत्रय से मुक्ति प्राप्त करने के लिये अवश्य जाना चाहिये।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

कोटिसूर्याधिकज्योतिः कपिलाञ्छनलाञ्छितः ।
जयत्यविरतं श्रीमान् परमेशोऽभिनन्दनः ।।१।।

जिनकी कान्ति कोटि सूर्यों की अपेक्षा भी अधिक है, जो वानर-चिह्न से युक्त हैं, जो बाह्याभ्यंतर लक्ष्मी से युक्त हैं, वे अभिनन्दन जिनेश्वर नित्य ही जयवन्त हों ।।१।।

जम्बूद्वीपे विदेहेऽत्र पूर्वस्मिन्भाति सन्ततम् ।
सीता नद्याश्च तद्भागे दक्षिणे मङ्गलावती ।।२।।
देशोभिरम्यस्तत्रास्ते पुरं श्रीरत्नसंचयम् ।
महाबलाख्यस्तत्रासीद्राजा सुकृतसागरः ।।३।।
महासेना च तद्राज्ञी कान्त्याभूदिव कौमुदी ।
तया सह महीपालः परमं सुखमन्वभूत् ।।४।।

इस जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में सीता नदी के दक्षिण भाग में मंगलावती नाम का देश नित्य ही शोभायमान हो रहा है। इस रमणीय देश में रत्नसंचय नामक नगर है। उसमें पुण्य के संचयों के समुद्र समान महाबल नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम महासेना था। वह सौन्दर्य में मानो चन्द्रमा की कान्ति के समान दिखती थी। राजा उस रानी के साथ परम सुखों का अनुभव करता था ।।२-४।।

एकदादर्शमध्ये स किञ्चित्पलितमैक्षत ।
तद्धेतुनैव वैराग्यमगमत्सुदृढं प्रभुः ।।५।।
धनपालाख्यपुत्राय तदा राज्यं समर्प्य सः ।
महाविवेकसम्पन्नः स्वयं वनमुपाययौ ।।६।।

गत्वा विमलवाहाख्यस्वामिनः पादसन्निधौ ।
दीक्षां समग्रहीद्राजा तपसे कृत-निश्चयः ।।७।।

एक समय राजा दर्पण में अपने मुख को देख रहा था, तभी उसे अपने सिर के बालों को सफेद हुआ देखकर दृढ़ वैराग्य हुआ। उसने अपने पुत्र धनपाल को राज्य दे दिया और स्वयं महाविवेक युक्त वन में जाकर मुनि विमलवाहन के सानिध्य में दीक्षित हो गया व तपश्चरण करने का पूर्ण निश्चय किया ।।५-७।।

बभारैकादशाङ्गानि तद्वत्षोडशभावनाः ।
भावं कृत्वा च सन्धार्य रराज द्युमणिर्यथा ।।८।।

उन मुनिराज को ग्यारह अंग का ज्ञान प्राप्त हुआ। उन्होंने षोडश कारण भावनाओं का बारंबार चिन्तवन किया व तदनुसार आचरण भी किया। जिस प्रकार सूर्य तेज धारण कर शोभित होता है, उसी प्रकार महाबल मुनिराज महाव्रतों के आचरण से सूर्य के समान राजित होने लगे ।।८।।

आयुषान्ते च संन्यासविधिना देहमुत्सृजन् ।
सर्वार्थसिद्धिविजयविमानं प्राप्तवान्मुनिः ।।९।।

तत्राहमिन्द्रपदवीं सम्प्राप्य स्वतपोबलात् ।
त्रिंत्रिंशत्सागरायुष्य भूमावधिविलोचनः ।।१०।।

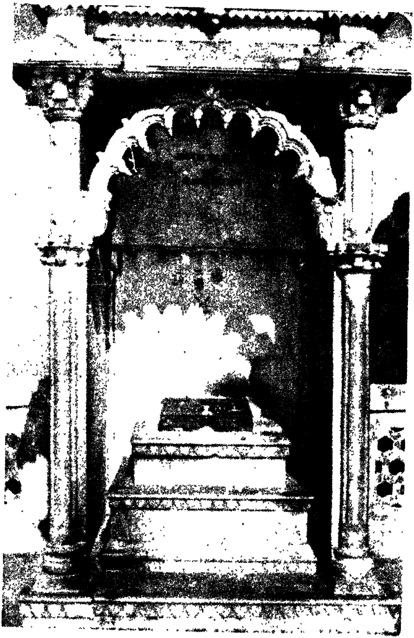
त्रिंत्रिंशदुक्तसाहस्रवर्षोपरि स मानसं ।
भोजनं कृतवांस्तत्र स्वानन्दपरितोषितः ।।११।।

त्रिंत्रिंशत्पक्षगमने श्वासोच्छ्वासधरस्तथा ।
चतुरङ्गुलकन्यूनः हस्तमात्रशरीरकः ।।१२।।

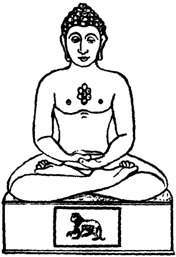
आयुष्य के अन्त में उन्होंने सन्यास-विधि से मरण प्राप्त कर सर्वार्थसिद्धि के विजय बिमान में अहमिन्द्र के रूप में जन्म लिया। उस देव की आयु ३३ सागर प्रमाण थी। वह अवधि-ज्ञान से सप्तम नरक तक को देखने वाला था। तेतीस हजार वर्ष उपरान्त वह अमृताहार करता था व उतने ही पक्ष बीत जाने पर श्वासोच्छ्वास लेता था। उसके शरीर का प्रमाण चार अंगुल कम एक हाथ प्रमाण था। वह देव स्वानन्द (आत्मानन्द) से संतुष्ट हो रहा था ॥९-१२॥

ब्रह्मचर्यधरो नित्यं सप्ततत्त्वव्रजाञ्चितः ।
सिद्धध्यानसमारूढः सिद्धध्यानरतोऽभवत् ॥१३॥
अहमिन्द्रसुखेऽप्येष महत्त्वासक्तिवर्जितः ।
मासषट्कावशिष्टायुः कर्मक्षयसमुत्सुकः ॥१४॥
तत्राभवत्प्रभुस्तस्य भूम्यागमनसत्कथाम् ।
शृणुध्वं साधवः सर्वे श्रवणात्पापपङ्कहाम् ॥१५॥
जम्बूद्वीपे शुभे क्षेत्रे भारते कोसलाभिधे ।
देशेऽयोध्यापुरी तत्रेक्ष्वाकुवंशेऽथ काश्यपे ॥१६॥
गोत्रे स्वयंवरो राजा बभूव सुकृताम्बुधिः ।
सिद्धार्था तस्य महिषी भूपचित्तवशंकरी ॥१७॥
तन्मोवार्थ च षण्मासाग्रतः स्वावधितो वृषा ।
प्रभोरागमनं ज्ञात्वा समादिश्य धनेश्वरम् ॥१८॥
अकारयद्रत्नवृष्टिं तद्गृहे तत्पुरे तथा ।
तामिमां वृष्टिकां दृष्ट्वा प्रजाः सर्वाः शमं गताः ॥१९॥

वह अहमिन्द्र देव नित्य ही ब्रह्मचर्य धारण कर सप्त तत्वों के स्वरूप का चिन्तवन करता रहता था। सतत् सिद्धों के ध्यान



आनन्द कूट



अभिनन्दन जिनराज का, आनन्द कूट है जेंह।
मन वच तन कर पूजहूं, शिखर सम्मेद यजेंह।

ओ३म् ह्रीं श्री अभिनन्दननाथ जिनेन्द्रादि मुनि ७२ कोड़ा कोड़ी ७० करोड़ ३६ लाख ४२ हजार ७०० मुनि इस कूट से सिद्ध भए तिनके चरणारविन्द को मेरा मन वचन काय से बारम्बार नमस्कार हो, जलादि अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।।४।।

इस टोंक की भाव सहित वंदना करने से एक लाख उपवास का फल होता है।

में तत्पर रह कर वह अहमिन्द्रों के सुखों का अनुभव करता हुआ भी आशक्ति-रहित था। जब उसकी आयु छह महिने की रह गई, तब कर्म-क्षय के लिए उत्सुक उस विमान के अधिपति अहमिन्द्र ने पृथ्वी पर अवतार लिया—उसकी शुभकथा को, हे सज्जन पुरुषो ! सुनो। यह कथा पाप रूपी कीचड़ को दूर करने वाली है।

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में कौसल नामक देश है, इस देश की अयोध्या नाम की नगरी में इक्ष्वाकु वंश के काश्यप-गोत्रीय स्वयंवर नाम का राजा राज्य करता था, जो पुण्य का सागर था। उस राजा की रानी का नाम सिद्धार्थी था। उसने राजा के मन को स्वच्छ किया था। राजा और रानी को प्रसन्न रखने के लिए, इन्द्र ने प्रभु के आगमन को जानकर छह मास पूर्व से ही कुबेर द्वारा नगर में रत्नवृष्टि करवाई, जिसे देखकर सम्पूर्ण प्रजा शान्ति को प्राप्त हुई ॥१३-१९॥

ततो वैशाखमासस्य शुक्लषष्ठ्यां पुनर्वसौ ।
राज्ञी स्वप्नान्ददर्शासौ षोडशान्ते गजं मुखे ॥२०॥

प्रविष्टं सा समालोक्य प्रबुद्धा प्रातरञ्जसा ।
पत्युः समीपमागत्य स्वप्नानकथयत्सती ॥२१॥

भूपाननात्फलं तेषां श्रुत्वानदथुनिर्भरा ।
दधौ गर्भेण तं देवमहमिन्द्राख्यमुत्तमम् ॥२२॥

ततः स माघमासस्य द्वादश्यां शुक्लपक्षके ।
इन्द्रस्तदा स गीर्वाणः समागत्य प्रभुं मुदा ॥२३॥

समादाय गतो मेरुं तत्र देवं महाद्युतिम् ।
संस्थाप्य तत्र पूर्वास्यं द्वाविन्द्रौ मोदनिर्भरौ ॥२४॥

क्षीरवारिधिवारिभिः स जयनिर्घोषपूर्वकम् ।
अभिषिच्य पुनः प्राप साकेतनगरं मुदा ॥२५॥

भूपाङ्गणे प्रभुं स्थाप्य रत्नसिंहासनोपरि ।
सम्पूज्य विधिवद्भूयः ताण्डवं संविधाय सः ॥२६॥

अभिनन्दननामानं कृत्वा तं देवतेश्वरम् ।
मात्रे समर्प्य त्रिदशैः सह प्रापामरावतीम् ॥२७॥

उसके बाद वैशाख शुक्ल षष्ठी के दिन पुनर्वसु नक्षत्र में रानी ने प्रातःकाल की शुभ बेला में सोलह स्वप्न देखे व अन्त में अपने मुख में हाथी को प्रवेश करते हुए देखा। नींद खुलते ही वह उठ बैठी। प्रातःकाल अपने पति को उन स्वप्नों को कह सुनाया। स्वप्नों के फल को राजा के मुँह से सुनकर वह अति आनन्दित हुई। इसके पश्चात् रानी ने अपने गर्भ में अहमिन्द्र के जीव को धारण किया। माघ मास की द्वादशी को प्रभु का जन्म हुआ। इन्द्र आनन्दपूर्वक सर्व देवों के साथ आया व उसने महा-कान्तिमान् प्रभु को मेरु पर्वत पर ले जाकर पूर्वाभिमुख स्थापन किया और आनन्द से भरे हुए सौधर्म व ऐशानेन्द्र ने जयघोष-पूर्वक क्षीर-समुद्र के जल से प्रभु का अभिषेक किया। तत्पश्चात् प्रभु को वापस साकेता नगरी में लाकर, राजाङ्गण में प्रभु को विराजमान करके विधिपूर्वक उनकी पूजा की। इन्द्र ने प्रभु के समक्ष ताण्डव नृत्य किया व प्रभु का नाम अभिनन्दन रखा। तत्पश्चात् इन्द्र ने बालक प्रभु को माता को सौंपकर सर्व देवों के साथ अमरावती को वापस प्रस्थान किया ॥२०-२७॥

दशलक्षोक्तकोटचुक्त सागरेषु गतेषु च ।
शम्भवात्स समुत्पन्नस्तदभ्यन्तरजीवनः ॥२८॥

पंचाशल्लक्षपूर्वायुः सार्धत्रिशतचापकः ।
कायोत्सेधः स्वर्णकान्तिः सुखमासागरप्रभुः ॥२६॥
अम्यनन्वय देशोऽभिनन्दनः पितरौ तदा ।
भूपाङ्गणे रिङ्खमास स्वकीयैर्बालचेष्ठितैः ॥३०॥
कुमारकालगमने राज्यं सम्प्राप्य पैतृकम् ।
अनेकस्त्रीसमायुक्तः परमं सुखमन्वभूत् ॥३१॥

संभवनाथ के बाद अभिनन्दननाथ दश लाख कोटि सागर बीतने के बाद उत्पन्न हुए। उनकी आयु ५०० लक्ष पूर्व प्रमाण थी व उनका शरीर साढ़े तीन सौ धनुष प्रमाण था। उनके शरीर की कान्ति स्वर्ण-समान थी। इस प्रकार प्रभु सुखपूर्वक रहने लगे। प्रभु ने अपनी बाल-क्रीड़ाओं से माता-पिता को आनन्दित किया। कुमारकाल बीतने पर प्रभु पिता के राज-सिंहासन पर विराजमान हुए। अनेक राज-कन्याओं के साथ उनका विवाह सम्पन्न हुआ। उन्होंने उत्कृष्ट सुख का अनुभव किया ॥२८-३१॥

एकदा सौधगो राजा सिंहासनगतः प्रभुः ।
पञ्चवर्णघनं दृष्टविनष्टं मुदितं च खे ॥३२॥
शीघ्रवैराग्यमापन्नो लौकान्तिकनुतस्ततः ।
सुरैः कृतोत्सवो भूयः सुरोढशिबिकास्थितिः ॥३३॥
स्वयंभूवनगो माघे शुक्लद्वादशके दिने ।
पुनर्वसौ स जग्राह दीक्षां परमपावनीम् ॥३४॥

एक समय प्रभु सिंहासन पर बैठे हुए थे कि आकाश में पंचरंगी मेघ उत्पन्न होकर शीघ्र ही नष्ट हो गया। प्रभु ने इसे प्रत्यक्ष देखा और उन्हें वैराग्य हो गया। लौकान्तिक देवों ने

आकर उनकी स्तुति की व प्रभु को उत्सव-पूर्वक पालकी में बैठाया। प्रभु की पालकी को स्वयंभू वन ले जाया गया, जहाँ माघ शुक्ला द्वादशी के दिन पुनर्वसु नक्षत्र में प्रभु ने पावन जैनेश्वरी दीक्षा ली ॥३२-३४॥

मतिश्रुत्यवधिज्ञानैस्त्रिभिः पूर्वं समुज्ज्वलन् ।
दीक्षानन्तरमेवासौ चतुर्थज्ञानमाप सः ॥३५॥
द्वितीयेऽह्निगतेऽयोध्यामिन्द्रदत्तनृपार्चितः ।
क्षीरान्नं हि चकारासौ तपोऽरण्यं गतः पुनः ॥३६॥
अष्टादशाब्दमौनस्थो महोग्रतप आचरन् ।
शिरीषतरुमूले च पौषे मास्यसिते दले ॥३७॥
चतुर्दश्यामनुप्राप केवलज्ञानमुत्तमम् ।
तत्क्षणादेव सम्प्राप्ता सेन्द्रास्तत्र दिवौकसः ॥३८॥
तदा समवसारं ते विरच्याद्भुतमुत्तमम् ।
देवं संस्थापयामासुः तत्र भक्त्या समर्चयन् ॥३९॥
पुराविष्वा तत्र देवं भक्तिनिर्भरमानसाः ।
सर्वे गणधरास्ते च वव्रुः प्रेमतः प्रभुम् ॥४०॥
घातिकर्मक्षयाद्देवः पञ्चमज्ञानसंयुतः ।
चतुष्टयमनन्तानां प्राप भानुरिवोज्ज्वलन् ॥४१॥
संपृष्टः स तदा देवो मुनिभिर्वृद्धवाणिभिः ।
विचित्रदिव्यध्वनिना चक्रे धर्मोपदेशनम् ॥४२॥

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान व अवधिज्ञान से तो प्रभु जन्म से ही संयुक्त थे। दीक्षा लेते ही मनःपर्ययज्ञान भी उन्हें प्रकट हो गया। दूसरे दिन प्रभु आहार के लिए अयोध्या में गये। वहाँ पर राजा इन्द्रदत्त ने प्रभु को पूर्ण सत्कार-पूर्वक क्षीरान्न का

भोजन दिया। आहारोपरान्त प्रभु तपोवन को चले गये। प्रभु ने अठारह वर्ष तक मौनपूर्वक उग्र तपश्चरण करना प्रारम्भ किया। एकबार जब वे शिरीष वृक्ष के नीचे बैठे ध्यान कर रहे थे, उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। इन्द्रों सहित सभी देवों ने आकर समवशरण की रचना की व प्रभु को सिंहासन पर स्थापन कर, उनकी पूजा की। भक्ति से जिनके हृदय भीगे हुए हैं ऐसे लोग नगरों से प्रभु के दर्शन के लिए आये। गणधरादिक भी आये। उन्होंने प्रभु को बड़ी उत्सुकतापूर्वक देखा। सूर्य के समान दीप्तिमान प्रभु चार घातिया कर्मों का नाश कर केवल-ज्ञान से युक्त हुए तथा उन्हें अनन्त चतुष्टय—अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख व अनन्त वीर्य की प्राप्ति हुई। गणधर स्वामी द्वारा प्रभु से प्रश्न करने के बाद भगवान ने नाना भाषाओं में परिणत होने वाली दिव्यध्वनि में धर्मोपदेश दिया॥३५-४२॥

अन्वबोचत्तत्त्वव्याख्यानं श्रुत्वा प्रभुमुखाम्बुजात्।
आनन्दमभिजग्मुस्ते परमं हि मुनीश्वराः॥४३॥

धर्मोपदेशं व्याकुर्वन्पुण्यक्षेत्रेषु स प्रभुः।
व्यहरत्परमेशानो दिव्यनादामृतं किरन्॥४४॥

अङ्गे वङ्गे कलिङ्गे च काश्मीरे मालवे तथा।
हम्मीर-खेट-घोटेषु महाराष्ट्रे च लाटके॥४५॥

इत्यादि धर्मक्षेत्रेषु प्रभुणा धर्म ईरितः।
यदृच्छयाखिलैः सार्धं विहारः कृत उत्तमः॥४६॥

मासमात्रावशिष्टायुर्यदासीत्संहरन् ध्वनिम्।
सम्मेदपर्वतं गत्वा स्थितो ह्यानन्दकूटके॥४७॥

शुक्लध्यानधरो देवश्चैत्रासिते दले शुभे।
सहस्रमुनिभिः सार्धं प्रतिमायोगमास्थितः ॥४८॥
केवलज्ञानदीप्ताग्निदग्धकर्मवनः प्रभुः।
पूर्वोक्तमुनिभिः सार्धं निर्वाणपदमाप सः ॥४९॥
तत्प्रमाधिष्ठ तत्कूटयात्रामाहात्म्यमुत्तमम्।
वक्ष्ये येन कृता यात्रा तथा तत्कथयाम्यहम् ॥५०॥
त्रिसप्तत्युक्तकोटीनां कोटिसप्ततिकोटयः।
सप्ततिप्रोक्त लक्षं च सप्त संख्या शतप्रमान् ॥५१॥
सहस्राणि द्विचत्वारिंशत्पराणि शतानि च।
पञ्चेत्युक्त प्रमाणा हि तत्रस्थाः सिद्धतां गताः ॥५२॥

प्रभु के मुख-कमल से तत्त्वज्ञान का उपदेश सुनकर वे सर्व मुनीश्वर अति सन्तुष्ट हुए। पुण्यमय आर्यदेश में धर्मोपदेश करके व दिव्यध्वनि रूप अमृत की वृष्टि करने वाले प्रभु ने बारह सभाओं के साथ विहार करके अंग, बंग, कलिंग, कश्मीर, मालव, हम्मीर, खेट, घोट, महाराष्ट्र, लाट इत्यादि धर्मक्षेत्रों में धर्म को स्थिर किया। एक मास आयु शेष रह जाने पर प्रभु सम्मेदगिरि क्षेत्र पर जाकर आनन्दकूट पर ध्यानावस्थित हो गये। चतुर्थ शुक्लध्यान के धारक प्रभु ने चैत्र कृष्ण षष्ठी (उत्तर पुराणानुसार चैत्र शुक्ल षष्ठी) के दिन योग-निरोध कर लिया और केवलज्ञान रूपी अग्नि से कर्म-वन को जला कर, एक हजार मुनियों के साथ निर्वाण पद प्राप्त किया। इस आनन्दकूट की यात्रा का माहात्म्य जानकर, जिसने भी यात्रा की है, उसके माहात्म्य को मैं कहता हूँ। इस आनन्दकूट पर (तिहत्तर) कोटि व सत्तर कोटि, सत्तर लाख, सात सौ मुनियों ने मुक्ति पाई है ॥४३-५२॥

जम्बूद्वीपे शुचिक्षेत्रे भारते पूर्वमन्दरे ।
राजा पूर्णपुरस्यासीन्नामतो रत्नशेखरः ।।५३।।
राज्ञी तस्य महापुण्या नाम्ना सा चन्द्रिकामती ।
तद्भूपवंशे विजयभद्रोऽभूद्धरणीपतिः ।।५४।।
गुर्वासक्तो गुणनिधिर्भव्यो भव्यजनस्तुतः ।
स्वधर्मसाधने रक्तः प्रजासन्तोषकारकः ।।५५।।
स एकदा निजेच्छातः सेवकानुगतः प्रभुः ।
प्रोत्फुल्लमृदुमालाढ्यं मुदायुक्तो वनं ययौ ।।५६।।
सिंहसेनो मुनिस्तत्र तत्समीपं स भूमिपः ।।
गत्वा मनोवचःकायैस्तत्पादौ चाप्यवन्दत ।।५७।।

इस जम्बूद्वीप के पूर्वमंदर मेरु में पवित्र भरतक्षेत्र के अन्दर पूर्णपुर नगर का राजा रत्नशेखर था, जिसकी रानी का नाम चन्द्रिकामती था। इस राजा के वंश में पूर्व में विजयभद्र नाम का राजा हुआ था, जो मुनिजनों में आशक्त था, गुणों का भंडार और गुणानुरागी था, भव्य था व भव्यजनों से प्रशंसित था। वह धर्माचरण करने वाला व प्रजाजनों को सुख देने वाला था। एक दिन सेवकों के द्वारा अनुगत किया जाने वाला वह राजा अपनी इच्छा से, विकसित पुष्प वाले पौधों से युक्त एक रमणीक वन में गया। वहाँ उसे सिंहसेन नामक मुनिराज मिले। राजा ने मुनि के पास जाकर, उन्हें मन-वचन-काया से नमस्कार किया ।।५३-५७।।

पुनर्मुनिं स पप्रच्छ प्रसन्नमनसा नृपः ।
तद्वक्त्रचन्द्रकिरणैर्विकसन्नेत्रकैरव ।।५८।।
महाराज मुने शैलराजः सम्मेद उत्तमः ।
तद्यात्रोत्सुकता गुर्वी मच्चेतसि सदा स्थिता ।।५९।।

भाविनी तस्य यात्रा मे किं वा नैव महामुने ।
सर्वज्ञस्त्वं तदाचक्ष्व श्रुत्वेति प्राह तं मुनिः ॥६०॥
भूपतेऽवधिभूतेन मया चित्ते विचारितः ।
तव सम्मेदशैलस्य यात्रा नूनं भविष्यति ॥६१॥
गुणगम्भीरसिन्धुस्त्वं सत्यभावसमन्वितः ।
भव्योऽसि भव्यजीवानां तस्य यात्रा स्मृता बुधैः ॥६२॥
मुनिवाक्यं समाकर्ण्य राजाहर्षसमाकुलः ।
यात्रोन्मुखो बभूवासौ श्रीमत्सम्मेदभूभृतः ॥६३॥

मुनीश्वर के मुख-चन्द्र की किरणों से जिसके नेत्र-कमल प्रफुल्ल हुए हैं—ऐसे राजा ने प्रसन्न मन से मुनीश्वर से प्रश्न किया—हे स्वामिन् ! शैलराज सम्मेदगिरि उत्तम क्षेत्र है । उस क्षेत्र की यात्रा करने की मेरी उत्कट इच्छा है । हे प्रभु ! आप सर्वज्ञ हैं, मुझे उस क्षेत्र की यात्रा होगी या नहीं ? कृपा करके मुझसे कहो । मुनिराज कहने लगे—राजन् ! मैंने अवधिज्ञान से जान लिया है कि तुम्हारी तीर्थराज की यात्रा अवश्य होगी । हे राजन् ! तुम गुणों के गंभीर समुद्र हो, तुम्हारे भाव सात्त्विक हैं, तुम भव्य हो, भव्य जीवों को ही इस क्षेत्र की यात्रा होती है । मुनिराज के ये वचन सुनकर राजा को अति आनन्द हुआ और वह सम्मेदगिरि क्षेत्र की यात्रा के लिए उन्मुख हुआ ॥५८-६३॥

वार्ता सम्मेदयात्रायाः गता पृथ्वीपतेस्तदा ।
अभव्यस्तन्महीपालः सोऽपि यात्रोन्मुखो भवेत् ॥६४॥
राजा विजयभद्रोऽसौ ससंघश्च ससैनिकः ।
चचाल गिरियात्रायै कृतनानामहोत्सवः ॥६५॥
सोऽपि राजाचलद्यात्रामुद्दिश्य बलसंयुतः ।
स्वप्नेऽपश्यत्स्वपुत्रं स मृतं मोहान्न्यवर्तत ॥६६॥

गतो विजयभद्रस्तं सम्मेदं सङ्घसंयुतः ।
विधिवत्कृतवान्यात्रां परमानन्द संयुतः ।।६७।।

यात्रा अभव्यजीवानां सम्मेदस्य न वै स्मृता ।
भव्या एव सुयात्रार्हा इत्युक्तं स यतो न हि ।।६८।।

विजयभद्र राजा सम्मेदगिरि की यात्रा के लिए निकला है— यह समाचार चारों ही तरफ फैल गया। उस समय एक अभव्य राजा भी सम्मेदगिरि क्षेत्र की यात्रा को निकला। राजा विजयभद्र भी सर्व संघ और सेना के साथ, सम्मेदगिरि की यात्रा के लिए निकला। वह नाना प्रकार के महोत्सवों-पूर्वक जा रहा था। अभव्य राजा भी जा रहा था। एक रात उसने स्वप्न में देखा कि मेरा पुत्र मर गया है। तब वह अभव्य राजा मोहाक्रान्त होकर वापस अपने नगर में आ गया। उधर विजयभद्र राजा ने ससंघ सम्मेदगिरि पर पहुँचकर अतिशय हर्ष के साथ विधिवत् यात्रा की। अभव्य जीवों को इस क्षेत्र की यात्रा नहीं होती है ।।६४-६८।।

जय(टा)सेनो भवेद्राजा सोऽपि सङ्घसमन्वितः ।
यात्रां कृत्वा विधानेन सम्मेदाचलभूभृतः ।।६९।।

राज्यं विभवसेनाय दत्वा राज्याभिषेकतः ।
द्वात्रिंशल्लक्षजीवैश्च दीक्षां जग्राह धार्मिकः ।।७०।।

अथास्य तिमिरं छित्वा केवलज्ञानभानुना ।
पूर्वोक्तजीवैः सहितः सिद्धालयमवाप सः ।।७१।।

विभवसेनवंशेऽभूद्राजा विजयसेनकः ।
तेन सम्मेदयात्रा वै कृता श्रीचक्रवर्तिना ।।७२।।

आनंदकूटमहिमा कथिता बहुविस्तरात् ।
सङ्घभक्तिः कृतानेन बहुधा धर्मधारिणा ।।७३।।
सम्मेदानन्दकूटस्य दर्शनाद्भव्यमानवः ।
सलक्षोपवासानामसाधिपोवशिनां भवेत् ।।७४।।
तैरश्चीं नारकीं चैव न गतिं प्राप्नुयात्क्वचित् ।
ईदृग्विधं फलं चैव कूटस्य मुनिभिः स्मृतम् ।।७५।।
यस्तु निःशेषकूटानां विदध्याद्वन्दनां नरः ।
तस्य पुण्यफलं वक्तुं वाण्या अपि न शक्यते ।।७६।।

जयसेन नामका एक राजा था। उसने भी संघसहित इस क्षेत्र पर जाकर यथाविधि यात्रा की थी। उसके बाद उसने अपने पुत्र विभवसेन को राज्य सौंपकर, बत्तीस लाख भव्य-समूह के साथ दीक्षा ले ली। इस राजा ने केवलज्ञान रूपी सूर्य के द्वारा घाति व अघाति कर्म-रूप अंधकार का नाश किया और बत्तीस लाख मुनियों के साथ मोक्ष-पद प्राप्त किया। इस विभवसेन राजा के वंश में विजयसेन नामक धार्मिक राजा हुआ। उसने चक्रवर्ती के साथ इस क्षेत्र की वंदना की, आनन्द-कूट की महिमा को विस्तारपूर्वक कहा व अनेक प्रकार से संघ की भक्ति की। सम्मेदगिरि क्षेत्र के आनन्दकूट की वन्दना करने से भव्यों को सोलह लाख उपवास का फल मिलता है। जिन्होंने इस क्षेत्र की यात्रा व आनन्दकूट की यात्रा करली है, उसको तिर्यञ्चगति व नरकगति की प्राप्ति कभी नहीं होती है। मुनीश्वरों द्वारा एक कूट की यात्रा का जब इतना बड़ा फल बताया गया है, तब सम्पूर्ण कूटों की यात्रा-वन्दना के फल का वर्णन तो सरस्वती द्वारा होना भी कठिन है ।।६९-७६।।

शार्दूलविक्रीडितम्

यस्मिन्कूटवरेऽभिनन्दनविभुश्चानन्दपूर्वे वरे ।
नानाकल्मषबीजनाशनिपुणो यो देवदेवोऽभवत् ।।
शुक्लध्यानविधानशुभ्रहृदयः सिद्धालयं प्राप्तवान् ।
तं यत्नैः परिपश्यतोत्तमजनाः यस्यास्ति शैले स्पृहा ।।७७।।

मोक्ष की स्पृहा करने वालों को आनन्दकूट पर आकर, नाना प्रकार के पाप-रूप बीज को नष्ट करने में निपुण, श्रेष्ठ आनन्दकूट पर शुक्लध्यान धारण कर शुद्ध हृदय से मोक्ष प्राप्त करने वाले श्री अभिनन्दन जिनराज की वंदना करना चाहिए ।

इति श्रीसम्मेदशिखरमाहात्म्ये आनंदकूटवर्णननाम चतुर्थोऽध्यायः ।

इस प्रकार सम्मेदशिखर माहात्म्य में आनन्दकूट का वर्णन करने वाला चतुर्थ अध्याय समाप्त हुआ ।

अथ पंचमोऽध्यायः

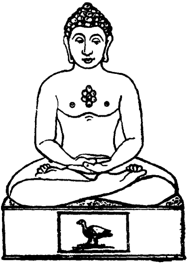
तीर्थङ्करः पञ्चमो यः स्मरणात्सुमतिप्रदः ।
वन्दे सुमतिनाथं तं सुमतिध्येयमीश्वरम् ॥१॥
सर्वातिशयसम्पन्नमव्ययं श्रीनिकेतनम् ।
सुमत्याप्त्यै सदा वन्दे सुमतिं कोकलाञ्छनम् ॥२॥
नमस्तुभ्यं भगवते त्रैलोक्यगुरवे नमः ।
नमो भव्यानन्दकर्त्रे सुमतिप्रभवे नमः ॥३॥

जो स्मरण करने मात्र से सुमति प्रदान करने वाले हैं, तथा जो सुमतिधारक लोगों के ध्यान का विषय बने हुए हैं, ऐसे पाँचवें तीर्थंकर श्री सुमतिनाथ की मैं वन्दना करता हूँ। कोक-पक्षी—चकवा-पक्षी ही जिनका लांच्छन है. तथा जो सर्व प्रकार के अतिशयों से युक्त हैं व बाह्याभ्यन्तर लक्ष्मी के निवास-स्थान हैं, ऐसे श्री सुमतिनाथ जिनेश्वर को, सुमति प्राप्त करने के लिए मैं वंदना करता हूँ। हे भगवान! आपको नमस्कार हो। जो तीन लोक के गुरु हैं तथा भव्यों को आनन्दित करने वाले हैं, ऐसे श्री सुमतिनाथ को नमस्कार हो ॥१-३॥

चतुरुत्तरलक्षोक्त योजनैर्विश्वतो महान् ।
दीव्यते धातकीखण्डो विदेहक्षेत्रसंयुतः ॥४॥
तत्र सीतानदी रम्या कलुषघ्नी तदुत्तरे ।
समृद्धदेशः सम्भाति नामतः पुष्कलावती ॥५॥
पुण्डरीकपुरं तत्र रम्यं रम्यजनोषितम् ।
धृतिषेणो महान् राजा पाति स्म नगरं च तत् ॥६॥
महापुण्यप्रभावाच्च प्रतापमतुलं गतः ।
अशेषवैरिवंशं च समखण्डयदीश्वरः ॥७॥



अविचल कूट



सुमतिनाथ जिनराज का, अविचल कूट है जेंह।
मन वच तन कर पूजहूं, शिखर सम्मेद यजेंह ।।

ओ३म् ह्रीं श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्रादि मुनि १ कोड़ा कोड़ी ८४ करोड ७२ लाख ८१ हजार ७८१ मुनि इस कूट से सिद्ध भए तिनके चरणारविन्द को मेरा मन बचन काय से बारम्बार नमस्कार हो, जलादि अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।।५।।

इस टोंक की भाव सहित वंदना करने से ९ करोड़ ३२ लाख उपवास का फल होता है।

प्रतापः प्रतिघस्रं च तस्य राज्ञोऽप्यवर्धत ।
सामदानवचोदण्डभेदान्राजा विधाय सः ॥८॥

स्ववशे निखिलां चक्रे प्रजाश्च समरञ्जयत् ।
प्रतिपच्चन्द्रवत्तस्य राज्यं वृद्धिमुपागतम् ॥९॥

वर्णाश्रमोचिताश्चैव राजाधर्मानिचालयत् ।
सर्वेषामावसच्चित्ते स भूमीशः स्वसद्गुणैः ॥१०॥

जितेन्द्रियस्य तस्यासीत् जितेन्द्रियगणाः प्रजा ।
ईतयः सप्त नो दृष्टास्तस्य देशे सुधर्मिणः ॥११॥

जो चार लक्ष योजन से युक्त धातकी खण्ड विदेह क्षेत्र से संयुक्त होने से शोभित है। उस विदेहक्षेत्र में सीता नदी रमणीय और पाप-नाशक है, जिसके उत्तर में धन-धान्य से सम्पन्न एक पुष्कलावती देश है। उस देश में सुन्दर लोगों के कोलाहल से सहित; पुण्डरीकपुर नाम का एक नगर है, जिसका पालन धृतिषेण नामक एक महान राजा करता था। वह विशाल पुण्य-प्रभाव से अनुपम प्रभावशाली था। उसने सम्पूर्ण वैरी समूह के वंश को काट कर फेंक दिया था। उसका प्रताप प्रतिदिन बढ़ता ही गया। साम, दाम, दण्ड व भेद के द्वारा उसने सब को वश में कर रखा था। प्रजा भी उससे अनुरंजित थी। शुक्ल-पक्ष के चन्द्रमा की भाँति उसका राज्य उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। उसने ब्राह्मणादि चतुर्वर्ण तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व भिक्षु—ऐसे चार आश्रमों के कर्तव्य-कर्म को उत्तम रीति से चलाया था। अपने सद्गुणों से वह सबके अन्तःकरण में वास करता था। राजा के जितेन्द्रिय होने से, उसकी प्रजा भी वैसी ही जितेन्द्रिय थी। इस धार्मिक राजा के राज्य में सप्तविध ईति-भीति तथा अतिवृष्टि आदि कुछ भी नहीं होती थी।॥४-११॥

न्यायनीति-क्षमायुक्तो सम्यक्त्वगुण-भूषितः ।
निष्कण्टकं स्वकं राज्यमन्वभूत्स महोदयः ।।१२।।
कदाचित्सौधमारुह्य सिंहासनगतः प्रभुः ।
अपश्यत्स्वपुरं रम्यं सर्वसिद्धिसमृद्धिमत् ।।१३।।
मृतपुत्रं समादाय गच्छन्तं पथि मानवम् ।
कञ्चिन्निरीक्ष्य भव्योऽसौ तत्क्षणाद्विरतोऽभवत् ।।१४।।
बुद्ध्वा सारं ह्यसारं तत् तपः कृति समुत्सुकः ।
पुत्रायातिरथाख्याय राज्यं दत्वा वनं गतः ।।१५।।
दीक्षां जग्राह तत्रैव सुप्रसन्नेन चेतसा ।
एकादशाङ्गविद्भूत्वा देहस्नेहं समत्यजत् ।।१६।।
विजित्य मोहशत्रुं स कारणानि च षोडश ।
सम्भाव्य तप उग्रं च दधार वनगो मुनिः ।।१७।।
तीर्थकृन्नाम सम्प्राप्य दुर्लभं सर्वमानवैः ।
संन्यासविधिना देहं त्यक्त्वा शुचि स्थले मुनिः ।।१८।।

राजा ने दीर्घकाल पर्यन्त निष्कंटक राज्य का उपभोग किया । एक बार वह अपने राज-सिंहासन पर बैठा हुआ अपने सुन्दर नगर की समृद्धि व सम्पन्नता देख रहा था; उसी समय एक व्यक्ति अपने मरे हुए पुत्र को लेकर रास्ते में निकला । उसे देखकर राजा शीघ्र ही संसार, शरीर व भोगों से विरक्त हो गया । वह सोचने लगा—जिसको मैं सार–सुख समझ रहा था, वह संसार कितना असार है । वह तत्क्षण तपश्चरण के लिए उत्सुक हो गया । राज्य को अपने पुत्र अतिरथ को देकर उसने प्रसन्न मन से, वन में जाकर दीक्षा ले ली । मुनि बनकर उन्होंने ग्यारह अंगों का ज्ञान प्राप्त कर लिया । अपनी देह से समत्व त्याग कर, मोहशत्रु को जीतते हुए उन्होंने सोलह भावनाओं का

चिन्तवन किया। वे वन में रहकर उग्र तपश्चर्या करने लगे। उन्होंने तीर्थंकर नामकर्म नामक महापुण्य-प्रकृति का बंध किया व आयु के अंत में सन्यास-विधि द्वारा देह का त्याग किया ॥१२-१८॥

सर्वार्थसिद्धौ सन्दीव्यद्वैजयन्ते गतः प्रभुः।
अहमिन्द्रत्वमापेदे सर्वगीर्वाणसेवितः ॥१९॥
त्रिंत्रिंशत्सागरायुः स त्रिंत्रिंशत्सम्मितेषु च।
सहस्राब्देषु गच्छत्सु मानसाहारमाहरत् ॥२०॥
त्रिंत्रिंशत्पक्षगमने तत्रस्थोऽयं समुच्छ्वसन्।
चतुरङ्गुलकन्यूनं हस्तमात्रं शरीरकः ॥२१॥
शुक्ललेश्यान्वितः श्रीमान् अवधिज्ञानसागरः।
ततो नरकपर्यन्तं ज्ञातुं चोद्धर्तुमप्यसौ ॥२२॥
विकर्तुं सप्रभावेन पूर्णीकर्तुं च तेजसा।
समर्थः सततं देवो ब्रह्मचर्यसुखान्वितः ॥२३॥
व्याख्यानं सप्ततत्त्वानां कुर्वन्नमितमोदभाक्।
षण्मासायुः समभवत् तत्रायुषि गते सति ॥२४॥
अनन्यलभ्यसौख्येऽपि सर्वकर्मक्षयाय सः।
अनासक्तस्तदातिष्ठत्सिद्धध्यानपरायणः ॥२५॥
सिद्धनामजपासक्तः सिद्धपूजारतः प्रभुः।
सिद्धसंवादनिपुणः सिद्धकल्पोऽप्यदृश्यत ॥२६॥

सर्वार्थसिद्धि में, वैजयन्त विमान में उसका जन्म हुआ। वहाँ वह अहमिन्द्रता को प्राप्त हुआ। सर्व देव उसकी सेवा करने लगे। उसकी आयु ३३ सागर थी। वह उतने ही (३३) हजार वर्ष उपरान्त अमृताहार करता था तथा उतने ही पक्ष उपरान्त

श्वासोच्छ्वास लेता था। उसका शरीर चार अंगुल कम हस्तमात्र प्रमाण था। वह शुक्ल लेश्या का धारक था तथा वह शोभा-सम्पन्न व अवधिज्ञान का सागर था। अवधिज्ञान से वह सप्तम नरक तक जानता था। वहाँ तक के क्षेत्र को व्याप्त करने की सामर्थ्य वाला वह देव, ब्रह्मचर्य-सुख का अनुभव लेने लगा। वह स्वाभिमान से रहता हुआ, अतिशय आनन्द से सात तत्वों का चिन्तवन करता था। आयु के छह मास शेष रहने पर, अहमिन्द्र के अनन्य सुखों में अनाशक्त रहता हुआ वह, सर्वकर्म-क्षय करने के लिए, प्रतिक्षण भगवान के ध्यान में लीन रहता था व सिद्धों का जप व पूजन करता रहता था। सिद्धस्वरूप का वर्णन करने में तत्पर उसे ऐसा लगता, मानो वह स्वयं सिद्ध-स्वरूप ही हो गया है ॥१९-२६॥

जम्बूद्वीपगते शुद्धे भरतक्षेत्र उत्तमे।
कोसले विषयेऽयोध्या पुरी विश्वमनोहरा ॥२७॥

तत्र मेघरथो राजा मङ्गलाख्या च तत्प्रिया।
तया सह स धर्मात्मा लौकिकं सुखमन्वभूत् ॥२८॥

इन्द्रः स्वावधितः श्रीमदहमिन्द्रागमनं हृदि।
बुध्वा तद्भूपभवने नगरेऽपि तथैव च ॥२९॥

रत्नवृष्ट्याविमाविशत् धनवस्तन्निदेशतः।
ववर्ष विविधान्याशु रत्नानि क्षितिपालये ॥३०॥

एकदा श्रावणे मासे द्वितीयायां सिते दले।
मघायां च निशान्ते सा मङ्गला तत्र निद्रिता ॥३१॥

अनन्यसुलभान्स्वप्नान् षोडशैक्षत भाग्यतः।
स्वप्नस्यान्ते च मातङ्गः प्रविवेशतदाननम् ॥३२॥

इस जम्बूद्वीप के उत्तम भरतक्षेत्र के कौसल देश में अयोध्या नाम की एक नगरी थी। वह समस्त जगत में मनोहर थी। वहाँ का राजा मेघरथ व उसकी रानी मंगला थी। वह राजा रानी के साथ नाना प्रकार के लौकिक-सुखों का अनुभव लेता रहता था। इन्द्र ने, अवधिज्ञान से अहमिन्द्र का आगमन पृथ्वी पर होने वाला है—ऐसा जानकर मेघरथ राजा के आंगन व नगर में रत्नवृष्टि करने के लिए कुबेर को आज्ञा दी। कुबेर ने इन्द्र-आज्ञा से नगर में नाना प्रकार के रत्न बरसाये। श्रावण शुक्ला द्वितीया के दिन, जब मघा नक्षत्र पर चन्द्र था, रात्रि के पश्चिम प्रहर में, निद्रित मंगलाराणी ने सोलह स्वप्न देखे और अन्त में उसने अपने मुँह में हाथी को प्रवेश करते हुए देखा ।।२७-३२।।

प्रातः प्रबुद्धा साश्चर्या प्रभोरन्तिकमागता ।
अपृच्छत् तत्फलं तस्मै स प्राह शृणु वल्लभे ।।३३।।

भविष्यति सुतस्ते हि भगवान्गुणसागरः ।
श्रुत्वा परममोदं सा लेभेऽभूद्गर्भवत्यथ ।।३४।।

एकादश्यां सिते पक्षे चैत्रमासिचतुर्दशे ।
नक्षत्रेऽसौ त्रिनयनः प्रादुरासीज्जगत्पतिः ।।३५।।

स्वावधेर्जन्म तस्याथ बुद्ध्वा देवपतिर्मुदा ।
सदेवस्तत्र चागत्य देवमादाय भक्तितः ।।३६।।

स्वर्णाचलं स गतवान् तत्र क्षीराब्धिवारिभिः ।
अभिषेकं चकारास्य सहस्राष्टघटैः शुभैः ।।३७।।

वस्त्रैराभरणैर्देवं सम्भूष्याग वेदितः गत्यनिवे ।
अयोध्यां भूपभवने संस्थाप्याथ प्रपूज्यतम् ।।३८।।

तस्य कृत्वा सुमत्याख्यां देवैर्देवं निवेद्य सः ।
कृतोत्सवः सुरैः सार्धं प्राप देवालयं ततः ।।३६।।

प्रातःकाल जागृत होने पर आश्चर्यचकित रानी ने अपने स्वप्नों को राजा से कह सुनाया। सुनकर, राजा ने कहा—प्रिये! तुम्हारे उदर से गुण-समुद्र भगवान जिनेश्वर पुत्ररूप में उत्पन्न होने वाले हैं। यह सुनकर उस रानी को बहुत आनन्द हुआ। वह गर्भवती हुई। चैत्र महिने की शुक्ल एकादशी के दिन, जब चौदहवां नक्षत्र पर चन्द्र था, तब त्रिनयनधारी अर्थात् मति, श्रुत व अवधिज्ञान के धारक इन्द्र ने 'जिन' के जन्म को जानकर आनन्द व भक्तिपूर्वक सर्व देवों के साथ आकर बालक जिन को मेरु पर ले जाकर, एक हजार आठ कलशों में क्षीर-समुद्र के जल से अभिषेक किया। उसके बाद वस्त्राभूषण से सुसज्जित कर अयोध्या के राज्यगृह में भगवान को सिंहासनारूढ़ कर, उनकी पूजा की और उनका नाम सुमति रखा। उसके बाद प्रभु को जिन-माता को सोंपकर उत्सवपूर्वक देवों के साथ स्वर्ग चला गया ।।३३-३६।।

नवलक्षोक्त-कोट्यु क्तः सागरेष्वभिनन्दनात् ।
गतेषु सुमतिश्चासीत् तन्मध्यायुर्महा प्रभुः ।।४०।।

चत्वारिंशत्पूर्वलक्षजीवी त्रिशतधनुः प्रमः ।
शरीरोत्सेध आख्यातः तस्य देवस्य चागमे ।।४१।।

स्वर्णकान्तिः कोमलाङ्गः पुण्यप्रकृतिरीश्वरः ।
ज्वलत् समचतुःस्थानशोभासिन्धुरनुत्तमः ।।४२।।

स वज्रर्षभनाराच शरीरो बालचन्द्रवत् ।
बालक्रीडाविलासैश्च ववृधे भूपसद्मनि ।।४३।।

श्यामकेशः समुद्दिव्यच्छीर्षः पङ्करुहाननः ।
ललितोन्नतभालस्थ भाग्योल्लसितवैभवः ।।४४।।

त्रिज्ञानसूचको भास्वत्कुण्डलार्चितकर्णकः ।
कामचापभ्रूकुटिको नीलोत्पलविलोचनः ।।४५।।

तस्योत्तमश्रिया युक्तः कपोलादर्शकान्तिजित् ।
बिम्बाधरः सुरदनः सुकण्ठः सुहनुस्तथा ।।४६।।

अभिनन्दननाथ के मोक्ष जाने पर नौ लाख करोड़ सागरोपम काल बीतने पर सुमतिनाथ उत्पन्न हुए। सुमतिनाथ की आयु चालीस लाख पूर्व की थी। आगमानुसार तीन सौ धनुष प्रमाण शरीर की ऊँचाई थी। उनका वर्ण स्वर्ण-कान्ति का था। वे कोमलाङ्ग और पुण्य-प्रकृति से सहित थे। उनका शरीर अतिशय दैदीप्यमान चतुरस्र संस्थानाकृति था। उत्कृष्ट शोभा के सागर, सुमति प्रभु का संहनन वज्रवृषभनाराच था। राजप्रासाद में बाल-चन्द्र के समान, बाल-क्रीडा करते हुए विलासपूर्वक वे वृद्धिगत होने लगे। उनका मस्तक काले घने केशों से सुन्दर दिख रहा था। उनका मुख कमल के समान सुन्दर व मस्तक उन्नत व सुन्दर था। उनका वैभव भाग्य से उत्कर्ष पर था। त्रिज्ञानधारी भगवान के कान चमकनेवाले कुण्डलों से अपूर्व शोभा को प्राप्त हो रहे थे। प्रभु की भौहें इन्द्रधनुष के समान थीं। आँखें नीलकमल के समान थीं तथा उत्तम शोभा से युक्त दोनों गाल दर्पण की कान्ति को जीत रहे थे। उनके दाँत व होंठ सुन्दर थे व गला, दाढ़ी भी सुन्दर थी।।४०-४६।।

सुभुजः सुकरस्तद्वत् सुवक्षाश्चक्रचिह्नितः ।
गम्भीरनाभिः सर्वाङ्गसुन्दरः श्रीनिकेतनः ।।४७।।

कूर्मपृष्ठपदाम्भोजः सर्वलक्षणलक्षितः ।
विभुः कौमारसम्पत्त्या जयन्कामशतं मुदा ॥४८॥

हिंसाचौर्यवधं तस्य राज्ये स्वप्नेऽपि नैव हि ।
तद्यशः सुखिनः सर्वे गायन्ति स्म परस्परम् ॥४९॥

एकोनचत्वारिंशद्भिर्लक्षपूर्वैः स्वराज्यभाक् ।
केनापि हेतुना चित्ते वैराग्यं प्राप शुद्धधीः ॥५०॥

श्री सुमतिनाथ के बाहु व हाथ पुष्ट व सुन्दर थे; इसी प्रकार छाती भी पुष्ट थी, उस पर चक्र का चिह्न था। नाभि गम्भीर थी, अर्थात् प्रभु सर्वाङ्गसुन्दर होने पर लक्ष्मी के निवास-स्थान हो गये थे। प्रभु के दोनों पाँव कमल के समान व कछुवे की पीठ के समान उठे हुए, सर्व शुभ लक्षणों से युक्त थे। प्रभु ने कुमारावस्था में ही अपनी रूप-सम्पत्ति से सैकड़ों कामदेवों को जीत लिया था। प्रभु के राज्य में हिंसा, चोरी आदिक स्वप्न में भी नहीं दिखाई देते थे। सर्व सुखी लोग प्रभु के गुणगान आपस में नित्य ही करते रहते थे। प्रभु ने उन्चालीस लक्ष पूर्व तक राज्य पालन किया। इसके बाद निर्मल बुद्धि के धारक प्रभु किन्हीं कारणों से वैरागी हुए। सर्व संसार असार है—ऐसा विचार करके वे विरक्त हुए ॥४७-५०॥

असारं सर्वसंसारं विचार्य विरतोऽभवत् ।
सारस्वतस्तुतो भूयस्तपः सारं विचिन्त्य सः ॥५१॥

इन्द्रोपनीतां शिविकां आरुह्य सुरसेवितः ।
सहेतुकवनं प्राप शृण्वन्सुरजयध्वनिम् ॥५२॥

वैशाखे शुक्लदशमी मघानक्षत्र वासरे ।
सहस्रभूमिपैः सार्धं दीक्षां जग्राह तापसीम् ॥५३॥

दीक्षानन्तरमेवास्य मनोवार्ता प्रबोधकम् ।
तुर्यज्ञानमभूदह्नि द्वितीये भैक्ष्यमाचरन् ।।५४।।
गतः पुरे सौमनसे पद्माख्यस्तत्र भूपतिः ।
आहारं दत्तवांस्तस्मै सम्प्राप्ताश्चर्यपंचकम् ।।५५।।
कृत्वा सामायिकं मौनमास्थितस्य तपोवने ।
सहेत्परीषहान् सर्वान्धैर्यमालम्ब्य केवलम् ।।५६।।
तप उग्रं समादाय वर्षविंशतिनिर्मलम् ।
प्रियङ्गुतरुमूले च चैत्रैकादशिकादिने ।।५७।।
शुक्लपक्षे मघर्क्षे च केवलज्ञानमाप सः ।
तदा समवसारे च इन्द्राद्यैः स्थापितः प्रभुः ।।५८।।
यथोक्त गणपाद्यैश्च भव्यैर्द्वादशकोष्ठगैः ।
भक्त्या सम्यक् समाराध्यो युवार्क इव स व्यभात् ।।५९।।
किरन्दिव्यध्वनिं देवः पुण्यान्युपदिशन्सताम् ।
पुण्यक्षेत्रेषु सर्वेषु विजहार यदृच्छया ।।६०।।

इस असार संसार में तप ही सार है—ऐसी बात को लौकान्तिक देवों के समूह से सुनकर, देवों द्वारा स्तुति किये जाते हुए प्रभु ने इन्द्र द्वारा लाई गई पालकी में आरोहण कर सहेतुक वन में पहुँचकर, बैशाख शुक्ल दशमी, मघा नक्षत्र युक्त दिन में भगवान ने एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा ग्रहण की । दीक्षा के बाद प्रभु को जगत् का वृतस्वरूप जाननेवाला चौथा मनः-पर्ययज्ञान प्रगट हुआ । दूसरे दिन प्रभु ने आहार ग्रहण किया । सौमनसपुर के राजा पद्म ने प्रभु को आहार दिया। आहार के प्रभाव से पञ्चाश्चर्य-वृष्टि हुई। उत्तम तपोपन में ध्यानस्थ खड़े रहकर प्रभु ने केवल धैर्य का अवलम्बन लेकर परीषहों को सहन किया। प्रभु ने २० वर्ष के लिए तपश्चरण धारण किया ।

प्रियंगु नामक वृक्ष के नीचे ध्यानारूढ़ प्रभु को चैत्र शुक्ल एकादशी, मघा नक्षत्र में, केवलज्ञान प्राप्त हुआ। उस समय प्रभु को इन्द्रादिक देवों ने समवशरण में स्थापन किया। गणधरादिक धन्य पुरुषों ने, आगम में कहे अनुसार, प्रभु की उत्तम आराधना की। तरुण सूर्य के समान शोभायमान होते हुए प्रभु ने दिव्यध्वनि की वृष्टि करके भव्य जीवों को धर्म का उपदेश किया व सर्व क्षेत्रों में स्वभाव से ही उन्होंने विहार किया ॥५१-६०॥

मासावशिष्टायुषि संप्राप्य सम्मेदपर्वतम् ।
चतुर्थ्यां फाल्गुणे कृष्णदलेऽविचलकूटगः ॥६१॥
शुक्लध्यानसुधास्वादाक्षयदेवत्वमागतः ।
निर्घोषो मुनिभिः सार्धं सहस्रं रगमच्छिवम् ॥६२॥
एकार्बुदं चतुरशीतिकोटितदनन्तरम् ।
द्विसप्तलक्षं सैकाशीति सप्तशतमुत्तमाः ॥६३॥
तस्मादविचलात्कूटात्सिद्धिं प्राप्तामुनीश्वराः ।
संसारे दुर्लभां भव्यजीवैः प्राप्यां तपोबलात् ॥६४॥

एक माह की आयुष्य शेष रहने पर, फाल्गुन कृष्णा चतुर्थी के दिन (चैत्र शुक्ल एकादशी—उ० पु०) अविचल कूट पर एक हजार मुनियों के साथ, शुक्लध्यान रूपी अमृत का स्वाद लेकर अक्षय देवत्व अर्थात् मोक्ष-पद प्राप्त किया। इस अविचल कूट से एक अरब चौराशी करोड़ चौदह लाख सात सौ इक्याशी मुनियों ने उत्तम पद-मुक्ति प्राप्त किया है ॥६१-६४॥

वन्दतेऽचलकूटं यः कोटिप्रोषधसत्फलम् ।
स प्राप्नुयादशेषाणां वन्दकेन समोऽश्रकः ॥६५॥

जंबूस्थे भरतक्षेत्रे योधदेशे मनोहरे ।
चकास्ति पद्मनगरं भूप आनन्दसेनकः ।।६६।।
अभूत्तस्य प्रिया नाम्ना प्रसिद्धा या प्रभावती ।
शुभसेनो मित्रसेनस्तस्य पुत्रौ बभूवतुः ।।६७।।
एकदानन्दसेनोऽसौ गतो वनमनुत्तमम् ।
तत्रस्थश्चारणमुनिर्दृष्टस्तेन महीशिता ।।६८।।
त्रिः परिक्रम्य तं नत्वा प्राह भूपः कृताञ्जलिः ।
कियदायुर्मम स्वामिन् मुनिः श्रुत्वाह सस्मितम् ।।६९।।
मासत्रयोदशमितं तवायुर्नृपसत्तम ।
दीक्षां ग्रहीतुकामोऽभूत्कृत्वेति धरणीतले ।।७०।।
मुनिः प्रोक्तं न हि प्रोक्ता दीक्षा स्वल्पायुषो नृप ।
राज्ञोक्तं तर्हि भो स्वामिन् ! भक्तेत्सङ्गतिः कथम् ।।७१।।
पुनस्तेनोक्तमुर्वीश सम्मेदगिरियात्रया ।
मुक्तिः शीघ्रं भवत्येव तच्छ्रुत्वा हर्षमाप सः ।।७२।।

जो मनुष्य इस अचलकूट की वंदना करता है, उसे कोटि प्रोषधोपवास का फल मिलता है। जो मनुष्य सर्व कूटों की वंदना करता है, उसके समान कौन हो सकता है ?

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में मनोहर योध नामक देश है। उस देश में पद्मपुर नामक एक सुन्दर नगर है। उस नगर में आनन्दसेन नाम का राजा राज्य करता था। उसकी प्रिय रानी का नाम पद्मावती था। इनके दो पुत्र हुए—शुभसेन व मित्रसेन, एक बार राजा आनन्दसेन एक उत्तम वन में गया। वहाँ उसने एक चारण ऋद्धिधारी मुनि के दर्शन किये। राजा ने मुनि को, तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार किया और करबद्ध हो प्रश्न किया—स्वामिन ! मेरी आयुष्य कितनी है। मुनिराज कहने

लगे—राजन् ! तुम्हारी केवल तेरह महिने की आयुष्य शेष है। ऐसा सुनकर राजा ने दीक्षा लेने की इच्छा व्यक्त की, किन्तु मुनिराज के मना करने पर राजा ने पुनः निवेदन किया—नाथ ! तब इस भव में मुझे मुक्ति कैसे प्राप्त होगी ? पुनः मुनि बोले—सम्मेदगिरि की यात्रा करने से। मुनिराज के उक्त वचन सुनकर राजा आनन्दित हुआ ॥६५-७२॥

सत्वरं सङ्घसहितः शुक्लाम्बरधरो नृपः।
मोक्षाभिलाषया यात्रां प्रस्थानमकरोत्तदा ॥७३॥

द्वात्रिंशल्लक्षभव्यैश्च सहितो दुन्दुभिः स्वनम्।
शृण्वन् राजा महोत्साहः सम्मेदगिरिमाययौ ॥७४॥

तत्राविचलकूटं तमभिवन्द्य समर्च्य च।
अष्टधा पूजया सिद्धान् प्रणम्य च मुहुर्मुहुः ॥७५॥

समर्प्य राज्यं पुत्राय घातिकर्मक्षयान्नृपः।
सम्मेदयात्रापुण्येन मुक्तिस्थानमवाप सः ॥७६॥

शुक्ल वस्त्र धारण कर राजा शीघ्र ही ससंघ यात्रा को निकल पड़ा। मन में मोक्षाभिलाषा धारण करके, राजा ने बत्तीस हजार भव्यों के साथ, नगाड़ों की आवाजों के साथ बहुत आनन्द व उत्साह से सम्मेदगिरि पर पहुँचकर अविचल कूट की वंदना की, अष्टद्रव्यों से पूजन की व पुनः-पुनः नमस्कार करके, अपने पुत्र को राज्य सौंपकर, शीघ्र ही दीक्षा धारण कर ली। उग्र तप से शीघ्र ही घातिकर्मों का नाश करके केवलज्ञान प्राप्त कर लिया व सम्मेदगिरि क्षेत्र की यात्रा के पुण्य से मोक्ष प्राप्त किया ॥७३-७६॥

शार्दूलविक्रीडितम्

योगं यत्र विधाय निर्मलतरं कर्मान्धकारार्कभम् ।
कायोत्सर्गविधानतो मुनिवरैः सार्धं सहस्रैः प्रभुः ।।
सिद्धस्थानमवाप नाम सुमतिः सम्मेदपृथ्वीभृतः ।
कूटायाऽविचलाय सन्ततनमस्कारो विधेयो बुधैः ।।७७।।

आर्या

अविचलकूटध्यानादविचलसिद्धीं प्रयाति मनुजो यः ।
अविचलभावात्तस्मादविचलसिद्धयै स्मरन्तु तं भव्याः ।।७८।।

अतिशय निर्मल व कर्मरूपी अंधकार को दूर करने में सूर्य के समान शुक्लध्यान को धारण कर, कायोत्सर्ग विधान से श्री सुमति-जिनेश्वर एक हजार मुनियों के साथ इस सम्मेदगिरि के अविचल कूट पर से मुक्त हुए । विद्वानों को नित्य ही इस अविचल कूट की वंदना करनी चाहिए । अविचल कूट के ध्यान करने से मनुष्य को अविचलसिद्धि की प्राप्ति होती है । इसलिए भव्य जन अविचलसिद्धि के लिए, अविचल भाव से, अविचल कूट का स्मरण करें ।

इति श्री सम्मेदशिखरमाहात्म्ये अविचलकूटवर्णनंनाम
पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ।

इस प्रकार सम्मेदशिखर-माहात्म्य ग्रन्थ में अविचल कूट का वर्णन करनेवाला पांचवां अध्याय समाप्त हुआ ।

अथ षष्ठोऽध्यायः

श्रीमत्पद्मप्रभं देवं दिव्यत्कमललाञ्छनम् ।
कायेन मनसा वाचा वन्देहं हृदि सर्वदा ॥१॥

अखण्डे धातकीखण्डे तत्र पूर्वविदेहके ।
सीतास्रोतस्विनी तस्य दक्षिणे भाग उत्तमे ॥२॥

वत्साख्यो विषयः श्रीमान् चकास्ति सुख-संपदा ।
सुसीमानगरं तत्र धनधान्यसमृद्धिमत् ॥३॥

अपराजित भूपालस्तं पाति स्म स्वतेजसा ।
युवार्का इव चैश्वर्यात्सुरेन्द्र इव भूमिगः ॥४॥

शस्त्रास्त्रैः सर्वशत्रूणां जेतायं भूमिमण्डले ।
चक्रवर्तिसमो भूत्वा रेजे राजगणार्चितः ॥५॥

राज्यं सप्ताङ्गसंपन्नं पूर्वजन्मार्जितैर्वृषैः ।
बुभोजारोग्यसौख्येन सुखिनां स शिरोमणिः ॥६॥

तत्पुण्यात्तस्य विषये कृषिकृद्भिश्च याचिताः ।
तत्क्षणादेव चाभूवन्वारिदा वारिदाः शुभाः ॥७॥

तद्दानादर्थिनां गेहे दारिद्र्यं समदृश्यत ।
सन्मार्गगाः प्रजास्तस्य दण्डार्हः कोऽपि नाभवत् ॥८॥

इत्थं स्वसुकृतैस्तत्र राजा बहुविभूतिभिः ।
अवर्णनीयं सौख्यं स लेभे राज्यपदे स्थितः ॥९॥

एकदा स सुखासीनः सिंहपीठोपरि प्रभुः ।
अभ्रोदितं धनुर्दृष्ट्वा विलीनं तत्क्षणे किल ॥१०॥

दिव्य कमल के लाञ्छन तथा श्री—अन्तरंग व बहिरंग लक्ष्मी से युक्त श्री पद्मप्रभ जिनेश्वर को मैं मन-वचन-काय से

नमस्कार करता हूँ। अखण्ड धातकी खण्ड के पूर्व विदेह में सीता नदी के उत्तम दक्षिण तीर पर वत्स नामक लक्ष्मी व सुख-सम्पदा से सम्पन्न भरा हुआ देश है। उस देश में धन-धान्य से भरपूर एक सुसीमा नामक नगर है। अपराजित नामक राजा उस देश का पालन करने वाला था। वह अपने तेज से युवा सूर्य के समान व ऐश्वर्य से इन्द्र के समान शोभता था। शस्त्रों से उसने सर्व शत्रुओं को जीत लिया था। भू-मण्डल पर वह चक्रवर्ती के समान राजाओं से पूजित था। वह आरोग्यता के सुख से लोकान्त-शिरोमणि था। राजा के पुण्य के कारण, कृषकों की प्रार्थना पर मेघ जल बरसाते थे। राजा द्वारा नित्य ही याचकों को दान देते रहने से वहाँ दारिद्रय का नाम भी नहीं था। वहाँ, प्रजा के सन्मार्ग पर चलने के कारण दण्ड का नाम ही नहीं था। इस प्रकार स्वयं के पुण्य से अनेक वैभव-युक्त राजा, राज्य का पालन करते रहने से अवर्णनीय सुखी हुआ। एक बार वह राजा सिंहासन पर सुखासीन था, तभी आकाश में मेघों से उत्पन्न इन्द्रधनुष उत्पन्न होकर तत्काल नष्ट होगया। उसे देखकर राजा अपराजित को वैराग्य हो गया ॥१-१०॥

विरक्तोऽभूदसारं हि संसारमनुमन्य सः।
समाहूय स्वपुत्रं वै सुमित्राख्यं महामतिम् ॥११॥
प्रबोध्य तं स्वराज्येऽस्मै संस्थाप्य विधिवन्नृपः।
उत्कृष्टपदसंलब्ध्यै वनयात्रां चकार सः ॥१२॥
तत्र नत्वा स सिरसा मुनीशं पिहितास्रवम्।
सहेतुकवने तस्य सकाशाद्दीक्षितोऽभवत् ॥१३॥
एकादशाङ्गसन्दीप्तो धृत्वा षोडश भावनाः।
अभूत्स तीर्थकृद्गोत्रं तपस्तेजोऽर्कसन्निभः ॥१४॥

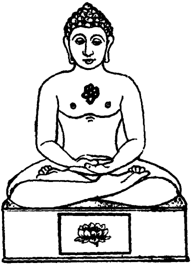
सम्पूर्ण संसार असार है—ऐसा मानकर वसुमित्र नामक अपने महाबुद्धिमान पुत्र को बुलाकर, उपदेश करके, योग्य विधि से सिंहासनारूढ़ कर दिया तथा स्वयं उत्कृष्ट मुक्ति पद प्राप्त करने के लिए वन-यात्रा पर निकल गया। वहाँ पर उसने पिहितास्रव नामक मुनि को मस्तक झुका कर नमस्कार किया। उसने उसी सहेतुक वन में मुनिराज से दीक्षा ले ली। ग्यारह अंग का धारी होकर दर्शनविशुद्ध्यादि षोडस भावनाओं को भाकर उत्कृष्ट तीर्थंकर नामकर्म का बंध किया। वे मुनिराज तप के तेज से सूर्य समान शोभने लगे ॥११-१४॥

अन्ते संन्यासविधिना देहत्यागं विधाय सः ।
ऊर्ध्वग्रं वेयके श्रेष्ठे प्रीतिंकरविमानके ॥१५॥
अहमिन्द्रोऽभवद्देव देवो देवगणार्चितः ।
एकत्रिंशत्सहस्रायुर्हस्तद्वयशरीरभृत् ॥१६॥
एकत्रिंशत्सहस्रोक्तान्व्यतीयाऽसौ च वत्सरान् ।
जग्राह मानसाहारं समन्ताद्देवसंस्तुतः ॥१७॥
षट्पञ्चाशच्चतुः शत्य सहितान्वासरान् प्रभुः ।
नीत्वोच्छ्वासविधानं स कृतवान्ब्रह्मचर्यभृत् ॥१८॥
तत्र स्वावधिपर्यन्तं ज्ञानतेजः पराक्रमैः ।
विक्रियाभिः समर्थोऽयं सर्वं कर्तुं हृदीप्सितम् ॥१९॥
तथापि किञ्चिदपि नो कर्तुमिच्छति स प्रभुः ।
अपारसुखसम्पन्नो व्यराजत विभूतिभिः ॥२०॥
ध्यात्वा सिद्धानशेषांश्च तत्पूजारतमानसः ।
षण्मासप्रमितायुः स सर्वायुषि बभूव सः ॥२१॥

अपराजित मुनिराज अंत में संन्यास विधि से देह त्याग कर ऊर्ध्व ग्रं वेयक में श्रेष्ठ प्रीतिकर विमान में अहमिन्द्र हुए। वह अहमिन्द्र अनेक देवों से आदर को प्राप्त हुआ। उसकी आयु



मोहन कूट



पदमप्रभु जिनराज का, मोहन कूट है जेह ।
मन वच तन कर पूजहूं, शिखर सम्मेद यजेह ।।

ओ३म् ह्रीं श्री पदमप्रभु जिनेन्द्रादि मुनि ९९ करोड़ ८७ लाख ४३ हजार ७५७ मुनि इस कूट से सिद्ध भए तिनके चरणारविन्द को मेरा मन वचन काय से बारम्बार नमस्कार हो जलादि अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।।६।।

इस टोंक की भाव सहित वंदना करने से एक करोड़ उपवास का फल होता है ।

३१ सागरोपम वर्ष की थी व शरीर दो हाथ ऊँचाई का था। सर्व देवों से स्तुत्य वह अहमिन्द्र ३१ हजार वर्ष बीतने पर अमृताहार करता था और इतने ही पक्ष बीतने पर अर्थात् चार सौ छप्पन दिनों बाद श्वासोच्छ्वास ग्रहण करता था। ब्रह्मचर्य के सुख का नित्य ही अनुभव करता हुआ वह देव, भव-प्रत्यय अवधिज्ञान का विषय जहाँ तक था वहाँ तक अपने ज्ञान, तेज, पराक्रम व विक्रिया के द्वारा अपनी इच्छा पूर्ण करने में समर्थ था, फिर भी वह कुछ नहीं करता था। अपार सुख से सम्पन्न वह देव अपने वैभव से शोभित था। वह सदा सिद्ध प्रभु का ध्यान व पूजा करने में तत्पर रहता था। इस प्रकार उसने अपनी अधिकांश आयु व्यतीत की। जब उसकी छह माह की आयु शेष रह गई, तब निम्नानुसार घटनाक्रम घटित हुआ ।।१५-२१।।

तदा जंबूमहाद्वीपे भरतक्षेत्र उत्तमे ।
शुभे देशे शुभपुरी कौशाम्बी नामतः स्मृता ।।२२।।

यमुनापूरसन्दीप्ता धनधान्यसमाकुला ।
धर्मविन्मानवगणैः सर्वत्रकृतमङ्गला ।।२३।।

तत्रेक्ष्वाकुकुले गोत्रे काश्यपे धरणाभिधः ।
राजा बभूव धर्मज्ञो महाबलपराक्रमः ।।२४।।

तस्य राज्ञी सुसीमाख्या महाभाग्येन संयुता ।
अहमिन्द्र प्रसूर्या तु भवित्री समशोभत ।।२५।।

तत्तुष्टयै स्वावधिज्ञानादागमं परमेशितुः ।
ज्ञात्वा तत्रैव धनदं रत्नवृष्टयर्थमिन्द्रकः ।।२६।।

समादिशत् समादिष्टस्तेन यक्षेश्वरस्तदा ।
ववर्षाभ्रवद्ववर्षाशु रत्नानि विविधानि सः ।।२७।।

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में कौशाम्बी नामक देश की कौशाम्बी नाम की नगरी है, जो कि यमुना नदी के किनारे स्थित थी व धन-धान्य तथा धर्मात्माओं से समृद्ध थी तथा जहाँ नित्य ही मंगलदायक कार्य चलते रहते थे। वहाँ इक्ष्वाकु कुल का काश्यप-गोत्रीय धरण नामक महा बलवान्, पराक्रमी व धर्मज्ञ राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम सुसीमा था। वह परम भाग्यवती थी। इसी के उदर में वह अहमिन्द्र जन्म लेने वाला है, इसलिये वह बहुत शोभा पा रही थी। पद्मप्रभ का आगमन इसके उदर से होने वाला है—ऐसा इन्द्र ने अपने अवधिज्ञान से जानकर, प्रसन्नतापूर्वक कुबेर को रत्न-वृष्टि करने की आज्ञा दी। कुबेर ने यक्षों के अधिपति को आदेश दिया। यक्षेश्वर ने वर्षाकाल के बादलों के समान नाना प्रकार की रत्नवृष्टि की ॥२२-२७॥

माघे कृष्णदले षष्ठ्यां चित्रायां शुभवासरे।
रत्नपर्यङ्कसुप्ता सा सुसीमा भूपतेः प्रिया ॥२८॥
रात्रौ प्रत्युषसि स्वप्नान् षोडशैक्षत भाग्यतः।
स्वप्नान्ते सिन्धुरं वक्त्रे प्रविष्टं समलोकयत् ॥२९॥
अथ प्रबुद्धा सा देवी तत्क्षणं पत्युरन्तिके।
गता प्रसन्नवदना तेनागच्छेति सादरम् ॥३०॥
उक्तोपविष्टा सत्पीठे बद्धाञ्जलिरुवाच तम्।
स्वामिन्मयोषसि स्वप्नाः षोडशाद्य समीक्षिताः ॥३१॥
स्वप्नान्ते मत्तमातङ्गः प्रविवेश मदाननम्।
श्रुत्वा तांस्तत्फलं ब्रूहि यथार्थं प्राणवल्लभ ॥३२॥
श्रुत्वोदितो नृपस्वामी प्रीत्या पुलकितस्तदा।
प्रोवाच तां शृणु प्राज्ञे महोद्यद्भाग्यशालिनी ॥३३॥

उदरे ते समायातो महान्देवो जगत्पतिः ।
तं समीक्षिष्यसे त्वं भोः समयादतुले दिने ॥३४॥
इति श्रुत्वा तदा देवी महानन्दमवाप सा ।
गर्भिणीं तां सिषेवेऽथ प्रतिघस्रं पुलोमजा ॥३५॥

माघ कृष्ण षष्ठी के शुभ दिन, चित्रा नक्षत्र पर चन्द्र रहते रानी सुसीमा ने रत्न-पर्यंक पर सोते हुए रात्रि के पिछले पहर में भाग्योदय से सोलह स्वप्न देखे। स्वप्नों के अंत में रानी ने अपने मुँह में हाथी को प्रवेश करते हुए भी देखा। निद्रा से जागृत रानी तत्काल अपने पति के पास जाकर, उत्तम आसन पर बैठकर, हाथ जोड़कर अपने पति से कहने लगी—स्वामिन्! मैंने आज रात्रि के पिछले पहर में सोलह स्वप्न देखे हैं और अंत में उन्मत्त हाथी को मुँह में प्रवेश करते हुए भी देखा है, आप इस सब का यथार्थ फल कहो। रानी के इस प्रकार के वचन सुनकर राजा धरण के शरीर में रोमाञ्च हो आया। वह कहने लगा—हे बुद्धिशालिनी भाग्यवंत देवी! सुन, तुम्हारी कूख में जगत् के स्वामी देव आये हैं। तू उनको एक दिन प्रत्यक्ष देखेगी। पति के मुख से इस प्रकार की बातें सुनकर महादेवी को अतिशय आनन्द हुआ। गर्भवती रानी की सेवा नित्य इन्द्राणी करने लगी ॥२८-३५॥

शक्रसेव्यो नृपश्चासीदानन्ददुन्दुभिस्वनः ।
रत्नवृष्टिः प्रतिदिनं त्रिकालेऽपि च वर्षति ॥३६॥
एवं देव्या तया मासा नीता नव सुखेन हि ।
स्वभावदीप्तया देवज्योतिर्देदीप्यमानया ॥३७॥
कार्तिके मासि कृष्णायां त्रयोदश्यां शुभे दिने ।
असूत पुत्रं सा श्रीमदहमिन्द्रमहेश्वरम् ॥३८॥

तथैवावधितो ज्ञात्वा सौधर्मेन्द्रोऽथ हर्षितः ।
ऐशानेन्द्रसमायुक्तः सगीर्वाणः समाययौ ॥३९॥
स मायाशक्तितो देवं मात्राज्ञातं शचीकरात् ।
समादाय गतो मेरुं जयनिर्घोषमुच्चरन् ॥४०॥

इन्द्र भी राजा की सेवा करने लगा। आनन्द से नगारों के शब्द गुंजायमान होने लगे। प्रत्येक दिन त्रिकाल रत्नवृष्टि होने लगी। इस प्रकार देवी के नौ महिने आनन्द से व्यतीत हुए। स्वभावतः ही रानी कान्तियुक्त थी; फिर गर्भ में आये हुए प्रभु की दीप्ति से रानी और भी विशेष कान्ति-युक्त दिखने लगी। कार्तिक कृष्ण त्र्योदशी के शुभ दिन अहमिन्द्र के भी महेश्वर के समान पुत्र को जन्म दिया। सौधर्मेन्द्र अवधिज्ञान से प्रभु के जन्म को जानकर अतिशय प्रसन्न हुआ। इसी प्रकार ऐशानेन्द्र भी अनेक देवों के साथ आया। अपनी माया-शक्ति से माता को मोहित करके, प्रभु को इन्द्र ने इन्द्राणी के हाथों से अपने हाथों में ले लिया व जय-जय का गंभीर घोष करते हुए प्रभु को मेरु पर्वत पर ले गया ॥३९-४०॥

क्षीरसिन्धुजलापूर्णैश्चाष्टोत्तरसहस्रकैः ।
हेमकुम्भैः प्रभुं तत्रास्नापयद् भक्तितोऽर्चयत् ॥४१॥

वस्त्रालङ्कारणैर्दिव्यैः पश्चादामूष्य तं प्रभुम् ।
पुनः समानयामास महाराजस्य वेश्मनि ॥४२॥

आरोपितं सिंहपीठे पुनः सम्पूज्य तत्र तम् ।
विधाय ताण्डवं चित्रं भूपाद्यन्तर्वशीकरम् ॥४३॥

तस्य पद्मप्रभाभिख्यां कृत्वा मात्रे समर्प्य च ।
अशेषदैवतैः सार्धं जगाम स्वामरावतीम् ॥४४॥

वहाँ पर क्षीर समुद्र के जल से भरकर एक हजार आठ स्वर्ण कलशों से सौधर्मेन्द्र ने प्रभु का अभिषेक किया और उसने भक्ति से पूजा की; उसके बाद राजाओं आदि को मुग्ध करने वाला आश्चर्यकारी नृत्य उनके सामने करके प्रभु का नाम पद्मप्रभ रखा और प्रभु को माता को सौंपकर, सर्व देवों के साथ इन्द्र स्वर्ग को वापस चला गया ।।४१-४४।।

सर्वाङ्गानुपमो देवो देवीदेवकुमारकैः ।
सेवितो बालरूपेण चिक्रीड नव सद्मनि ।।४५।।
नवकोटिसमुद्रेषु सुमतीशाद् गतेषु सः ।
तदभ्यन्तरजीवी स बभूवाद्भुतरक्ततनुः ।।४६।।
सत्रिंशल्लक्षपूर्वायुः समेतो भास्करप्रभः ।
सार्धं द्विशतकोदण्ड समुत्सेध शरीरवान् ।।४७।।
सार्धं सप्तोक्तलक्षोक्तपूर्वायुस्तु गतं यदा ।
कुमारकाले क्रीडाभिस्तदा राजा बभूव सः ।।४८।।
विकारान् जितवान् सर्वान् धर्मकार्यविशारदः ।
सर्वेभ्यः सुखदः सर्वदोषहर्ता प्रतापवान् ।।४९।।
सानन्दं राज्यमकरोत् राज्यभोगैरनेकधा ।
वनक्रीडार्थमेकस्मिन् समये गतवान्प्रभुः ।।५०।।
तत्र गत्वैकमासं तं मृतं मातङ्गमैक्षत ।
तत्क्षणात्स विरक्तोऽभूत् नश्वरं गणयञ्जगत् ।।५१।।
अनुप्रेक्षा द्वादशैव भावयित्वा हृदि प्रभुः ।
दत्वा राज्यं स्वपुत्राय स्तुतो ब्रह्मर्षिभिस्तदा ।।५२।।
शक्रोपनीतामतुलां आनन्दशिबिकां गतः ।
शृण्वन् देवजयध्वानं मनोहरवनं ययौ ।।५३।।

कार्तिके कृष्णपक्षे च त्र्योदश्यां तिथौ प्रभुः ।
चित्रायां भूमिपालैश्च सहस्रैः सह तद्वने ।।५४।।
दीक्षां जग्राह सन्ध्यायां सम्यक् षष्ठोपवासभृत् ।
तत्क्षणात्स त्रिबोधोऽपि चतुर्थज्ञानमाप सः ।।५५।।

प्रभु के सर्व अवयव उपमातीत सुन्दर थे। देव-देवियाँ बाल-रूप धारण कर, बालक-प्रभु के साथ राजवाड़ी में अनेक प्रकार की क्रीडा करते थे। सुमति जिनेश्वर के मोक्ष जाने के उपरान्त नौ कोटि सागरोपम काल व्यतीत होने के बाद श्री पद्मप्रभ का जन्म हुआ। उनका जीवन ऊपर कहे हुये काल के अन्दर अन्तर्भूत है। प्रभु की अङ्गकान्ति अद्भुत थी। उनकी आयु तीस लाख पूर्व की थी। उनके शरीर का तेज स्वर्ण समान था। उनके देह की ऊँचाई ढ़ाई सौ धनुष की थी। प्रभु की साढ़े सात लाख पूर्व आयुष्य कुमार-क्रीड़ा में व्यतीत हुई। उसके बाद उन्होंने राज्यभार सम्हाला। उन्होंने काम, क्रोध आदि अन्तरंग शत्रुओं को जीता था तथा वे धर्मकार्य में अतिशय चतुर थे। सब को सुख देने वाले तथा सभी के दोषहर्त्ता प्रभु महा प्रतापवान् थे। उन्होंने अनेक प्रकार के राज्य-सुख भोगते हुए राज्य किया। एक बार प्रभु वन-क्रीड़ा के लिए गये। वहाँ वे एक माह पर्यन्त रहे। वहाँ एक मृत हाथी को देखकर वे तत्काल विरक्त हो गये। उन्होंने संसार, शरीर व भोगों की असारता व नश्वरता का विचार किया, हृदय में बारह भावनाओं का चिन्तवन कर, राज्य पुत्र को सोंप दिया। लौकान्तिक देवों ने आकर प्रभु के वैराग्य की प्रशंसा की तथा इन्द्र ने प्रभु को आनन्दा नाम की अनुपम पालकी में बैठाया। देवों की जय-ध्वनि के बीच प्रभु मनोहर नामक वन में गये। कार्तिक कृष्ण त्र्योदशी के दिन चित्रा नक्षत्र पर, एक हजार राजाओं के साथ

प्रभु ने दो उपवास की प्रतिज्ञा करके दीक्षा ग्रहण की। तीन ज्ञान के धारक प्रभु को परिणामों की निर्मलता से मनःपर्यय ज्ञान भी प्रकट हो गया ॥४५-५५॥

द्वितीयेऽह्निगतो देवो वर्धमानं पुरं प्रति।
भिक्षार्थं सोमदत्ताख्यस्तत्र राजा सुधार्मिकः ॥५६॥

तस्मै दत्वाशनं प्राप तद्देवाश्चर्यं पञ्चकम्।
षण्मासमौनमास्थाय तपश्चातपदुत्तमम् ॥५७॥

उग्रेण तपसा देवो घातिकर्मक्षयं व्यधात्।
युक्तश्चतुरनन्तैः स चैत्रमासे सिते दले ॥५८॥

पूर्णिमायामवापोच्चैः केवलज्ञानमुत्तमम्।
तदा समवसारं स धनेशो वासवाज्ञया ॥५९॥

अत्यद्भुतं व्यरचयत्तत्र सर्वोपरि प्रभुः।
छत्रत्रयसमुद्दीप्तो बभौ खे भास्करो यथा ॥६०॥

यथासङ्ख्यं गणेन्द्राद्यैः प्रभुर्द्वादशकोष्ठगैः।
सम्पूजितस्ततो दृष्टो शारदेन्दुरिव व्यभात् ॥६१॥

भव्यैर्धर्मोपदेशाय सम्पृष्टो भगवांस्तदा।
उच्चरन्दिव्यनिर्घोषं सर्वतत्त्वप्रकाशकम् ॥६२॥

सर्वधर्मोपदेशाढ्यं सर्वार्थतिमिरापहम्।
द्वात्रिंशल्लक्षसहस्रपुण्यदेशेषु देवराट् ॥६३॥

पद्मप्रभोऽसौ विहरन्भव्यानां प्रतिबोधयन्।
मासमात्रावशिष्टायुः सम्मेदाचलमाययौ ॥६४॥

संहरन्दिव्यनिर्घोषं शुक्लध्यानपरायणः।
मोहनाख्यं महाकूटं स्वधाम्ना समपूरयत् ॥६५॥

दो उपवास करके प्रभु पारणा के लिए वर्धमान नामक नगर में गये, वहाँ के सोमदत्त नामक अतिशय धार्मिक राजा ने प्रभु को आहार दिया। उसके फलस्वरूप पञ्चाश्चर्य-वृष्टि हुई। प्रभु ने छह मास पर्यन्त उत्तम तप किया। उग्र तप द्वारा उन्होंने घातिकर्मों का क्षय करके, चैत्र शुक्ल पूर्णिमा के दिन अनन्त चतुष्टय प्राप्त किया। उस समय इन्द्राज्ञा से कुबेर ने समवशरण की आश्चर्यकारी रचना की। प्रभु अत्युच्च सिंहासन पर विराजमान हुए। उनके ऊपर सूर्य के समान ३ छत्र चमक रहे थे। समवशरण के बारह कोठों में बैठे हुए गणधरादिक द्वारा पूजित पद्मप्रभ शरत्काल के चन्द्रमा की तरह शोभायमान होने लगे। भव्यों ने भगवन्त से धर्मोपदेश देने की प्रार्थना की, तब प्रभु ने दिव्यध्वनि द्वारा सप्त तत्त्वों का प्रकाशन किया अर्थात् ससार से मुक्त होने के कारणभूत मोक्षमार्ग का उपदेश किया, जीवादिक तत्त्वों का सम्पूर्ण स्वभाव से वर्णन कर तद्-विषयक अज्ञान को निर्मूल किया। देवाधिदेव पद्मप्रभ भगवान ने बत्तीस हजार पुण्यमय आर्यदेशों में विहार किया तथा भव्यों को उपदेश देकर धर्म में जागरूक किया। एक माह आयु अवशिष्ट रहने पर दिव्यध्वनि बंद हो गई व भगवान शुक्ल ध्यान में मग्न हो गये। उन्होंने मोहन नामक कूट पर स्वयं के तेज से भामण्डल को भी व्याप्त कर दिया ॥५६-६५॥

फाल्गुने मासि कृष्णायां चतुर्थ्यां मुनिभिः सह।
सहस्रैः प्रतिमायोगं आवायापामृतं प्रभुः ॥६६॥
सन्ध्यायां मुक्तिकल्याणमाप्यासौ सिद्धनामनि।
अखण्डानन्दपीयूषरसास्वादी बभूव सः ॥६७॥
एकोनशतकोट्युक्ताः समुद्राशीतिलक्षकाः।
नेत्रचत्वारिंशद्युक्तास्तथासप्तशतप्रमाः ॥६८॥

सप्तविंशतिसंख्यातास्तत्पश्चान्मोहनाभिधात् ।
कूटात्सिद्धपदं प्राप्ता मुनयो दिव्यचक्षुषः ॥६६॥
कूटं चानन्दमाहात्म्यं मोहनाख्यं मनोहरम् ।
यात्रायां योऽभिवन्देत भवाब्धिं स तरेद्ध्रुवम् ॥७०॥

प्रोषधव्रतकोटयुक्तं फलं तद्वन्दनाल्लभेत् ।
सर्वकूटाभिवन्दारो फलं वक्तुं न शक्यते ॥७१॥

पूर्वं सुप्रभभूपालः कूटं तं प्राणमन्मुदा ।
संक्षेपतः कथां तस्य वक्ष्ये शृणुत साधवः ॥७२॥

जम्बूनाम्नि शुभे द्वीपे भारते क्षेत्र उत्तमे ।
वंगदेशे प्रभाकर्यां नगर्यां सुप्रभोऽभवत् ॥७३॥

फाल्गुन कृष्ण चतुर्थी के दिन एक हजार मुनियों के साथ प्रभु ने योग-धारण कर मोक्ष प्राप्त किया। सायंकाल में सिद्ध-योग से प्रभु ने मोक्ष प्राप्त किया व अखण्ड आनन्द सुधारस का आस्वाद लेने लगे। इस मोहन-कूट पर से नब्बे कोटि चौरासी लाख ब्यालीस हजार सात सौ सत्ताइस मुनिराजों ने दिव्य-चक्षु—केवलज्ञान प्राप्त की है। यह मोहनकूट अनन्त माहात्म्य से युक्त है। जो भी इस कूट की वंदना करता है, वह निश्चय से संसार-समुद्र से पार होता है। इस कूट की वंदना का फल एक कोटि प्रोषधोपवास के फल के बराबर कहा गया है, तब फिर सर्व कूटों की वन्दना करने वाले को प्राप्त होने वाले फल का वर्णन कौन कर सकता है? अर्थात् कोई नहीं। पहले सुप्रभ राजा ने इस कूट की उल्लासपूर्वक वन्दना की थी—उसकी कथा संक्षेप में ऐसी है कि जम्बू नामक शुभ द्वीप में उत्तम भरत क्षेत्र है। उस क्षेत्र के बंग देश की प्रभाकर नामक नगरी में सुप्रभ नाम का राजा हुआ ॥६६-७३॥

तस्य प्रिया सुषेणाख्या सुन्दरी शीलशालिनी ।
गुणाढ्या लक्षणाढ्या च सत्याख्या सम्बभूव सा ॥७४॥

एकदा सुप्रभो भूपः परिवारसमन्वितः ।
स्वेच्छया हर्षसंयुक्तः क्रीडार्थं गतवान्वनम् ॥७५॥

अपश्यच्चारणमुनिं त्रिःपरिक्रम्य तं ततः ।
प्राह भूपश्चारणर्द्धिः कुतः प्राप्ता तव प्रभो ॥७६॥

मुनिनोक्तं महीपाल सम्मेदाचलवन्दनात् ।
चारणर्द्धिः मया प्राप्ता श्रुत्वाहं नृपतिः पुनः ॥७७॥

मुने सम्मेदयात्रार्थं मन्मनोऽस्ति समुत्सुकम् ।
मुनिस्तं प्राह भूमीश तव यात्रा भविष्यति ॥७८॥

तदा मुदा समागत्य गृहं यात्रोन्मुखोऽभवत् ।
संघसम्मानकृद्राजा कोटयुक्तमनुजैः सह ॥७९॥

गायकान्वादकांस्तद्वत् नर्तकयो नर्तकांस्तदा ।
सार्थकान्संविधायाथ दुन्दुभीश्चाभिनादयन् ॥८०॥

उत्तुङ्गध्वज शोभाढ्यो महोत्सवसमन्वितः ।
सम्मेदयात्रामकरोत् दिनैः कतिपयैर्नृपः ॥८१॥

सम्प्राप्तं सर्वतः प्रेम कूटं तं मोहनाभिधम् ।
अभिवन्द्याष्टधा पूजां विस्तार्य विधिवत्तदा ॥८२॥

सुप्रभ राजा की पत्नी सुषेणा थी। वह बहुत सुन्दर थी व सद्गुणी स्त्रियों के सर्व लक्षणों से युक्त थी। वह सत्यवादिनी थी। एक बार राजा सुप्रभ स्वच्छंदता से हर्षपूर्वक क्रीडा करने के लिए सपरिवार वन में गया। वहाँ पर उसने एक चारण मुनि को देखा। राजा ने उन्हें तीन प्रदक्षिणा देकर पूछा—स्वामिन्! आपको यह चारण-ऋद्धि किस कारण से प्राप्त हुई

है, सो कहो। तब मुनिराज कहने लगे—राजन्! मुझे यह सिद्धि सम्मेदगिरि की वंदना करने से प्राप्त हुई है। तब राजा कहने लगा—हे महाराज! सम्मेदगिरि यात्रा करने के लिए मेरा मन उत्सुक हुआ है, मेरा संकल्प पूरा होगा या नहीं? तब मुनिराज कहने लगे—राजन्! तुम्हारी यात्रा अवश्य पूरी होगी। राजा यह सुनकर आनन्द से घर वापस आया और यात्रा करने के लिए तैयारी करने लगा। चतुर्विध संघ का सम्मान करके राजा कोटि मनुष्यों के संघ सहित यात्रा के लिए निकला। उसके साथ में गायक, वादक, नर्तक और नर्तकियाँ भी थीं। किसी भी कार्य की सिद्धि प्राप्त कराने में समर्थ, लोगों को यात्रोन्मुख करने के लिए दुन्दुभि बाजे बजवाकर सूचना दी। राजा ने उत्कृष्ट ध्वजाओं की शोभा से सहित महोत्सव-पूर्वक कितने ही दिनों तक सम्मेदयात्रा की। मोहन नाम के कूट पर पहुँचकर उसने विधिपूर्वक अष्टविध पूजा विस्तार से की ॥७४-८२॥

विरक्तो रतिषेणाय राज्यं दत्वा च तद्वने ।
मुनिव्रतं स जग्राह तत्रैव दृढभावभाक् ॥८३॥
चतुर्युक्ताशीतिलक्षैः मुनिभिः स तपोबलात् ।
घातिनां घातनं कृत्वा निर्वाणमगमत्तदा ॥८४॥
एवं प्रभाव कूटोऽसौ मोहनाख्यः प्रवर्णितः ।
भव्याः प्रयत्नतो जीवा दृष्ट्वा तं प्रणमन्तु ये ॥८५॥

वसन्ततिलका

यो मोहनाभिधमिदं गिरिवर्यकूटम् ।
भावात्समीक्ष्य परिपूज्य नमेच्च भक्त्या ॥
स्व-स्वाभिलाषपरिलब्धिसुखान्वितोऽस्मात् ।
मुक्तो भवेत् कठिनसंसृतिपाशबन्धात् ॥८६॥

उसके बाद राजा विरक्त हुआ। सम्मेदगिरि विषयक दृढ़ भक्ति-युक्त उस राजा ने रतिषेण नामक अपने पुत्र को राज्य देकर इसी वन में दीक्षा लेकर मुनी हो गया। चौरासी लाख मुनियों के साथ तप करके, उसकी शक्ति से घाति-अघाति कर्मों को नष्ट कर उन्होंने मुक्ति प्राप्त की। इस प्रकार के प्रभाव से युक्त होने के कारण इस कूट का नाम मोहनकूट पड़ा। भव्य जीव इस कूट को प्रणाम करते हैं। गिरिराज की मोहनकूट को जो भक्ति से देखकर पूजन-नमस्कार करता है, उसकी अभिलाषा की पूर्ति हो जाती है और वह इस संसार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है ॥८३-८६॥

इति दीक्षितदेवदत्तकृते सम्मेदशिखरमाहात्म्ये मोहनकूट-वर्णनंनाम षष्ठोऽध्यायः समाप्तः ॥

इस प्रकार दीक्षित देवदत्तकृत सम्मेदशिखर माहात्म्य ग्रन्थ में मोहनकूट का वर्णन करने वाला छठवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

जिस प्रकार एक पंख से पक्षी नहीं उड़ सकता अथवा एक पहिये से रथ नहीं चल सकता, उसी प्रकार सम्यक् चरित्र बिना सम्यक् दर्शन तथा सम्यक् ज्ञान का रथ नहीं चल सकता।

अथ सप्तमोऽध्यायः

श्रीमत्प्रभासकूटे यो निःश्रेयसपदं गतः ।
तस्मै सुपार्श्वनाथाय देवदत्तनमस्कृतिः ॥१॥
तत्प्रसादात्कथां तस्य चतुर्वर्गफलप्रदाम् ।
सङ्ग्रहेण प्रवक्ष्येहं भव्याः शृणुत सादरम् ॥२॥
प्रसिद्धे धातकीखण्डे पूर्वस्मिन् ह्लादिनी शुभा ।
सीता तदुत्तरे भागे कच्छदेशश्च धार्मिकः ॥३॥
तत्र क्षेमपुरं भास्वत्तस्य राजा सुपुण्यकृत् ।
नन्दिषेणोऽभवद् भूप शीर्षार्चितपदद्वयः ॥४॥
नन्दिषेणा तस्य राज्ञी तया सह मुमोद सः ।
महाप्रतापदहनज्वालादग्धारिभूरुहः ॥५॥
पुत्रानिव प्रजाः स्वीया ररक्ष सततं नृपः ।
परोपकारी सम्यक्त्व-संयुतः परमोदयः ॥६॥
भक्तः श्रीवीतरागस्य गुणविक्रमसागरः ।
बुद्धिमान् साहसी वीरः सहितो बन्धुभिः स्वकैः ॥७॥
राज्यं बुभोज धर्मेण धर्मतः पालयन्महीम् ।
पोषयन्नर्थिकेदारानखण्डैर्दानवारिभिः ॥८॥

शोभायुक्त अथवा बाह्याभ्यंतर लक्ष्मी की उपलब्धि में कारणभूत प्रभास कूट पर जिन्होंने मोक्षपद प्राप्त किया है, उन सुपार्श्वनाथ भगवान को मैं देवदत्त कवि वंदना करता हूँ। श्री सुपार्श्वनाथ भगवंत के प्रसाद से धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष–ये चारों ही फलों को देने वाली मेरी इस कथा को, हे भव्यो ! आदरपूर्वक सुनो। प्रसिद्ध पूर्व-धातकी खण्ड में सीता

नामक नदी के उत्तर भाग में धार्मिक-वृत्ति का कच्छ देश है। उस देश में कान्तियुक्त क्षेमपुर नामक नगर है। वहाँ का राजा नंदिषेण उत्तम पुण्य-कार्य करने वाला था। अन्य राजा मस्तक से जिसके पाद-युगल की वंदना करते हैं, तथा जिसने अपने प्रताप रूपी अग्नि की ज्वाला से शत्रु रूपी वृक्ष नष्ट कर दिये हैं, उस नदिषेण राजा की रानी का नाम नन्दिषेणा था। राजा उसके साथ आनन्द से रहता हुआ प्रजा का पुत्रवत् पालन करता था। पुनः, वह राजा परोपकारी, सम्यग्दृष्टि और परम ऐश्वर्य-शाली था तथा वह वीतराग जिनेश्वर का भक्त, पराक्रम व गुणों का सागर, बुद्धिमान, साहसी व वीर था। वह अपने बंधुओं के साथ प्रेम से रहता हुआ, धर्म-पूर्वक राज्य का उपभोग करता था। वह धर्म से पृथ्वी का, एवं अखण्ड धन का दान करने वाले हाथों से याचकरूपी खेतों का रक्षण करता था ॥१-८॥

एकदा सौधगो भूपः सुखासीनो वियत्पथे।
विचित्ररङ्गजीमूतान् दृष्ट्वा मोदमवाप सः ॥९॥

दृष्टा एव विनष्टास्त एतदद्भुतमवेक्ष्य सः।
बुद्ध्वाऽसारं हि संसारं विरक्तोऽभून्महीपतिः ॥१०॥

सुखेनात्मसुतायाथ राज्यं दत्वा तदैव हि।
निर्वाणोद्यमसंयुक्तः तत्क्षणं स वनं ययौ ॥११॥

तत्रार्हन्नन्दनमुनिं नत्वा तन्निकटादसौ।
दीक्षां जग्राह जैनेन्द्रीं वशैकाङ्कधरो मुनिः ॥१२॥

सम्भाव्य कारणान्युच्चैः षोडशोक्तानि धैर्यतः।
तीर्थङ्करो बभूवायं परमं तप आचरन् ॥१३॥

अन्ते संन्यासरीत्या स प्राणान् त्यक्त्वा सुखेन हि ।
ग्रैवेयके सुभद्राख्ये विमाने चाहमिन्द्रताम् ।।१४।।

सम्प्राप्य सप्तविंशत्या सागरस्यायुषा युतः ।
सार्धद्विहस्तकायोऽसौ बभूव तपसोज्ज्वलः ।।१५।।

एक बार महल के आंगन में सुखासीन राजा ने आकाश मार्ग में विचित्र रंगों के मेघों को देखा। उन्हें देखकर वह प्रसन्न हुआ, किन्तु वे मेघ क्षण में ही नष्ट हो गये। इस आश्चर्य को देखकर राजा ने यह जाना कि यह संसार कितना क्षणिक व असार है। वह विरक्त हो गया। उसने अपने पुत्र को राज्य देकर, मोक्ष-प्राप्ति के लिए उद्यत होकर, आनन्द से वन की ओर प्रस्थान किया वहाँ उसने अर्हन्नन्द मुनि से दीक्षा ग्रहण करली तथा आचाराङ्ग आदि अङ्गों का ज्ञान प्राप्त किया। उन्होंने धैर्यपूर्वक तप करके तथा सोलह भावनाओं को भाकर तीर्थंकर नामकर्म नामक महापुण्य-प्रकृति का बध किया। उग्र तपश्चरण कर उन नन्दिषेण मुनि ने अंत में समाधि-मरण कर सुख से प्राण त्याग किये तथा सुभद्र नामक ग्रैवेयक विमान में अहमिन्द्र हुए। वहाँ पर उनकी आयु २७ सागरोपम वर्ष की थी, तथा उनका शरीर ढ़ाई हाथ ऊँचा था ।।६-१५।।

सप्तविंशतिसहस्रवर्षोपरि स मानसम् ।
आहारमग्रहीत्तद्वत् सप्तविंशतिपक्षकैः ।।१६।।

गतैर्निश्वासिकोच्छ्‌वासो तस्माच्च नरकावधिः ।
स्वेच्छा प्रमाणकुर्वं किञ्चिन्न कुरुते स्म सः ।।१७।।

ध्यायन् सिद्धान् सदा सिद्धबिम्बान् सम्पूजयन्नमन् ।
षण्मासकावशिष्टायुर्महासुखभुगप्यभूत् ।।१८।।

वह अहमिन्द्र देव २७ हजार वर्ष व्यतीत होने के बाद मानसाहार ग्रहण करता था और २७ पक्ष बाद उच्छ्वास लेता था। वह अवधिज्ञान से छठवें नरक तक के विषय को जानता था। अपनी इच्छा से कार्य करता हुआ वह किञ्चित् मात्र भी क्रोधादि कषाय-भाव नहीं करता था। इस प्रकार सिद्धों का ध्यान करते हुए तथा सिद्ध-बिम्बों की पूजा-वंदना करते हुए वह महासुखों का अनुभव करने वाला था। इस प्रकार उसकी छह माह कम, सत्ताइस सागरोपम आयु समाप्त हो गई ॥१६-१८॥

जम्बूनाम्नि तदा द्वीपे भरते चार्यखण्डके ।
काशी देशे सुनगरी वाराणस्याभिधा स्मृता ॥१९॥

स्वविभूत्या हसन्तीव भूमिगापि सुरालयम् ।
तस्यामिक्ष्वाकुवंशे च गोत्रकाश्यप उत्तमे ॥२०॥

सुप्रतिष्ठोऽभवद्राजा तेजस्वी भव्यसागरः ।
तद्राज्ञी पृथिवीषेणा सती सा धर्मशालिनी ॥२१॥

तस्याश्शुभाङ्गणे श्रीमद्देवागमबुधेन हि ।
आज्ञप्तो देवराजेन धनेशोऽम्बरमध्यगः ॥२२॥

मेघवद् बहुदा रत्न-वृष्टिं षाण्मासिकीं तदा ।
प्रसन्नमनसा चक्रे यक्षवृन्दसमन्वितः ॥२३॥

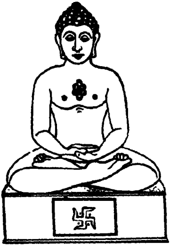
वैशाखशुक्लषष्ठ्यां स विशाखायां सुवेश्मनि ।
रात्रौ सुप्ता प्रभाते तान् स्वप्नान् षोडश चैक्षत ॥२४॥

स्वप्नान्ते स्वमुखाम्भोजे प्रविष्टं मत्तवारणम् ।
दृष्ट्वा देवी प्रबुद्धेयं महाविस्मयमाययौ ॥२५॥

तदैव साम्निकं भर्तुः गता भर्तानुमोदिता ।
तस्मै तानादितः स्वप्नान् आवयामास हर्षिता ॥२६॥



प्रभास कूट



सुपार्श्वनाथ जिनराज का, प्रभास कूट है जेह।
मन वच तन कर पूजहूं, शिखर सम्मेद यजेह ।।

ओ३म् ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्रादि मुनि ४६ कोड़ा कोड़ी ८४ करोड़ ७२ लाख ७ हजार ७४२ मुनि इस कूट से मोक्ष गए तिनके चरणारविन्द को मेरा मन, वचन, काय कर बारम्बार नमस्कार हो जलादि अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।।७।।

इस टोंक की भाव सहित वंदना करने से ३२ करोड़ उपवास का फल होता है।

तत्फलं श्रोतुकामां तामुवाच धरणीपतिः ।
देवि त्वद्गर्भगो देवो देवेन्द्रैरपि वन्दितः ।।२७।।
तंशु (तच्छु) भावसरे साक्षात् रक्षन्ति श्रीनिकेतनम् ।
इति श्रुत्वा तदा राज्ञी परमानन्दमाप सा ।।२८।।

इस जम्बूद्वीपस्थ भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में, काशी देश में वाराणसी नामक नगरी है। वह इसी भूमि पर स्थित है, तो भी अपने वैभव से स्वर्ग को भी हास्यास्पद बनाने वाली थी। वहाँ पर इक्ष्वाकु वंश का काश्यपगोत्रीय सुप्रतिष्ठ नामक तेजस्वी राजा राज्य करता था, जो कि भव्यत्व का सागर था। उसकी रानी पृथ्वीषेणा थी, जो कि पतिव्रता तथा धर्म-परायणा थी। उसके यहाँ भावी तीर्थंकर (उपर्युक्त अहमिन्द्र) के आगमन को जानकर देवराज इन्द्र ने कुबेर को आज्ञप्त किया। उसी समय से कुबेर ने यक्ष-वृन्द के साथ छह माह पर्यन्त विविध रत्नों की वर्षा की। तदनन्तर, बैशाख शुक्ल षष्ठी (उत्तरपुराण के अनुसार भाद्रपद शुक्ला षष्ठी) के दिन, विशाखा नक्षत्र के रहते हुए, रानी पृथ्वीषेणा ने अपने महल में शयन करते हुए रात्रि के अंतिम प्रहर में सोलह स्वप्नों तथा उन्मत्त हस्ति का मुख-प्रवेश देखा। इससे उसे बड़ा आश्चर्य व अतिशय आनन्द हुआ। प्रातःकाल ही हर्षित हो उसने अपने पति के पास जाकर उन स्वप्नों को आद्यन्त सुनाकर, फल जानने की इच्छा व्यक्त की। राजा उससे कहने लगा—हे देवी ! तुम्हारे गर्भ में देवेन्द्रों से भी वन्दित देव का अवतरण हुआ है। इस शुभावसर पर तुम्हारे गर्भ का रक्षण देव करते हैं। ऐसा सुनकर रानी अति आनन्दित हुई ।।१६-२८।।

अदाद्दानानि विप्रेभ्यो वचसा प्रार्थितानि वै ।
षट्पञ्चाशन्मिता देवकुमार्यो गर्भशोधिकाः ।।२९।।

तद्बोधिकास्तदा तत्र बभूवुर्वासवाज्ञया ।
सेवां तस्याः प्रतिदिनं चक्रुस्तच्चित्तमोदिनीम् ॥३०॥
ज्येष्ठेऽथ शुक्लद्वादश्यां सा देवी पुण्यसञ्चयात् ।
असूत परमेशानं पुत्रं त्रैभुवनप्रियम् ॥३१॥

राजा सुप्रतिष्ठ ने ब्राह्मणों को उनके द्वारा वाञ्छित सभी पदार्थ दिये। छप्पन देवकुमारिकायें रानी के गर्भशोधन के लिए आईं। इन्द्राज्ञा से कुछ देव जिनमाता को प्रातःकाल जागृत करने के लिए जिनेन्द्र का गुणगान करते थे। इस प्रकार देव-देवियों से सेवित जिनमाता का समय व्यतीत हो रहा था। ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशी के दिन महापुण्य के संचय से उस देवी (रानी) ने त्रैलोक्य के प्रिय तथा सबके प्रिय पुत्र को जन्म दिया ॥२६-३१॥

स्वावधेर्वासवो ज्ञात्वा भगवज्जन्म तत्क्षणम् ।
तत्रागतस्सुरैस्सार्धं जयनिर्घोषनिर्भरैः ॥३२॥
स मायाबलतस्तस्मात् प्रसूतिभवनात्प्रभुम् ।
बालाकृतिमुपादायु (थ) स्वर्णशैलं तदागमत् ॥३३॥
पूर्णैः क्षीरोदसलिलैः स्वर्णकुम्भैस्सुविस्तृतैः ।
अष्टोत्तरसहस्रैश्च स चक्रेऽभिषवं प्रभोः ॥३४॥
पुनरागत्य हर्षेण क्षेमाख्यपुरमुत्तमम् ।
वासवो देवतैस्सार्धं तत्राप्युत्सवमाकरोत् ॥३५॥
सुपार्श्वनाम्ना चोक्तं तं मातुरङ्के वि (नि) धाय च ।
जयेत्युक्त्वा नमस्कृत्य स देवोऽगात्सुरालयम् ॥३६॥
नवसहस्रकोट्युक्त-सागरेषु गतेषु सः ।
पद्मप्रभासवन्तर्वर्त्यायुस्समभवत्प्रभुः ॥३७॥

लक्षविंशतिपूर्वोक्तजीवनोयं सतां पतिः ।
शतद्वयधनुष्कायो बभूव जगदीश्वरः ॥३८॥
पञ्चलक्षोक्तपूर्वाश्च बालकेलिविधौ गताः ।
गते कुमारकाले च सञ्जाते यौवनागमे ॥३९॥
लब्ध्वा स पैतृकं राज्यं ररक्षाखिलमेदिनीम् ।
जितेन्द्रियो जितारातिर्निर्विकारो गुणाम्बुधिः ॥४०॥

अवधिज्ञान से प्रभु के जन्म का समाचार जानकर सौधर्मेन्द्र जय-जयकार करता हुआ तत्क्षण ही अन्य देवों के साथ वहाँ आया। इन्द्राणी द्वारा माया-बालक को वहाँ रखवाकर तथा बालरूप धारण करने वाले जिनेश्वर को प्रसूतिगृह से मंगवा कर इन्द्र प्रभु को लेकर मेरु पर्वत की ओर आया। वहाँ क्षीरसागर के जल से भरे हुए १००८ कलशों से प्रभु का अभिषेक किया गया। पश्चात्, इन्द्र जिन बालक को हर्ष से लेकर सभी देवों के साथ क्षेमा नगरी आया व वहाँ पर भी उसने उत्सव किया तथा प्रभु का नाम सुपार्श्व रखा। जिन प्रभु को माता को देकर वह सभी देवों के साथ वापस स्वर्ग में चला गया। पद्मप्रभ तीर्थंकर के बाद नौ हजार कोटि सागर वर्ष काल समाप्त होने के बाद प्रभु सुपार्श्व का जन्म हुआ। उनका आयुकाल भी ऊपर बताये अनुसार समझना। सज्जनों के स्वामी सुपार्श्व की आयु बीस लाख पूर्व की थी व काया दो सौ धनुष प्रमाण ऊँची थी। प्रभु का बाल्यकाल पाँच लाख पूर्व क्रीडा करने में समाप्त हुआ। कुमारावस्था समाप्त होने पर तारुण्यावस्था में प्रवेश कर पिता से प्राप्त राज्य का रक्षण किया। राज्य-पालन करते हुए भी प्रभु जितेन्द्रिय थे। गुणों के सागर प्रभु समस्त विकार रूपी शत्रुओं को जीतकर निर्विकारी थे ॥३२-४०॥

कोटिसूर्येन्दुसङ्काशः विश्वनेत्रानुमोदकः ।
अशेषतापसंहर्ताऽवर्णनीयं प्रभोऽभवत् ॥४१॥
सप्ताङ्गराज्यसौख्यं स चिरं भुक्त्वा प्रतापवान् ।
केनापि हेतुना देवो विवेक्तुं समुपागतः ॥४२॥
शरीराद्यखिलं वस्तुमिथ्यात्वेन* विचारयेत् ।
पूर्वं स्वभुक्तभोगान् स संस्मार्य विषयोचितान् ॥४३॥
वृथा कालात्ययं मत्त्वा सुनिर्विण्णेन चेतसा ।
धिङ्मामिति प्रोक्त्वा महावैराग्यमापवान् ॥४४॥

श्री सुपार्श्वनाथ कोटि चन्द्र-सूर्य के समान प्रकाशमान थे। उनके समक्ष सम्पूर्ण ही विश्व प्रत्यक्ष था। सम्पूर्ण दुखों को दूर करने वाले प्रभु अवर्णनीय थे। चिरकाल तक सप्ताङ्ग राज्य-सुख को भोगकर प्रभु किसी कारण विरागी हो गये। शरीर आदि अखिल वस्तुयें मिथ्या—सारहीन हैं तथा पूर्व में भोगे गये भोगों का स्मरण व्यर्थ ही समय का गंवाना है—ऐसा मानकर विरक्त प्रभु ने, अपने आप से, 'मुझे धिक्कार है'—ऐसा कहा और महा वैराग्य को प्राप्त हुए ॥४१-४४॥

तदा सारस्वतास्तत्र प्राप्तास्ते देवमुत्तमम् ।
प्रशंशंसुः प्रियैर्वाक्यैः देवर्षिगणहर्षिताः ॥४५॥
सौधर्मेन्द्रोपि तज्ज्ञात्वा देवैस्सह समाययौ ।
मनोगतिं तदा देवैरूढां तां शिबिकां प्रभुः ॥४६॥
समारुह्य तपस्तप्तुं सहेतुकवनं गतः ।
सहस्रभूमिपैस्सार्धं तत्र द्वेलो वेलोपवासकृत् ॥४७॥
सर्वसिद्धान्नमस्कृत्य केशानालुञ्च्य मुष्टिभिः ।
पञ्चभिर्विधिवत्तत्र दीक्षां जग्राह हर्षतः ॥४८॥

* अनित्यमिति

ज्येष्ठशुक्लदले तद्वत् द्वादश्यां सुतिथौ प्रभुः ।
विशाखानाम्नि नक्षत्रे दीक्षितोऽभवदञ्जसा ॥४९॥
परेह्नि सोमवर्माख्यं पुरं भिक्षार्थमागतः ।
महेन्द्रदत्तभूपाल दत्तमाहारमुत्तमम् ॥५०॥
आश्चर्यपञ्चकैर्दीप्तं गृहीत्वा कृतकृत्यताम् ।
तस्मिन्नारोप्य (रम्य) भूयोऽसौ तपोवनमुपागतः ॥५१॥
मौनभृद्विविधेषूच्चैः तपोदेशेषु चातपत् ।
महोग्रतपसा दीप्तो ग्रीष्मार्क इव स व्यभात् ॥५२॥

उसी समय हर्षित लौकान्तिक देवों ने आकर प्रभु के वैराग्य की प्रिय शब्दों से प्रशंसा की । सौधर्मेन्द्र भी, प्रभु के वैराग्य को जानकर, देवों के साथ आ गया । देवों ने मनोगति नाम की पालकी को सजाया । प्रभु उस पालकी में विराजमान होकर सहेतुक वन गये । एक हजार राजाओं के साथ, दो उपवास के नियम-पूर्वक सिद्धों को नमस्कार करके प्रभु ने पंचमुष्ठि केश लोंच करके दीक्षा ग्रहण करली । ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशी के दिन वे आहार के लिए सोमवर्म नामक नगर में आये । वहाँ के राजा महेन्द्रदत्त द्वारा प्रभु को आहार दिया गया । उसी समय वहाँ पञ्चाश्चर्य की वृष्टि हुई, दाता को कृतकृत्यता दिखने लगी । आहार के पश्चात् प्रभु पुनः तपोवन आ गये तथा मौन-व्रत धारण कर उग्र तप में लीन हो गये । अत्यन्त उग्र तप से प्रभु के देह-कान्ति में वृद्धि हुई, वे ग्रीष्मकालीन सूर्य के समान दिखने लगे ॥४५-५२॥

फाल्गुने कृष्ण षष्ठ्याञ्च सन्ध्यायां घातिघातवान् ।
• महोग्रतपसा देवः केवलज्ञानमाप सः ॥५३॥

• शुक्लध्यानाग्निना इति पाठभेदः

देवैस्समवसारोपि निर्मितो वासवाज्ञया ।
रराज सूर्यस्तत्रेन्दु विजयी ज्ञानतेजसा ॥५४॥

द्वादशेप्यत्र कोष्ठेषु श्रीमद्गणधरादयः ।
सर्वे बभुर्यथासङ्ख्यं स्थिता देवार्चने रताः ॥५५॥

तत्र स्थितस्स भगवान् सम्पृष्टो मुनिभिस्तदा ।
उच्चार्य दिव्यनिर्घोषं कुर्वन् धर्मोपदेशनम् ॥५६॥

त्रोटयन् संशयतरुं तमो गाढं प्रभेदयन् ।
ज्ञानप्रकाशमतुलं वर्द्धयन् भव्यमानसे ॥५७॥

देवैर्नवनवस्तोत्रैः स्तुतस्सम्पूजितो मुदा ।
धर्मक्षेत्रेषु सर्वेषु विजहार दयानिधिः ॥५८॥

एक मासावशिष्टायुः सम्मेदाख्याऽचलोपरि ।
प्रभासि नाम्नि सत्कूटे नादं संहृत्य तस्थिवान् ॥५९॥

फाल्गुन कृष्ण षष्ठी के दिन संध्या बेला में महान उग्र तप के कारण प्रभु के ज्ञानावरणादि घाति-कर्म नाश को प्राप्त हुए, उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। देवों ने इन्द्राज्ञा से समवशरण की रचना की। जिसप्रकार सूर्य चन्द्र पर विजय करके रहता है, उसी प्रकार प्रभु केवलज्ञान तेज से शोभने लगे। समवशरण के बारह कोष्ठों में यथाक्रम स्थित गणधरादि प्रभु की अर्चना में तत्पर हुए। उनके द्वारा पूछे जाने पर भगवान ने दिव्यध्वनि का उच्चारण करते हुए धर्मोपदेश देना प्रारम्भ किया, जिससे संशयरूपी वृक्ष मूल से उखड़कर गिरने लगे, गाढ़ अज्ञानान्धकार छिन्न-भिन्न करता हुआ अतुल ज्ञानप्रकाश भव्यों के चित्त को आलोकित करने लगा। तब प्रसन्नता से देवों ने नये-नये स्तोत्रों से प्रभु की पूजा की। दयानिधि प्रभु ने सर्व धर्म-क्षेत्रों में आर्य-देशों में विहार किया। एक मास की आयु शेष रहने पर प्रभु

सम्मेदाचल के प्रभास नामक कूट पर दिव्यध्वनि बंद कर स्थित हो गये ॥५३-५६॥

शुक्लध्यानधरस्तत्र फाल्गुने वाऽसिते दले ।
सप्तम्यामनुराधोडुसंयुतायां स ईश्वरः ॥६०॥
प्रतिमायोगमाश्रित्य शुक्लध्यानोग्रवह्निना ।
सर्वकर्मक्षयं कृत्वा सहस्रमुनिभिस्सार्धम् ॥६१॥
अखण्डसौख्यसंयुक्तं कैवल्यपदमाप्तवान् ।
एकोनपञ्चाशत्कोटिकोट्यः पञ्चादमुष्य वै ॥६२॥
कोट्यशीतिचतुः प्रोक्ता द्विसप्ततियुल्लक्षकः ।
सहस्रसप्तकं तद्वद् द्विचत्वारिंशदुत्तरा ॥६३॥
सप्तशत्युग्रतपसा इति (चेति) सङ्ख्या प्रमाणिताः ।
क्षपकश्रेणिमाश्रित्य शुक्लध्यानोग्रवह्निना ॥६४॥
प्रभासकूटान्मुनयो घातिकर्मक्षयाल्लघु ।
सम्प्राप्य केवलज्ञानं तस्मात्सिद्धालयं गताः ॥६५॥
उद्योतकनरेन्द्रेण तत्पश्चाद् भावतो गिरेः ।
सम्मेदस्य कृता यात्रा वक्ष्ये तस्य कथां शुभाम् ॥६६॥
जम्बूद्वीपे भारतेस्मिन् क्षेत्रे वत्सोपवर्त्तने ।
कौशाम्बीनगरी रम्या दिव्योपवनशोभिता ॥६७॥
विचित्रवापिका तद्वत् रम्या हि सरसीयुता ।
वारिभिस्सहिता यत्र पौराः पुण्यविशारदाः ॥६८॥
शीलसम्यक्त्वसम्पन्नास्सर्वे सद्गुणशालिनः ।
जैनधर्मोज्ज्वलाः शुद्धा दयाविमलमानसाः ॥६९॥
तस्यामुद्योतको राजा सर्वशास्त्रविशारदः ।
राज्ञी 'पतिव्रता' नाम्नी सुशीला तस्य चाभवत् ॥७०॥

वहाँ पर शुक्लध्यान के धारक प्रभु ने फाल्गुन कृष्ण सप्तमी के दिन अनुराधा नक्षत्र में प्रतिमायोग का आश्रय लेकर, शुक्लध्यानरूपी अग्नि से सर्वकर्म का क्षय करके, एक हजार मुनियों के साथ मोक्ष प्राप्त किया। प्रभु के मोक्ष प्राप्त होने पर इस प्रभास कूट से ४९ कोटाकोटि, ८४ कोटि, ७२ लाख, ७ हजार ७४२ मुनि मोक्ष पधारे। इन सर्व मुनिराजों की मोक्ष प्राप्ति के अनन्तर उद्योतक नामक राजा ने भक्ति से सम्मेदाचल की यात्रा की। उसकी शुभ कथा मैं कहता हूँ। इस जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र के वत्स नामक देश में कौशाम्बी नामक सुन्दर नगरी थी, जो नाना वापिकाओं, सरोवरों व उद्यानों से विभूषित थी। यहाँ के नागरिक पुण्यकार्यों में तत्पर, शील व सम्यक्त्व से सम्पन्न तथा सद्गुणों से युक्त थे। वे जैनधर्माचरणों से उज्ज्वल व शुद्ध थे तथा उनके मन दया से निर्मल हो गये थे। इस नगर का राजा उद्योतक सर्वशास्त्रों में निपुण था। उसकी पतिव्रता रानी का नाम सुशीला था ॥६०-७०॥

केनापि कर्मणा तेन तस्य पूर्वार्जितेन वै।
कुष्ठोत्पत्तिरभूद्देहे सन्तप्तस्तेन सोऽभवत् ॥७१॥
सुदुःखितेन मनसा नाना सौख्यरसान्वितम्।
राज्यं विहाय राजाऽसौ वनवासं चकार सः ॥७२॥
सापि पतिव्रता देवी गत्वा तदनु काननम्।
पतिं शुश्रूषणं भक्त्या चकार हृदि दुःखिता ॥७३॥
एकदारिञ्जये-मित्रञ्जये द्वौ चारणौ मुनी।
आयान्तौ वीक्ष्य राजासौ सप्रियश्चाभ्यधावत् ॥७४॥
स्वीयां व्यवस्थां भूपालः कथयस्वास्मदग्रतः।
तच्छ्रुत्वा तं मुनिं प्राह भूपो बाष्पाम्बुलोचनः ॥७५॥

त्रिः परिक्रम्य भक्त्या तं प्रणनाम शुभाशितः ।
तं दृष्ट्वा तौ सकदस्तौ पप्रच्छतुरिमं तदा ॥७६॥

श्रूयतां मुनिशार्दूल ! मया किं पूर्वजन्मनि ।
कृतं कलुषमत्युग्रं येनाहं कुष्ठरोग भाक् ॥७७॥

तच्छ्रुत्वा तं मुनि प्राह शृणु पूर्वं शुभं (भवं) नृप ।
अस्मिन्नेव पुरे पूर्वं सोमदत्ताभिधो द्विजः ॥७८॥

अभूद्वै पण्डितो दीर्घविद्यागर्वितमानसः ।
मुनिं कञ्चदपि प्रेक्ष्य नमस्कारं स न व्यधात् ॥७९॥

ग्रीष्मर्तावेकदाहारनिमित्तं तपसि स्थितः ।
कश्चिन्मुनिस्समायातो भव्यो भव्यजनार्चितः ॥८०॥

श्रेष्ठी तत्र प्रभाचन्द्रः तस्मै भोजनमर्पयत् ।
नमस्कारार्चना पूर्वं मुनिं भक्तिपरायणा ॥८१॥

सोमदत्तेन विप्रेण तेन सार्धं कुबुद्धिना ।
श्रेष्ठिनः प्रियता तस्य परस्परमभूत्तदा ॥८२॥

श्रुत्वेति विद्यागर्विष्टः प्रहस्येति तमब्रवीत् ।
श्रेष्ठिन्योम्र ददासेभ्यो मुनिभ्यो भोजनं भुवि ॥८३॥

श्रेष्ठिना सोऽथ सम्पृष्टो मुनीनामशनार्पणात् ।
किं फलं मित्र! तद्ब्रूहि विचार्यं हृदि तत्त्वतः ॥८४॥

कुष्ठव्याधिं स लभते निशम्येति कुभारतीम् ।
श्रेष्ठी धैर्यं विमुच्याथ (च) विमना सम्बभूव सः ॥८५॥

अभिनन्द्य मुनिं नत्वा स विप्रो दुर्गति गतः ।
प्रथमा तत्र तद्दुःखमन्वभूदार्तमानसः ॥८६॥

अन्ते निजाशुभं कर्म श्रुत्वाऽऽत्मानं निनिन्द सः ।
पश्चात्तापं मुहुः कृत्वा दुर्गतौ मृत्युमाप्तवान् ॥८७॥

पश्चात्तापजपुण्येन भूप उद्योतकाभिधः ।। भूपोचो ।
सत्त्वमेवात्र सञ्जातो विद्धये तं निश्चयान्नृपः ।।८८।।
मुनिनामाभृतो कुष्ठ-प्रोक्तं त्वं कुष्ठरोगभाक् ।
चिन्तां त्यज कृतं कर्माऽवश्यं भोक्तव्यमेव भो ! ।।८९।।
कृत्वात्मानं स धिक्कृत्वा मुनेर्वाक्यं सुनिश्चितम् ।
कृताञ्जलिः पुनर्भूप ह्यु्वाच परमं मुनिः ।।९०।।
मुनिवर्याधुना मे तमुपायं दर्शय सत्वरम् । तमेयात्रां ।
केनाहं कुष्ठतो नाथ ! मुक्तस्स्यां दुःखसागरात् ।।९१।।
मुनिनोक्तं तदा भूप ! भूत्वा तं (त्वं) मेचकाम्बरः ।
सम्मेदभूमिभृद्यात्रां कुरु रोगापनुत्तये ।।९२।।

पूर्व जन्म के किसी भी अशुभ कर्मों के उदय से राजा को कुष्ठ रोग उत्पन्न हुआ, जिससे वह संतप्त था । दुखी मन से राजा सुखों से युक्त राज्य को त्यागकर वन में वास करने लगा। उसकी पतिव्रता रानी भी उसके साथ गई तथा दुखी मन से पति की सेवा-सुश्रूषा करने लगी। एक समय अरिंजय व मित्रंजय नाम के दो चारणऋद्धिधारी मुनि उस वन में पधारे। उन्हें वहाँ आया देखकर राजा अपनी पत्नी के साथ उनकी ओर दौड़ा । मुनिराज कहने लगे—राजन् ! तुम अपनी अवस्था को कहो। मुनि के वचन सुनकर, सजल नेत्रों से युक्त राजा भक्ति से तीन प्रदक्षिणा देकर, नमस्कार करके कहने लगा—मुनिश्रेष्ठ ! पूर्वजन्म में मुझसे कौन-सा अत्युग्र पाप हो गया, जिससे मैं कुष्ठ रोग से पीड़ित हुआ हूँ। मुनिराज कहने लगे—राजन् ! सुनो, तुम पूर्वजन्म में इसी नगरी में सोमदत्त नामक ब्राह्मण पण्डित थे । तुम्हारा मन बहुत दिनों से विद्या के घमण्ड से भरा हुआ था । तुम किसी भी साधु को देखकर नमस्कार

नहीं करते थे। एक बार, ग्रीष्मऋतु में तप में स्थिर तथा भव्यों से पूजित कोई साधु आहार के निमित्त यहाँ आये हुए थे। प्रभाचन्द नामक श्रेष्ठि ने भक्ति में तत्पर होकर नमस्कार व पूजन करके उन मुनि को आहार दिया। इसी नगर में रहने के कारण उस कुबुद्धि सोमदत्त की श्रेष्ठि प्रभाचन्द से मित्रता थी। श्रेष्ठि द्वारा मुनि को आहार दिये जाने के समाचार को सुनकर वह विद्या-गर्वित ब्राह्मण श्रेष्ठि पर हँसने लगा और बोला—श्रेष्ठिन् क्या तुमने मुनि को आहार दिया ? श्रेष्ठि ने हाँ कहकर उससे मुनि को आहार देने का फल जानना चाहा। तब वह अहंकारी ब्राह्मण कहने लगा—जो कोई मुनियों को आहार देता है, उसे कुष्ठ रोग हो जाता है। दुर्बुद्धि ब्राह्मण के वचनों को सुनकर श्रेष्ठि मन में धैर्य-रहित हो गया, विमनस्क होकर पश्चात्ताप करने लगा कि 'मैंने आहार क्यों दिया'। वह ब्राह्मण आर्तध्यान में मरा और दुर्गति को प्राप्त हुआ। अंत में उसने पश्चात्ताप किया, जिसके पुण्य से तुम उद्योतक राजा हुए हो। तुमने ब्राह्मण-पर्याय में श्रेष्ठि को उल्टा समझाया था; उसके कारण ही तुम्हें यह कुष्ठ रोग हुआ है। हे राजन् ! तुम चिन्ता छोड़ो, किये हुए कर्मों का फल अवश्य ही मिलता है, उन्हें शान्तमन से भोगना ही चाहिए। पुनः कभी ऐसे निन्दारूप वचन मत बोलना। इस प्रकार मुनिराज के वचनों को सुनिश्चित करके उसने स्वयं की निन्दा की, स्वयं को धिक्कारा। पुनः राजा ने हाथ जोड़कर परम मुनि से इस प्रकार निवेदन किया कि—हे मुनिराज ! अब मुझे शीघ्र ही उस उपाय को बताओ, जिससे मैं इस कुष्ठ रोग के दुख-समुद्र से मुक्त होऊँ। मुनिराज ने कहा—राजन् ! तुम इस रोग से मुक्त होने के लिए पंचरंगी वस्त्र धारण कर सम्मेदगिरि की यात्रा करो ॥७१-६२॥

तच्छ्रुत्वा हर्षपूर्णोऽसौ सङ्घेन सहितो गतः ।
यथा शिखरिणो यात्रां तत्र गत्वा सुभावकः ।।९३।।

गिरेः प्रभासकूटं तमभिवन्द्य जिनेश्वरम् ।
अष्टधा पूजया पूज्यं प्रपूज्य गदशान्तये ।।९४।।

तत्क्षणात्कुष्ठरोगस्स न भूत इव चाभवत् ।
बुध्वा प्रभासमाहात्म्यं विरक्तोऽभूत्स राज्यतः ।।९५।।

द्वात्रिंशल्लक्षमनुजैः सह तत्रैव भूपतिः ।
राज्यं सुप्रभपुत्राय दत्वा दीक्षां समग्रहीत् ।।९६।।

मुनिमार्गानुसारी स विरक्तो विश्वमार्गतः ।
तपः प्रभावतः कृत्वा क्षयं वै घातिकर्मणाम् ।।९७।।

केवलज्ञानसम्पन्नस्तीर्त्वा घोरभवाम्बुधिम् ।
मोहशत्रुं विनिर्जित्य प्राप्तस्सिद्धिमयं मुनिः ।।९८।।

तेन (पश्चात्) षोडशलक्षोक्त सार्धं मुनिवरा बुधाः ।
मुक्ति प्रभासकूटाच्च केवलावगमाद्गताः ।।९९।।

फलं प्रभासकूटस्य वन्दनादतुलं स्मृतम् ।
सर्वकूटनमस्कर्तुः फलं वक्तुं क ईश्वरः ।
(कस्समर्थः) ।।१००।।

द्वात्रिंशत्कोटिसङ्ख्यातप्रोषधव्रतजं फलम् ।
नरः प्राप्नोत्यनायासात् सम्मेदाचलवन्दनात् ।।१०१।।

मुनिराज के उक्त वचनों को सुनकर राजा ने प्रसन्नता से उत्तम परिणाम-युक्त होकर, सम्मेद-यात्रा के लिए ससंघ प्रस्थान किया। वहाँ उसने प्रभास कूट से मुक्त होनेवाले जिनेश्वरों की वंदना की तथा रोग-शान्ति के लिए अष्टद्रव्यों से पूजा की। उसी समय कुष्ठ रोग दूर होकर राजा का शरीर पूर्ववत् हो गया।

प्रभास कूट के इसप्रकार के माहात्म्य को जानकर वह राज्य से विरक्त हो गया। उसने पुत्र सुपद्म को राज्य देकर, स्वयं बाबीस लाख मनुष्यों के साथ दीक्षा ले ली। संसार-मार्ग से विरक्त होकर उसने मुनि-मार्ग का आचरण करते हुए, तप के प्रभाव से घातिकर्मों का नाश किया। केवलज्ञान से सम्पन्न होकर, घोर संसार-समुद्र को पार करके, मोहरूपी शत्रु को जीतकर उसने सिद्ध अवस्था प्राप्त करली। सोलह लाख मुनि इस प्रभासकूट से केवलज्ञान प्राप्त कर मुक्त हुए। इस कूट की वन्दना का फल अतुल है; तब सर्व-कूटों की वंदना का फल कितना होगा—यह कौन वर्णन कर सकता है। इस क्षेत्र की वंदना का फल अनायास बत्तीस कोटि प्रोषधोपवास के फल के समान कहा है ॥६३-१०१॥

यस्मात्कूटाच्छ्रीसुपार्श्वो महेशः
सिद्धिस्थानं प्राप्तवान् योगिरीत्या।
भुक्तिं मुक्तिं वन्दकानां ददातु
प्रेम्णा नित्यं तं प्रभासं नमामि ॥१०२॥

जिस कूट से सुपार्श्व प्रभु ने योगपद्धति से सिद्धि-स्थान प्राप्त किया, उस कूट की वंदना करने वालों को भुक्ति व मुक्ति प्राप्त हो। मैं उस प्रभास कूट को नित्य ही भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ ॥१०२॥

इति दीक्षित देवदत्तकृते सम्मेदशिखरमाहात्म्ये मोहनकूट-वर्णनंनाम सप्तमोऽध्यायस्समाप्तः ॥७॥

इस प्रकार सम्मेदशिखर-माहात्म्य ग्रन्थ में प्रभास कूट का वर्णन करने वाला सातवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अथ अष्टमोऽध्यायः

अशेष भव्य भृङ्गालि निषेवितमनारतम् ।
चन्द्रप्रभपदाम्भोजं श्रेयसे नोस्तु सर्वदा ॥१॥

श्रीचन्द्रप्रभदेवस्य वक्ष्ये पूर्वभवान् बुधाः ।
एषां श्रवणमात्रेण पापहानिश्शु (च्छु) भोदयः ॥२॥

श्रीवर्मा पूर्वमभवत् श्रीधराख्यस्ततस्मृतः ।
ततश्चाजितसेनोयं महाराजोऽभवद् भुवि ॥३॥

ततो दीक्षां गृहीत्वासौ नपः कृत्वा सुदुष्करम् ।
त्यक्त्वाऽसून् तत्र सन्यासान् स्वर्गे षोडशमे गतः ॥४॥

द्वाविंशतिसमुद्रायुः स्वर्गसौख्यं समन्वभूत् ।
देवस्त्रीनेत्रकुमुदप्रोद्बोधरजनीकरः ॥५॥

सम्पूर्ण भव्यराशि रूपी भ्रमरों से नित्य ही सेवित चरण-कमल हैं जिनके, ऐसे श्री चन्द्रप्रभ तीर्थंकर को मेरा नित्य ही नमस्कार हो। अब, हे विद्वज्जनो ! मैं चन्द्रप्रभ जिनदेव के पूर्व भवों को कहता हूँ, जिनके श्रवण मात्र से पापों का नाश तथा पुण्य का उदय होता है। श्री चन्द्रप्रभ जिनराज पहिले भव में श्रीवर्म राजा थे। तप के प्रभाव से, मरणोपरान्त स्वर्ग में गये, वहाँ श्रीधर नामक देव हुए। देवायु समाप्त होने पर इसी भूमि पर अजितसेन नामक महाराज हुए। वहाँ उन्होंने दीक्षा लेकर व घोर तपश्चरण करके अंत में समाधिमरण-पूर्वक देह त्याग किया तथा सोलहवें स्वर्ग में २२ सागरोपम वर्ष की आयु लेकर देव हुए और सुख का अनुभव करने लगे। उनका रूप देवाङ्गनाओं के नेत्र-कमलों को प्रफुल्लित करने के लिए चन्द्र समान था ॥१-५॥

तथैव धातकीषण्डे (खण्डे) विदेहे पूर्व उत्तमे (चोत्तमे)।
सीतादक्षिणभागेऽस्ति विषयो मङ्गलावती ॥६॥
रत्नसञ्चयनाम्नात्र प्रसिद्धं तत्र तत्पुरम् ।
तत्र राजा महानासीत् नाम्नासौ कनकप्रभः ॥७॥
तस्य राज्ञी महापुण्या नाम्ना कनकवल्लभा ।
तस्य गर्भे स म्रा-(चा) गत्याऽच्युतस्वर्गात्सुरोत्तमः ॥८॥
पुत्रोऽभवत्पद्मनाभः प्रसिद्धो निजसद्गुणैः ।
सुविद्या स्वल्पकालेन पपाठ सुकृतोदयात् ॥६॥
राज्यं तस्मै सतारुण्ये दत्वा श्री कनकप्रभः ।
स्वयं विरक्तहृद्भूत्वा मनोहरवनं गतः ॥१०॥
तत्र श्रीधरनामानं मुनिं नत्वा प्रसन्नधीः ।
तत्सकाशात्सुजग्राह जैनीं दीक्षां तपोवने ॥११॥
तदा स पद्मनाभोऽपि यथोक्तानि जिनागमे ।
श्रावकाणां व्रतान्युच्चैः तथा पालयदीश्वरः ॥१२॥
निष्पापः पूर्वपुण्यैस्स राज्यं निष्कण्टकं प्रभुः ।
सम्प्राप्य सर्वकार्याणि न्यायतोऽनुदिनं व्यधात् ॥१३॥
राजार्हान् निखिलान् भोगाननुभूय परार्धकृत् ।
स्वबाहुवीर्यतश्चक्रे निर्भया निखिलाः प्रजाः ॥१४॥

उसी प्रकार धातकीखण्ड के उत्तम पूर्व-विदेह क्षेत्र में सीता नदी के दक्षिण भाग में मंगलावती नामक देश में रत्नसंचय नामक प्रसिद्ध नगर है। वहाँ पूर्व में कनकप्रभ नामक एक महान राजा राज्य करता था। उसकी रानी कनकवल्लभा महापुण्यवती थी। उसके गर्भ से अच्युत स्वर्ग से चय कर महर्धिक उत्तमदेव पैदा हुआ। नव मासोपरान्त प्रसूति होने पर पुत्र का नाम पद्मनाभ रखा गया। उसने अपने पराक्रम व गुणों से बहुत

प्रसिद्धि प्राप्त की। अल्पकाल में ही, पुण्योदय से उसने अनेक विद्याओं को पढ़ लिया। पद्मनाभ के तरुण होने पर राजा कनकप्रभ ने राज्य-भार उसे देकर, स्वतः विरक्ति ले ली। उसने मनोहर नामक वन में जाकर प्रसन्नचित्त से श्रीधर नामक मुनिराज से दीक्षा ले ली व तपोवन में तपस्या करने लगा। उसी समय पद्मनाभ राजा भी, जिनागम में कहे अनुसार श्रावकों के व्रत स्वीकार कर पालने लगा। राजा पद्मनाभ निष्पाप थे। पूर्व पुण्योदय से उसको निष्कंटक राज्य की प्राप्ति हुई थी। वह सर्व न्यायादिक कार्य नित्य स्वयं ही देखता था। इस परोपकारी राजा को सर्व राजभोगों की प्राप्ति थी। उन भोगों को अनुभव करते हुए उसने अपने बल से सर्व प्रजा को निर्भय किया ॥६-१४॥

एकस्मिन् समये स्वामि श्रीधरो वनमागतः।
ज्ञापितो वनपालेन तस्मै जैनेक्षणोत्सवे ॥१५॥

तदैव स्वस्समाजेन सहितः तत्क्षणान् नृपः।
गतो मुनिस्समीपं स नत्वा स्तुत्वा मुनीश्वरम् ॥१६॥

तत्सकाशात् जैनधर्मान् श्रुत्वा संसारमीश्वरः।
असारं मनसा ज्ञात्वा विरक्तोऽभूत्स्वमानसे ॥१७॥

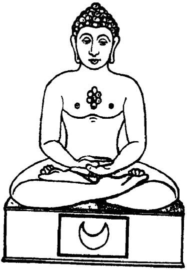
राज्यं सुवर्णनाभाय स्वपुत्राय समर्प्य सः।
बहुभिः भूमिपैस्सार्धं जैनीं दीक्षां समग्रहीत् ॥१८॥

श्रुत्वैकादशसङ्ख्यानि तत्राङ्गानि स भावनाम्।
भावयित्वा षोडशान्तः बभूव किल तीर्थकृत् ॥१९॥

षट्कान्तकस्यषट्पञ्चाशन्मितानि च व्रतानि सः।
जैनान्यादाय विपिने तप उग्रं चकार सः ॥२०॥



ललित कूट



चन्द्रप्रभ जिनराज का, ललित कूट है जेह।
मन वच तन कर पूजहूं, शिखर सम्मेद यजेह ।।

ओ३म् ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्रादि मुनि ९८४ अरब २ करोड़ ८० लाख ४ हजार ५९५ मुनि इस कूट से सिद्ध भए तिनके चरणारबिन्द को मेरा मन वचन काय से बारम्बार नमस्कार हो जलादि अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।।८।।

इस टोंक की भाव सहित वन्दना करने से ९६ लाख उपवास का फल होता है।

अन्त्ये संन्यासविधिना देहत्यागं विधाय सः ।
सर्वार्थसिद्धिगेय्यत्र प्रापायमहमिन्द्रताम् ॥२१॥
त्रिंशत्सागरमितं प्राप्यायुस्तत्पदोचितम् ।
सर्वं विधाय सिद्धानां स्मरणे तत्परोऽभवत् ॥२२॥
अहमिन्द्रसुखं दीर्घं भुञ्जानोऽसौ प्रतिक्षणम् ।
अभूत् षण्मासशिष्टायुः महानिर्मलकान्तिभृत् ॥२३॥

एक बार, श्रीधर मुनिराज के वन में आने की सूचना वनपाल ने राजा पद्मनाभ को दी। राजा को मुनिदर्शन की उत्कण्ठा हुई। वह तत्काल सपरिवार मुनि-दर्शनार्थ गया। उसने मुनिराज को नमस्कार कर उनकी स्तुति की, उनका धर्मोपदेश सुना और उसको वैराग्य हुआ। संसार का असार स्वरूप उसके ध्यान में आया। मन में विरक्तता बढ़ी। उसने अपने पुत्र सुवर्णनाथ को राज्य देकर अनेक राजाओं के साथ जैन-दीक्षा धारण कर ली। मुनिराज से एकादश अंगों का स्वरूप जानकर स्वयं उन अंगों का ज्ञानी हो गया। उसने सोलह भावनाओं का चिन्तवन करके तीर्थंकर कर्म-प्रकृति का बंध किया। मुनि पद्मनाभ ने क्रोधादिक छह अंतरंग शत्रुओं का नाश कर दिया। छप्पन जैन-व्रतों को पालते हुए उन्होंने उत्तम तपश्चरण किया और अंत में सन्यास-विधि से प्राण-त्याग कर सर्वार्थसिद्धि विमान में देवों के बीच अहमिन्द्र हुआ। उस देव की आयु तेतीस सागर की थी। अहमिन्द्र के योग्य कार्य करके वह अहमिन्द्र नियम से सिद्धों का स्मरण करने में तत्पर रहता था। इस प्रकार प्रतिक्षण प्राप्त होने वाले अहमिन्द्र के सुख को दीर्घ-काल पर्यन्त भोगते हुए, जब उसकी तेतीस सागर आयु में से केवल छह मास की आयु शेष रह गई, तब भी उसके शरीर में निर्मल कान्ति थी॥१५-२३॥

तदा जम्बूमतिद्वीपे शुचिक्षेत्रे च (त्रेऽत्र) भारते ।
काशीदेशे चन्द्रपुरी स्वसमृद्ध्यालकेव सा ।।२४।।

तत्रेक्ष्वाकुमहावंशे गोत्रे काश्यप उत्तमे ।
महासेनाभिधो राजा बभूवाद्भुतभाग्यभृत् ।।२५।।

लक्ष्मणानामतस्तस्य देवी प्रोक्ता सुलक्षणा ।
तस्यास्सद्मनि देवेन्द्रनिर्देशादलकाधिपः ।।२६।।

षाण्मासिकीं रत्नवृष्टिं मेघवत्खमुपागतः ।
चकार यक्षैस्सहितस्सार्धकैर्जलदै (घे) रिव ।।२७।।

उस समय इस जम्बूद्वीप के पवित्र भरतक्षेत्र में काशी देश के अन्दर, कुबेर की अलका नगरी के समान धनसमृद्ध चन्द्रपुरी थी। वहाँ इक्ष्वाकु वंश के उत्तम काश्यप गोत्र में अद्भुत भाग्य को धारण करने वाला महासेन नामक राजा राज्य करता था। इस राजा की लक्ष्मणा नाम की सुलक्षणा रानी थी। उसके महलों में देवेन्द्र की आज्ञा से अलका नगरी के स्वामी कुबेर ने आकाश से मेघवत् षण्मासिकी रत्नवृष्टि की, अर्थात् जिस प्रकार मेघ, दूसरे मेघों के साथ जलवृष्टि करते हैं, उसी प्रकार कुबेर ने भी यक्षों को साथ लेकर रत्नवृष्टि की ।।२४-२७।।

एकदा लक्ष्मणादेवी चैत्रपक्षे कृष्णे (सितेतरे) ।
पञ्चम्यां शुभनक्षत्रे ज्येष्ठा नाम्नि प्रभातके ।।२८।।

सुप्ता विचित्रपर्यङ्के स्वप्नान् षोडश चैक्षत ।
स्वप्नान्ते तन्मुखाम्भोजमविशन् मत्तवारणः ।।२९।।

प्रबुद्धैवं विलोक्याद्य (थ) गता सा पत्युरन्तिकम् ।
तस्मात्स्वप्नफलं श्रुत्वा जहर्षातीव मानसे ।।३०।।

धृत्वा गर्भेऽहमिन्द्रं सा रराज विशदद्युतिः ।
राकेव गर्भिता व्योम्नि शारदीव निशोज्ज्वला ॥३१॥

सहस्य (पुष्य) शुक्लैकादश्यां सुषुवे पुत्रमुत्तमम् ।
सादेव्यथ त्रिलोकीशं मतिश्रुत्यवधीश्वरम् ॥३२॥

सौधर्मेन्द्रस्तदागत्य ऐशानेन्द्र समन्वितः ।
तमुपादाय देवेशं जगाम कनकाचलम् ॥३३॥

तत्रासौ कानकैर्कुम्भैः क्षीरोदजलपूरितैः ।
देवमस्नापयद् भक्त्या जयशब्दं समुच्चरन् ॥३४॥

पुनरागत्य तत्रैव यत्राऽभूदीश्वरोदयः ।
तं दिव्यवस्त्राभरणैः सम्पूज्यासौ नृपाङ्गणे ॥३५॥

तदग्रे ताण्डवं कृत्वा साङ्गहारं महाद्भुतम् ।
चन्द्रप्रभेति देवस्य नामोच्चार्य प्रसन्नधीः ॥३६॥

लक्ष्मणाङ्के प्रभु प्रेम्णा संस्थाप्य सह देवतैः ।
मुहुः प्रणम्य देवेशं देवेशोऽगात्सुरालयम् ॥३७॥

चन्द्रं स्वकान्त्या निर्जित्य देवोयं चन्द्रलाञ्छनः ।
जगत्तापहरो भूत्वा दिदीपे राजवेश्मनि ॥३८॥

एक बार, चैत्र कृष्ण पंचमी के दिन ज्येष्ठा नामक शुभ नक्षत्र में प्रातःकाल के पूर्व प्रहर में रानी लक्ष्मणा को, पलंग पर सोते समय सोलह स्वप्न तथा उनके अंत में मुख में एक उन्मत्त हाथी का प्रवेश दिखाई दिया। स्वप्न देखकर रानी जागृत हो गई और उसने अपने पति के पास जाकर उनका फल पूछा। राजा के मुख से स्वप्नों का फल सुनकर वह अत्यन्त आनन्दित हुई। गर्भ में अहमिन्द्र के जीव को धारण करने वाली रानी निर्मल कान्ति से सहित होकर शरत्काल के निर्मल आकाश

में पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान शोभायमान होने लगी। कुछ समय बाद, पौष शुक्ल एकादशी के दिन रानी ने त्रिलोकीनाथ मति-श्रुत-अवधि ज्ञानों के धारक जिन-बालक को जन्म दिया। उसी समय सौधर्मेन्द्र, ऐशानेन्द्र के साथ आया और जिन-बालक को लेकर वह मेरुपर्वत पर गया, जहाँ प्रभु को क्षीरसागर के जल से भरे १००८ कलशों से अभिषिक्त किया गया। तत्पश्चात् जय-जय का उच्चारण करते हुए वे सब इन्द्रादिक देव जन्म-नगरी को वापस आये व प्रभु को वस्त्राभूषणों से सजाकर राजाङ्गण में प्रभु के समक्ष अभिनय-पूर्वक, अतिशय आनन्द से, आश्चर्यचकित करने वाला ताण्डव-नृत्य किया और प्रभु का नाम चन्द्रप्रभ रखा। प्रसन्न-चित्त से रानी लक्ष्मणा की गोद में प्रभु को रखकर वह इन्द्र प्रभु को पुनः-पुनः नमस्कार करते हुए, अन्य देवों के साथ स्वर्ग चला गया। चन्द्र लाञ्छन के धारक चन्द्रप्रभ जिनेश्वर अपनी कान्ति से चन्द्र को भी जीतते थे। जगत् का ताप हरण करने वाले प्रभु राजमहलों में अतिशय शोभने लगे ॥२८-३८॥

नवोक्तशतकोट्युक्तसागरेषु सुपार्श्वतः।
गतेषु जीवि तन्मध्ये देवश्चन्द्रप्रभोऽभवत् ॥३९॥
दशलक्षोक्तपूर्वाणामायुस्तस्य च कीर्तितम्।
सार्धशतधनूत्सेधो कायस्तस्य उदीरितः ॥४०॥
सार्द्धद्विपूर्वो देवस्य व्यतीतो बालकौतुके।
मनोहर्त्ता च सर्वेषां रूप-लावण्यसम्पदा ॥४१॥
कुमारकालगमने सञ्जाते यौवनागमे।
अभिषेकविधानेन राज्यं सम्प्राप पैतृकम् ॥४२॥

सुपार्श्वनाथ के मोक्ष जाने के उपरान्त नौ सौ कोटि वर्ष काल व्यतीत होने पर चन्द्रप्रभ तीर्थंकर हुए। प्रभु की आयु

दश लक्ष पूर्व की थी। उनका शरीर डेढ़ सौ धनुष ऊँचा था। अढ़ाई सौ लाख पूर्व काल प्रभु ने बाल्यजीवन की बालक्रीडाओं में बिताया। प्रभु ने अपनी रूप-लावण्य सम्पदा से सबके मन का हरण कर लिया। कुमारकाल समाप्त होने पर प्रभु को अभिषेक-विधानपूर्वक राज्य की प्राप्ति हुई ॥३९-४२॥

भूपासन समासीनो भगवान् धर्मवारिधिः ।
न्यायतोऽखिलकार्याणि चकार सह मन्त्रिभिः ॥४३॥

शक्रादप्यधिकं सौख्यं प्रतिक्षणमसौ प्रभुः ।
अन्वभूद्विविधं पुण्यैः सर्व (पूर्व) जन्मनि सञ्चितैः ॥४४॥

कदाचित्सौधमारुह्य सुखासीनः प्रजापतिः ।
खादुल्कापातमालोक्य विरक्तोऽभूत् स तत्क्षणात् ॥४५॥

ब्रह्मर्षिभिस्तदैवेत्य वन्दितस्संस्तुतः प्रभुः ।
राज्यं श्रीवरचन्द्राय सुपुत्राय समार्पयत् ॥४६॥

देवोपनीतां शिबिकामारुह्य सुरसुन्दरीम् ।
देवैरूढां वनं गत्वा विधिवद्दीक्षितोऽभवत् ॥४७॥

एकादश्यां कृष्णपौषस्यानुराधोडुनि ध्रुवम् ।
तत्र एकोपवासेन सहस्रक्षितिपैस्सह ॥४८॥

दीक्षां गृहीत्वा सोऽन्यस्मिन् दिवसे नलिनं पुरम् ।
चतुर्थबोधसम्पन्नो भिक्षार्थं पर्यटन् प्रभुः ॥४९॥

सोमदत्तो नृपस्तत्र भक्त्या सम्पूज्य तं प्रभुम् ।
अदादाहारममलं पञ्चाश्चर्याणि चैक्षता (त) ॥५०॥

पुनर्मौनं समादाय तपोवनं गतो विभुः ।
महाव्रतानि पञ्चासौ पालयामास धर्मवित् ॥५१॥

संधृत्य पञ्चसमितिं गुप्तित्रितयमीश्वरः ।
त्रयोदशविधं भूयः चारित्रं समुपागमत् ॥५२॥

ततः स्वचित्ते सन्धार्य शुक्लध्यानं चतुर्विधम् (द्वितीयकं) ।
कृष्णफाल्गुनसप्तम्यां पञ्चमं ज्ञानमाप सः ॥५३॥

ततः शक्राज्ञया देवनिर्मिते परमाद्भुते ।
गते समवसारोऽसौ व्यराजत रविर्यथा ॥५४॥

राज्य-सिंहासन पर बैठकर भगवान ने सद्धर्मपूर्वक, मंत्रियों के साथ विचार करके, न्याय का अनुसरण करते हुए सर्व कार्य किया। प्रभु ने अनेक जन्मों में संचित किये हुए पुण्य से, इन्द्रों से भी अधिक सांसारिक भोगों को भोगा। एक बार प्रजापति महल के ऊपर (छत पर) बैठे हुए थे, तभी उन्होंने आकाश से टूटते तारों को देखा और उन्हें वैराग्य हो गया। ब्रह्मर्षि अर्थात् लौकान्तिक देवों ने वहाँ आकर प्रभु के वैराग्य की अनुमोदना करते हुए उनकी स्तुति की। तब प्रभु वरचन्द्र नामक पुत्र को राज्य देकर, देवों द्वारा निर्मित पालकी—'सुर-सुन्दरी' में बैठे। देवगण उस पालकी को आकाशमार्ग से वन ले गये। वन में पहुँच कर प्रभु ने यथाविधि दीक्षा ले ली। पौष कृष्ण एकादशी के दिन, अनुराधा नक्षत्र में, एक उपवास की प्रतिज्ञा करके एक हजार राजाओं के साथ प्रभु ने दीक्षा ली व मनः-पर्ययज्ञानी हो गये। दूसरे दिन आहार के लिए नलिनपुर में गये। वहाँ के राजा सोमदत्त ने भक्तिपूर्वक प्रभु की स्तुति करके निर्मल आहार दिया। उसके कारण पंचाश्चर्य हुए। प्रभु मौनपूर्वक तपोवन की ओर चले गये। धर्मज्ञ प्रभु ने पंचमहाव्रतों, तीन गुप्तियों व पाँच समितियों का—इस प्रकार तेरह प्रकार का चरित्र-पालन किया। उसी प्रकार सामायिक चरित्र धारण

किया। तत्पश्चात् प्रभु ने क्रम से चार प्रकार के शुक्ल-ध्यान को धारण किया। फाल्गुन कृष्ण सप्तमी के दिन उन्हें पंचमज्ञान—केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। इन्द्र की आज्ञा से देवों ने समवशरण की रचना की, व उसमें सूर्य समान तेजस्वी प्रभु शोभायमान होने लगे ॥४३-५४॥

यथोक्त वत्तसेनाख्यगणेन्द्राद्यैस्तदाखिलैः।
पूजितो मुनिः सम्पृष्टो स दिव्यध्वनिमाकरोत् ॥५५॥

घटान्तलर्लिते कूटे सहस्रमुनिभिस्सह।
शुक्लाष्टम्यां स भाद्रस्य निर्वाणपदमाप्तवान् ॥५६॥

चतुःपराकोटयर्बुदा द्विसप्तति च कोटयः।
अशीतिलक्षाश्चतुरशीतिसहस्रकाणि च ॥५७॥

पञ्चपञ्चाशत्पराणि तथा पञ्चशतानि च।
एतत्सङ्ख्योदीरिताश्च चन्द्रप्रभविभूरनु ॥५८॥

घटान्तलर्लितात्कूटात् शुक्लध्यानं समाश्रिताः।
केवलावगमाच्छुद्धा मुनयस्तत्पदं गताः ॥५९॥

पश्चाल्ललितवसेन गिरियात्रा कृता शुभा।
तत्कथासङ्ग्रहं वक्ष्ये श्रृणुध्वं साधवो जनाः ॥६०॥

प्रसिद्धे पुष्करद्वीपे चतुर्थे मेरुमन्दरे।
तत्र पूर्वविदेहे च सीतापश्चिमदिक्तटे ॥६१॥

विषये पुष्कलावत्यां पुण्डरीकाख्य सत्पुरे।
महासेनोऽभवद्राजा महाबलपराक्रमः ॥६२॥

राज्ञी तस्य महासेना शील-सौन्दर्यशालिनी।
पत्युः प्राणप्रिया देवी विपत्युज्झितसाधनात् ॥६३॥

इसके बाद दत्तसेनादिक गणधरों से पूजित प्रभु से राजाओं ने प्रश्न किया। उसी समय दिव्यध्वनि प्रगट हुई। प्रभु ने अनेक धर्म-देशों में विहार किया व धर्मोपदेश दिया। एक माह की आयु शेष रहने पर प्रभु दिव्य-ध्वनि को संहृत करके सम्मेदाचल पर आये, जहाँ के ललितघट कूट से एक हजार मुनियों के साथ भाद्रपद शुक्ल अष्टमी (उत्तर पुराण के अनुसार फाल्गुन शुक्ल सप्तमी) के दिन प्रभु ने निर्वाण प्राप्त किया। चन्द्रप्रभ जिनेश्वर के मोक्ष जाने के बाद ललितघट कूट से ही योग-ध्यान का आश्रय लेकर, केवलज्ञानी होते हुए चौराशी कोटि अब्ज, बहत्तर कोटि, अस्सी लक्ष, चौराशी हजार पाँच सौ पञ्चानवे मुनि मोक्ष पधारे। उसके बाद ललितदत्त ने इस सम्मेदशिखर की शुभ यात्रा की, उसका वृत्तान्त, हे सज्जनो! मैं कहता हूँ, सो सुनो।

प्रसिद्ध पुष्कर द्वीप के चौथे मेरुपर्वत की ओर पूर्वविदेह में सीता नदी के पश्चिम दिशा के तट पर पुष्कलावती देश में पुण्डरीक नामक नगर में महाबली व प्रतापवान् महासेन राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम महासेना था। वह रानी शीलवती व सौन्दर्यशालिनी थी तथा राजा को प्राणों से भी प्रिय लगने वाली थी। वह पति के अभिप्रायानुसार चलने वाली थी ॥५५-६३॥

एकदा स वनं यातो महासेनः प्रतापवान्।
मुनिं ददर्श तत्रासौ तापसं निर्मलप्रभम् ॥६४॥

तं पृष्ट्वा तं प्रणम्याथ (थ) विरक्तः स्वीयराज्यतः।
दीक्षां जग्राह धर्मात्मा तपश्चक्रे स निर्मलम् ॥६५॥

देहान्ते पञ्चमे स्वर्गे देवोभूत्स तपोबलात् ।
बुभोज देवसौख्यं स देवस्त्रीनेत्रमोदकः ॥६६॥
तदा योधाभिधे देशे पुरे-सुरपुरे नृपः ।
आसीदजितराजाख्यो महादेवी च तत्प्रिया ॥६७॥
स्वर्गाच्युतस्स तद्गर्भे समागत्याऽभवत्सुतः ।
नाम्ना ललितदत्तस्स बभूव शुभलक्षणः ॥६८॥
राज्यभारं वहन्योग्यं पुत्रं ज्ञात्वा विचक्षणम् ।
तदा तस्मै स्वराज्यं सोऽजितराजा समर्प्य तत् ॥६९॥
संसार-देह-भोगात्स विरक्तोऽभूद्वनं गतः ।
जातरूपोऽभवद् ध्यानबलाद् कैवल्यमाप सः ॥७०॥
एकस्मिन् समये सोपि राजा ललितदत्तकः ।
सम्प्राप्तश्चारणस्साधून् परिप्राप्येदमब्रवीत् ॥७१॥
चारणर्द्धि प्रलाभोऽत्र कथं स्यान्मुनिसत्तम ।
मुनिनोक्तं तदा भूप शृणु तद्वृत्तमुत्तमम् ॥७२॥
सम्मेदभूभृतो यात्रामङ्गीकुरु सुनिश्चयात् ।
अन्यवार्ता परित्यज्य यदि तां सिद्धिमिच्छसि ॥७३॥
तत्प्रभावाच्चारणर्द्धि भूपते प्राप्नुवे ध्रुवम् ।
इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं प्रमोदं नृपसत्तमः ॥७४॥

एक बार प्रतापी महासेन वन में गया। वहाँ निर्मल कान्ति के धारक तपस्वी को देखकर उसने नमस्कार किया व राज्य से विरक्त होकर उसने दीक्षा ले ली। इस धर्मात्मा ने उत्तम तप किया। आयु के अंत में देह-त्याग कर वह पाँचवें स्वर्ग में देव हुआ। देवाङ्गनाओं के नेत्रों को आनन्द देने वाला वह देव बहुत सुखों को भोगकर, आयु के अंत में स्वर्ग से च्युत होकर, योधदेश

के सुरपुर नगर में अजित नामक राजा की पत्नी महादेवी के पेट से ललितदत्त नामक पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ। वह शुभ-लक्षणों वाला था। कालान्तर में राजा अजित ने राज्य उसे दे दिया। एक बार ललितदत्त एक चारणमुनि के पास गया और उन्हें नमस्कार कर कहने लगा—प्रभो! यह चारणऋद्धि कैसे प्राप्त की जा सकती है? सो कहो। मुनि कहने लगे—उसे प्राप्त करने का उपाय तुम निश्चय से अन्य बातों को छोड़कर सम्मेदशिखर की यात्रा को ही समझो—यदि तुम उस सिद्धि को प्राप्त करना चाहते हो तो। राजन्! उसके प्रभाव से चारण ऋद्धि निश्चित ही प्राप्त कर सकते हो। मुनि के इन वचनों को सुनकर राजा आनन्दित हुआ ।।६४-७४।।

अथ सङ्घाधिपो भूत्वा एककोटिमितान्वरान् ।
द्विचत्वारिंशदाख्यातलक्षभव्या महीपतिः ।।७५।।

विधायसार्धगां यात्रां चक्रे सम्मेदभूभृतः ।
घटान्तललितं कूटं ववन्दे भक्तिभावतः ।।७६।।

कोटि भव्यैः सह क्षोणिपति वैराग्यसंयुतः ।
तत्रैव दीक्षितो भूत्वा चारणर्द्धिमवाप सः ।।७७।।

पश्चादुग्रतपः कृत्वा केवलज्ञानवान्मुनिः ।
सार्धं पूर्वोक्तभव्यैस्स सिद्धालयमवाप हि ।।७८।।

तत्कूटवन्दनाद्भव्यः गतिद्वयविवर्जितः ।
षोडशप्रोषधानां हि व्रतानां फलमाप्नुयात् ।।७९।।

अवाप्यते फलं चेत्थमेककूटस्य वन्दनात् ।
सर्वप्रणामजं विन्द्यात्फलं श्रीजिन एव हि ।।८०।।

उस राजा ने एक कोटि ब्यालीस लक्ष भव्यों का एक संघ निकाला। वह इस संघ का संघपति हुआ। राजा ने ससंघ सम्मेदशिखर क्षेत्र की वन्दना की। उसने ललितघट कूट की यात्रा भी की। उसने इस कूट को बार-बार नमस्कार करके, कोटि भव्यों के साथ दीक्षा ले ली। परिणामों की निर्मलता के फलस्वरूप उन्हें चारण-ऋद्धि प्राप्त हुई। उसके बाद उसने उग्र तप किया और केवलज्ञान प्राप्त कर लिया और पूर्वोक्त मुनियों के साथ सिद्धालय प्राप्त किया।

ललितघटकूट की वंदना से गतिद्वय से विमुक्त जीव सोलह प्रोषधोपवास के फल को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार एक कूट की ही वंदना का फल कहा है। तब फिर सर्व कूटों की वंदना का फल तो केवली ही जान सकते हैं ॥७५-८०॥

श्रीचन्द्रप्रभ उदितात्मतत्त्वबोधात्संसिद्धि
किल परमां गतेऽहि यस्मात्।
यो भव्यैः सततसमर्जितप्रयातैः
तत्कूटं ललितवराभिधानमीडे ॥८१॥
यत्सत्कथां ललितकूटवरस्य भक्त्या
श्रद्धान्वितोऽत्र शृणुयादखिलैः हि भव्याः।
चित्तेप्सितं क्षितितले स लभेत सद्यः
पश्चाद्विरक्तहृदयो भवतो विमुञ्चेत् ॥८२॥

श्री चन्द्रप्रभ भगवान के साथ से उत्पन्न हुए आत्मतत्त्व का ज्ञान ही फल है, किंवा मुक्ति-प्राप्ति ही फल है—ऐसे परम्परा से चले आ रहे फल को भव्य जीवों को प्राप्त करना चाहिए। इसमें इस ललितघटकूट की वंदना करता हूँ। जो भी भव्य इस

ललितघटकूट की कथा को श्रद्धायुक्त होकर सुनता है, उसे मनोवांछित फल तत्काल ही इसी भूतल पर प्राप्त होता है; पश्चात् विरक्त होकर संसार से मुक्त हो जाता है ॥८१-८२॥

इति दीक्षितदेवदत्तकृते सम्मेदगिरिमाहात्म्ये ललितघटकूटवर्णनंनाम अष्टमोऽध्यायः सम्पूर्णः ।

इस प्रकार सम्मेदशिखर-माहात्म्य ग्रन्थ में ललितकूट का वर्णन करनेवाला आठवां अध्याय समाप्त हुआ ।

समय चिंतामणी है, कामधेनु है, वांछित धन है । उससे कुछ भी मांगो, पा जाओगे । समय तपाग्नि में तपकर सुवर्ण बन जाता है, अवसर की सीपी में गर्भ धारण कर मुक्ताफल हो जाता है, दुरधिगम समुद्र को मथकर रत्नराशि निकाली जाती है । संसार में जो कुछ किया गया है, तथा किया जा सकता सकता है, वह समय द्वारा ही सम्भव है ।

अथ नवमोऽध्यायः

(श्री पुष्पदन्त जिनपति चरित्र)

अथ मोक्षश्रियोपेतं सुरासुरनिषेवितम् ।
पुष्पदन्तप्रभुं भक्त्या वन्दे मकरलाञ्छनम् ।।१।।
पुष्करार्धद्वीपवरे प्रदीप्ते पूर्वमन्दरे ।
सीतापश्चिमभागेऽस्ति विषयः पुष्कलावती ।।२।।
पुण्डरीकपुरे तत्र महापद्माभिधो नृपः ।
अखण्डराज्यमकरोत् अरक्षत् पुत्रवत्प्रजाः ।।३।।
महादानानि सर्वाणि याचकेभ्यः समर्पयत् ।
अशेषराज्यसौख्यानि बुभुजे नीतितो नृपः ।।४।।
एकदा धर्मशेषाख्यं मनोहरवने मुनिम् ।
श्रुत्वागतं दर्शनार्थं तस्य भूयोऽचलं मुदा ।।५।।
त्रिःपरिक्रम्य तं तत्र गत्वा नत्वा मुहुर्मुहुः ।
पादौ गृहीत्वा पप्रच्छ यतिधर्मान् सनातनान् ।।६।।
मुनिस्त्रयोदशविधं चारित्रं स्वागमोदितम् ।
श्रावयामास भूपाय प्रवृद्धस्तत्त्रिषस्य सः ।।७।।
आत्मानमेकं सर्वेषु ज्ञात्वा भूतेषु भूपतिः ।
पुद्गलाद् भिन्नममलं विरक्तोऽभूत्स चैहिकात् ।।८।।
राज्यं धनदपुत्राय दत्वा बहुनृपैः सह ।
दीक्षां समगृहीद् गत्वा वनं किल तपोरुचिः ।।९।।
एकादशाङ्गान्यभूत्वा तद्वत्षोडशभावनाः ।
भावयित्वा बबन्धासौ गोत्रं तैर्थकरं परम् ।।१०।।
संन्यासविधिना चान्ते तनुं त्यक्त्वा तपोज्ज्वलः ।
स्वर्गे हि पञ्चदशमे मुनिः प्रापाहमिन्द्रताम् ।।११।।

सिन्धुविंशतिकायुश्च सार्धं त्रिकरदेहभृत् ।
शुक्ललेश्यायुतः श्रीमान् तेजसार्क इवोज्ज्वलः ॥१२॥

सहस्रविंशतिमितवर्षोपरि स मानसम् ।
आदादाहारममलं स्वानन्दोद्भवतोषभृत् ॥१३॥

पक्षेषु विंशतिमिते स्वयं परिगतेषु सः ।
निश्वसत्परमानन्दात् सिद्धध्यानपरायणः ॥१४॥

मोक्षलक्ष्मी से संयुक्त, सुरासुरों द्वारा सेवित तथा मगर के लाञ्छन से युक्त श्री पुष्पदन्त भगवान को मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ। उत्तम पुष्करार्द्ध द्वीप में प्रदीप्त पूर्वमन्दर पर, सीता नदी के पश्चिम भाग में पुष्कलावती नामक देश है। उस देश में पुण्डरीक नामक नगर में महापद्म नामक राजा राज्य करता था। उसका राज्य अखण्ड था। वह पुत्रवत् प्रजा का रक्षण करता था। तथा याचकों को महादान देता था। उसने नीति-पूर्वक सर्व राज्य-सुखों का उपभोग किया। एक बार मनोहर वन में धर्मघोष नामक मुनि आये। इस समाचार को जानकर राजा महापद्म सानन्द मुनि-दर्शन के लिए गया। वहाँ उसने तीन प्रदक्षिणा-पूर्वक मुनि को नमस्कार किया और सनातन-अनादिनिधन यतिधर्म का स्वरूप पूछा। मुनि ने निर्दोष आगमानुसार तेरह प्रकार के चारित्र का उपदेश दिया। उसे सुनकर राजा आनन्दित हुआ। राजा ने सर्व त्रस व स्थावरों में भी आत्मतत्व है—ऐसा जाना व आत्मा पुद्गलादि से भिन्न निर्मल व शुद्ध है—ऐसा जानकर सर्व ऐहिक राज्यादिक से विरक्त हुआ। धनद नाम के पुत्र को राज्य देकर अनेक राजाओं के साथ वन में जाकर दीक्षा ले ली। उसे तप से प्रेम उत्पन्न हुआ तथा उसने ग्यारह अंगों का ज्ञान प्राप्त कर, सोलह

भावनायें भाकर उत्कृष्ट तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया। उज्ज्वल तपोधारी मुनि ने अन्तिम समय में सन्यास-विधि से मरण प्राप्त कर पन्द्रहवें स्वर्ग में देवेन्द्र के रूप में जन्म लिया। उसकी आयु बीस सागरोपम वर्षों की थी तथा शरीर की ऊँचाई साढ़े तीन हाथ की थी। वह शुक्ल-लेश्या का धारक था। उसका तेज सूर्य के समान प्रखर था। वह बीस हजार वर्ष बीतने के बाद मानसाहार करता था, तथा निर्मल आत्मानन्द के स्वाद द्वारा सन्तोष धारण करने वाला था। वह बीस पक्ष बीतने के बाद एक श्वासोच्छ्वास लेता था और आनन्दपूर्वक सिद्धों के ध्यान में तत्पर रहता था ।।१-१४।।

षष्ठनारकपर्यन्तं तस्थानादवधिं दधत् ।
सर्वकार्यसमर्थोसावुत्कृष्टसुखमन्वभूत् ।।१५।।

उत्कृष्टगुणसंयुक्तो व्यतीतायुस्सुखेन सः ।
षण्मासकावशिष्टायुरभवत्तत्पदे स्थितः ।।१६।।

तदा जम्बूमतिद्वीपे क्षेत्रे भारतिके शुभे ।
कच्छदेशे सदा भाति काकन्दी नगरे शुभे ।।१७।।

इक्ष्वाकुवंशे तत्पुर्यां काश्यपे गोत्र उत्तमे ।
सुग्रीवो नाम राजाभूत् धर्मात्मा भाग्यवारिधिः ।।१८।।

जयरामा तस्य देवी रूपसौभाग्यशालिनी ।
पत्युर्मनोहरा नित्यं स्वैरत्यद्भुतसद्गुणैः ।।१९।।

तद्गृहे यक्षपतिना वृष्टिः षाण्मासिकी तथा ।
कृता रत्नमयी नित्यं सौधर्मेन्द्रमुखाज्ञया ।।२०।।

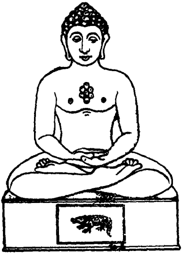
तत्काले चानतात्स्वर्गात् देवागमनवासरे ।
रात्रौ सुवर्णपर्यंङ्के सा देवी संनिवेश हि ।।२१।।

फाल्गुणे कृष्णपक्षे च नवम्यां मूलभे शुभे ।
स्वप्नानुषसिता देवी षोडशैक्षत भाग्यतः ॥२२॥
तदन्ते तन्मुखे मत्तसिन्धुरोऽविशदुज्ज्वलः ।
एवं स्वप्नान्निरीक्ष्यैषा नेत्राब्जयुदघाटयेत् ॥२३॥
उत्थिता विस्मिता देवी प्रमार्ज्य मुखवारिजम् ।
पत्युः समीपे सा स्वप्नानवादीदतिदुर्लभान् ॥२४॥
यथोक्तफलमेतेषां श्रुत्वा पतिमुखात्सती ।
कृतकृत्यमिवात्मानं मन्येषा धर्मवत्सला ॥२५॥
वर्णनीयं कथं भाग्यं तस्य देवेन्द्रसेवितः ।
अहमिन्द्रो गर्भगोऽभूदस्यास्तीर्थकृदीश्वरः ॥२६॥

वह देव अपने स्थान से छठवें नरक तक को अवधिज्ञान से जानता था। वहाँ तक विक्रिया करने का सामर्थ्य भी उसमें था। वह वहाँ के उत्कृष्ट सुख का अनुभव लेता था। इस प्रकार अनुपम सुख में स्थित रहते हुए, सम्यग्दर्शनादि किंवा अणिमादि गुणों से युक्त उस देव की आयु छह माह मात्र अवशिष्ट रह गई। इस जम्बूद्वीप के शुभ भरतक्षेत्र में कच्छ देश में काकन्दी नाम का सुन्दर व शुभ नगर है। वहाँ पर इक्ष्वाकु वंश का काश्यप-गोत्रीय सुग्रीव नामक भाग्य का समुद्र समान, धार्मिक राजा था। उसकी रानी का नाम जयरामा था। वह रूप-लावण्य से युक्त थी व अपने सद्गुणों से पति को मोहित करने वाली थी। सौधर्मेन्द्र की आज्ञा से यक्षपति कुबेर ने उसके घर पर छह महिने तक रत्नवृष्टि की। आनत स्वर्ग से देव के चयकर आने का समय आया। स्वर्णमयी पर्यंक पर शयन करती हुई रानी ने रात्रि के पिछले प्रहर में भाग्योदय-सूचक सोलह स्वप्न तथा उसके अनन्तर एक उन्मत्त हाथी का मुख में



सुप्रभ कूट



पुष्पदंत जिनराज का, सुप्रभ कूट है जेह ।
मन वच तन रन पूजहूं, शिखर सम्मेद यजेह ।।

ओ३म् ह्रीं श्री पुष्पदंत जिनेन्द्रादि मुनि १ कोडा कोड़ी ९९ लाख ७ हजार ७८० मुनि इस कूट से सिद्ध भए तिनके चरणारविन्द को मेरा मन वचन काय से बारम्बार नमस्कार हो जलादि अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।।९।।

इस टोंक की भाव सहित वन्दना करने से एक करोड़ प्रोषध उपवास का फल होता है ।

प्रवेश करना देखा। वह समय फाल्गुन कृष्ण नवमी का शुभ मूल नक्षत्र था। स्वप्न देखने से निद्रा भंग हो जाने पर वह आश्चर्यचकित होकर उठी तथा मुख-प्रक्षालन कर पति के पास गई और पति के समक्ष स्वप्नों का वर्णन कर फल जानने की जिज्ञासा प्रगट की। पति के मुख से स्वप्नों का फल—त्रिलोक-पूज्य भावी जिनेश का गर्भ में आना—जानकर धर्मवत्सला रानी अपने को कृतकृत्य मानने लगी। जिसके गर्भ में इन्द्रादिक द्वारा पूज्य तीर्थंकर आने वाला हो, उसके भाग्य का क्या वर्णन किया जाये ॥१५-२६॥

मार्गे शुक्लप्रतिपदि मूलभे जगदीश्वरम् ।
सा सुतं सुषुवे देवी त्रिबोधपरिभास्वरम् ॥२७॥
तदा सौधर्मकल्पेशः तत्रागत्य सुरैस्समम् ।
देवदेवं स्वयुक्त्योपादाय स्वर्णाद्रिमागतम् ॥२८॥
शिलायां पाण्डुकाख्यायां तत्र संस्थाप्य तं प्रभुम् ।
वार्भिरस्नापयद्देवं कुम्भस्थैः क्षीरवारिधेः ॥२९॥
काकन्द्यां पुनरागत्य कृत्वा तत्र महोत्सवम् ।
पुष्पदन्ताभिधानं स चक्रे मुदा सुरेश्वरः ॥३०॥
मातुरङ्के समर्प्याथ (थ) देवं बालस्वरूपिणम् ।
जगाम त्रिदशैस्सार्धं सहर्षस्सोऽमरावतीम् ॥३१॥
नवकोटि समुद्भोक्ताऽवसरव्यत्यये प्रभोः ।
चन्द्रप्रभात्तदभ्यन्तर्वर्त्यायुस्स बभूव हि ॥३२॥
सत्कुन्दकलिकाभास श्वेतवर्णो महाद्युतिः ।
द्विलक्षमितपूर्वायुः शतकोदण्डदेहभृत् ॥३३॥
अमेयबल भर्तुश्च बालकेलिरतः प्रभुः ।
पञ्चाशद्युक्तसाहस्रपूर्वोक्तायुर्गतं तदा ॥३४॥

यौवनागमने तस्मै जनको राज्यमर्पयत् ।
राज्यं सम्प्राप्य देवेशः स्वविभूत्या समुज्वलत् ।।३५।।
विभूतिमधरीकृत्य शक्रादीनामपि प्रभुः ।
स्ववैभवेनातुलेन प्रजाः शश्वदपालयत् ।।३६।।

मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा के दिन मूल नक्षत्र में उसने जगदीश्वर पुत्र को जन्म दिया। वे तीन ज्ञान से चमक रहे थे। सौधर्मेन्द्र कल्पपति देवों के साथ वहाँ आया। उसने युक्ति से बालक प्रभु को ग्रहण कर, उन्हें मेरु पर ले गया; जहाँ पाण्डुक-शिला पर विराजमान करके प्रभु का क्षीरसागर के जल से भरे १००८ कलशों से अभिषेक किया। उसके बाद काकन्दी नगरी में वापस आकर उसने महोत्सव किया। सौधर्मेन्द्र ने जिन-बालक का नाम पुष्पदन्त रखा तथा उसे माता को देकर सपरिवार देवलोक वापस चला गया। पुष्पदन्त भगवान का जन्म, चन्द्रप्रभ तीर्थंकर के नौ करोड़ सागर वर्ष उपरान्त हुआ। पुष्पदन्त प्रभु की आयु भी ऊपर कही गई नव कोटि सागर वर्ष की समयावधि में ही लेना। प्रभु का वर्ण कुन्दपुष्प के समान श्वेत था, उज्ज्वल था। उनकी आयु दो लाख पूर्व की थी तथा शरीर सौ धनुष प्रमाण ऊँचा था। बाल्यकाल में ही उन प्रभु की शक्ति अचिन्त्य थी। पचास हजार वर्ष पूर्व बीत जाने पर प्रभु की तारुण्यावस्था आने पर, उनके पिता ने उन्हें राज्य-भार दे दिया। राज्य-प्राप्ति हो जाने के बाद प्रभु स्वयं के वैभव से अतिशय प्रभाववान् दिखने लगे। प्रभु का वैभव इन्द्रादिक के वैभव को हीन करने वाला था। इस प्रकार के अपने अतुल वैभव से प्रभु ने प्रजा का पालन किया।।२७-३६।।

एकदा सौधगो देवः दृष्टिसम्पात विक्षु सः ।
उल्कापातं विलोक्याशु वैराग्यं विश्वतोऽगमत् ।।३७।।

तदा लौकान्तिका देवाः प्रभोस्सम्मुखमागताः ।
तुष्टुवुस्तं शुभैर्वाक्यैः तद्दर्शनसुखान्विताः ॥३८॥
देवोपनीतां शिबिकामारुह्य स ततः प्रभुः ।
तपोवनं जगामाशु शृ(शु) ण्वन् देवजयध्वनिम् ॥३९॥
मार्गशुक्लदले तत्र स मूलप्रतिपत्तिथौ ।
सहस्रभूमिपैस्सार्धं स मुदा दीक्षितोऽभवत् ॥४०॥
अन्तर्मुहूर्ते तत्रैव मनःपर्ययमाप्तवान् ।
भिक्षार्थं स द्वितीयेह्नि गतः शैलपुरं ययौ ॥४१॥
पुष्यमित्राभिधो भूपः तत्र सत्कृत्य तं प्रभुम् ।
ददावाहारमस्मै सोऽपश्यदाश्चर्यपञ्चकम् ॥४२॥

एक समय प्रभु राज्यगृह के छत पर बैठकर चारों तरफ दृष्टिक्षेप कर रहे थे। तभी आकाश से ताराओं का पुञ्ज नीचे गिरा, जिसे देखकर प्रभु को सर्व-वस्तुओं के विषय में वैराग्य हो गया। लौकान्तिक प्रभु देव के सन्मुख आये व प्रभु-दर्शन से सुखी होकर शुभ वाक्यों में स्तुति करते हुए उनके वैराग्य की प्रशंसा करके स्वस्थान पर चले गये। तत्पश्चात् देवों द्वारा लाई गई पालकी में बैठकर प्रभु तपोवन को चले गये। मार्ग में देवों की जय-ध्वनि सुनाई दे रही थी। मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा, जो मूल नक्षत्र सहित थी, उसी समय एक हजार राजाओं के साथ प्रभु ने दीक्षा ले ली। उनको अन्तर्मुहूर्त में मनःपर्ययज्ञान हो गया। दूसरे दिन प्रभु आहार के लिए शैलपुर नगर में गये। वहाँ पुष्यमित्र नामक राजा ने उन प्रभु का स्वागत करके, नवविधि से आहार दिया, उस समय पंचाश्चर्य भी दिखाई दिये ॥३७-४२॥

पुनर्वनमुपागत्य चतुर्वर्षं स मौनभृत् ।
तपश्चकार बहुधा महोग्रं महसो ज्ज्वलन् ॥४३॥

घातिकर्म क्षयं कृत्वा तपसोग्रेण कार्तिके ।
शुक्लपक्षे द्वितीयायां सन्ध्यायां बिल्वमूलके ।।४४।।
सम्प्राप्य केवलज्ञानं प्राप्तो देवविनिर्मिते ।
तदा समवसारेऽसौ ज्वलत्कोटिरविः प्रभुः ।।४५।।
यथासङ्ख्यं गणेन्द्राद्यैः स्तुतः सम्पूजितस्तथा ।
तत्पृष्टो दिव्यनिर्घोषाच्चक्रे धर्मोपदेशनम् ।।४६।।

पुनः चार वर्ष पर्यन्त मौन धारण कर प्रभु ने वन में महातप किया। तप के प्रभाव से वे अधिक उज्ज्वल दिखने लगे। उग्र तपश्चरण से घातिकर्मों का क्षय करके कार्तिक शुक्ल द्वितीया के दिन संध्या के समय बिल्वपत्र वृक्ष के नीचे उनको केवलज्ञान प्राप्त हो गया। देवों ने समवशरण की रचना की। समवशरण के मध्य में विराजमान प्रभु की कान्ति कोटि सूर्य से भी अधिक उज्ज्वल थी। यथाक्रम से गणेन्द्रादिकों ने प्रभु की स्तुति व पूजा की, अनन्तर गणधर के पूछने पर प्रभु ने धर्मोपदेश किया ।।४३-४६।।

विहृत्य पुण्यक्षेत्रेषु यथोक्तेषु जिनेश्वरः ।
एकमासावशिष्टायुः सम्मेदाचलमागतः ।।४७।।
सुप्रभं कूटमासाद्य संहृतध्वनिरीश्वरः ।
भाद्रशुक्लत्रयोदश्यां स मुनिर्मुक्तिमाप सः ।।४८।।
सुप्रभाख्यो धन्यकूटः पुष्पदन्तमहेशितुः ।
अनन्तमहिमादीप्तो भाति सम्मेदपर्वते ।।४९।।
पुष्पदन्तादमुक्तं तच्चैकोनशतकोटयः ।
लक्षाणां नवतिः सप्तसहस्राणि चतुश्शतिः ।।५०।।
अशीति गणितारेवं मुनयो दिव्यचक्षुषः ।
तस्मात्सुप्रभकूटाच्च परं नैश्रेयसं गतः ।।५१।।

वन्देत सुप्रभं कूटं यो भक्त्या मानवोत्तमः ।
कोटिप्रोषधनाम्नां स व्रतानां फलमश्नुयात् ॥५२॥

इस आर्यावर्त में अनेक देशों में विहार कर प्रभु ने धर्मोपदेश किया। जब आयुष्य एक माह मात्र शेष रही, तब प्रभु ने सम्मेदशिखर क्षेत्र पर आकर, दिव्यध्वनि बंद कर, मौनपूर्वक भाद्रपद शुक्ल त्र्योदशी (उत्तरपुराण के अनुसार—भाद्रपद शुक्ल अष्टमी) के दिन अनेक मुनियों के साथ सुप्रभासकूट से मुक्ति प्राप्त की। यह कूट धन्य है, अनन्त महिमा से उज्ज्वल हुआ है। श्री पुष्पदन्त प्रभु के इस कूट से मुक्त होने के बाद निन्यानवे कोटि, नब्बे लाख, सात हजार चार सौ अस्सी मुनियों ने केवलज्ञान प्राप्त कर यहाँ से निर्वाण प्राप्त किया है। जो मनुष्य भक्ति से इस सुप्रभास् कूट की वंदना करता है, उसे एक कोटि प्रोषधोपवास का पुण्यलाभ होता है ॥४७-५२॥

ततः सोमप्रभाख्येन राज्ञा यात्रा कृता शुभा ।
अनुयात्तां कथां वक्ष्ये मनोज्ञां धर्मवर्धिनीम् ॥५३॥
जम्बूभरतसुक्षेत्रे आर्यखण्डे महाशुचिः ।
सुमौक्तिकाख्य विषयः तत्र श्रीपुरमुत्तमम् ॥५४॥
हेमप्रभो बभूवास्मिन् पुरे भूपतिरुत्तमः ।
तत्प्रिया विजयाख्याता कान्त्या सौदामिनीव सा ॥५५॥
तत्तनुजो रूपराशिः नाम्ना सोमप्रभोऽभवत् ।
महाभटप्रतापाब्धिः धर्मवान् गुणवांस्तथा ॥५६॥
एकदा वीरसेनोऽन्यो राजा मण्डलिको महान् ।
कस्माच्चित् कारणात् क्रुद्धः प्राप्तः श्रीनगरान्तिकम् ॥५७॥
हेमप्रभनरेन्द्रेण सार्द्धं योद्धुमसौ नृपः ।
महत्या सेनया युक्तः पुरमावृत्य तस्थिवान् ॥५८॥

ततो हेमप्रभोऽप्येनं योद्धुकामं प्रबुध्य सः ।
ससेनः सन्मुखो भूत्वा तेन सार्धं युयोध हि ॥५६॥
परस्परं युध्यमानं बलद्वयमुवीक्ष्य सः ।
पितृपक्षं समाश्रित्य वीरः सोमप्रभस्तदा ॥६०॥
गदामादाय महतीं युद्धायाभिमुखोऽभवत् ।
वीर्येण तेजसा यस्य तुलां कोऽपि न लब्धवान् ॥६१॥
रक्षन्स्व सैनिकांस्तत्र युद्धे मृत्युरिव भ्रमन् ।
गदया सञ्जहाराशु वीरसेनस्य भूपतेः ॥६२॥

उसके बाद सुप्रभास कूट की शुभ यात्रा सोमप्रभ राजा ने की। उसकी कथा, जो कि मनोहर व धर्म-वर्द्धनी है, उसे मैं कहता हूँ। जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में आर्यखण्ड के अन्दर महा-पवित्र सुमौक्तिक नामक देश है। इस देश के श्रीपुर नामक नगर में हेमप्रभ नामक एक उत्तम राजा था। उसकी रानी का नाम विजया था। रानी कान्ति में बिजली के समान थी। उनके सोमप्रभ नाम का एक पुत्र था, जो कि सुन्दर, धार्मिक, गुणवान् व महायोद्धा तथा पराक्रम का सागर था। एक समय वीरसेन नामक नामक अन्य मांडलिक राजा ने किसी कारण से क्रोधित होकर हेमप्रभ राजा के साथ युद्ध करने के लिए श्रीपुर नगर पर चढ़ाई कर दी। तब हेमप्रभ भी लड़ने लगा। दोनों सेनाओं में घोर युद्ध होने लगा। दोनों बलवानों के बीच युद्ध देखकर, अपने पिता का पक्ष लेकर सोमप्रभ भी भाला तथा विशाल गदा लेकर युद्ध के लिए चला। उस समय उसके तेज व पराक्रम की बराबरी कोई भी नहीं कर सकता था। अपने सैनिकों का रक्षण करने वाला वह सोमप्रभ शत्रु-सेना में मृत्यु के समान घूमने लगा। अपनी गदा से उसने शत्रु सेना के अनेक योद्धा मार डाले ॥५३-६२॥

गदाचमत्कृतिं तस्य स्वपक्षक्षयकारिणीम् ।
वीक्ष्यानिवारितां सद्यो ह्यभूद्रणपराङ्मुखः ॥६३॥
तदा कोटिभटस्सोमः प्रभोर्विजयलक्षितः ।
जगर्ज संयुगे वीरः स्थितस्तत्राद्रिराडिव ॥६४॥
लक्षान्मृतमनुष्यांश्च वीक्ष्य कोटिभटस्तदा ।
निर्विघ्नः प्राप्तवैराग्यमात्मानं धिक् चकार सः ॥६५॥
हेमप्रभं तदोवाच राजन् राजपदाप्तये ।
मया बहूनां निधनं कृतं कृत्वाघसञ्चयम् ॥६६॥
इत्युक्त्वा स जगामाशु वनं मुनिजनाश्रितम् ।
निरीक्षितस्तत्र तेन स्वामी विमलवाहनः ॥६७॥
त्रिःपरिक्रम्य तं भक्त्या तदासौ शरणोन्मुखः ।
मुनिं प्रोवाच भो स्वामिन् मयेदं कलुषं कृतम् ॥६८॥
मुनिः प्राह तदा राजकुमार श्रृणु तत्त्वतः ।
तपसो भवति राज्यं तत्र मग्नमुखोऽत्र यः ॥६९॥
स नारकी भवन्नूनं त्यक्त्वामी स्वर्गभाक् तदा ।
क्रमान्मुक्तिपदं गच्छेत् नात्र कार्या विचारणा ॥७०॥

सोमप्रभ की गदा के स्वपक्ष की हानि करने के चमत्कार को देखकर वीरसेन राजा युद्ध से परांगमुख हो गया। तब कोटिभट सोमप्रभ विजय-प्राप्ति के उल्लास में, रणभूमि में मेरुपर्वत के समान खड़ा होकर गर्जना करने लगा। एक लाख मनुष्य इस युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए हैं—यह जानकर निर्विघ्न कोटिभट सोमप्रभ विरक्त हो गया। उसने अपने आपको धिक्कारित किया तथा पिता से इसप्रकार कहने लगा—अपना राजपद स्थिर रहे, इस कारण मैंने बहुत लोगों को मार

कर बहुत पाप-संचय किया है। ऐसा कहकर वह वन में मुनिजनों के आश्रय में चला गया। वहाँ उसने विमलवाहन मुनीश्वर को भक्ति से तीन प्रदक्षिणा देकर निवेदन किया—प्रभो! मुझसे भयंकर पातक हो गया है। मुनिराज कहने लगे—हे राजकुमार! सुनो, तपश्चरण से राज्य प्राप्त होता है और जो राज्य में तल्लीन होता है, उसे नरकगति प्राप्त होती है। किन्तु जो राज्य-त्याग करता है वह स्वर्ग जाता है तथा परम्परा से मुक्तिगामी होता है—इस विषय में विचार करने की आवश्यकता नहीं है ॥६३-७०॥

सोमप्रभस्तदा प्राह भीतो पापादतीव सः ।
अनित्यत्वं शरीरादिपदार्थेष्वनुमत्य च ॥७१॥
पूर्वजन्मनि भो स्वामिन् मया किं दानमर्पितम् ।
यस्मात्कोटिभटत्वञ्च प्राप्तमन्यान्यदुर्लभम् ॥७२॥
श्रुत्वेति तं मुनिः प्राह पुरेऽस्मिन्नेव चाऽभवत् ।
सुखदत्ताभिधः श्रेष्ठी प्रमत्तो धनसञ्चयात् ॥७३॥
लोभादन्नकणः कोपि कस्मैचिन्नो समर्पितः ।
दानोद्यन्तं वान्यमपि स मूढात्मा व्यवर्जयत् ॥७४॥
स मन्यते स्म तद्वार्ता यस्तेन कलिमाकरोत् ।
सर्वस्मिन्नगरे तस्याऽपकीर्तिः प्रसृता तदा ॥७५॥
तन्नामोच्चारणं कोपि विघ्नबाधेनाघ शङ्कया ।
एवं तस्य दिनान्यत्र व्यतीतानि बहूनि च ॥७६॥

सोमप्रभ ने, जो कि पाप से अत्यधिक भयभीत था तथा शरीरादि पदार्थों के अनित्यत्व को मानता था, मुनि से कहा—स्वामिन्! मैंने पूर्वजन्म में कौन-सा दान किया था, जिसके कारण अन्यों को दुर्लभ कोटिभटपना मुझे प्राप्त हुआ है? सो

क्रहो ! तब मुनिराज ने इस प्रकार कहा—इस नगर में पहिले एक सुखदत्त नाम का श्रेष्ठि था। वह धनसंचय के कारण गर्वित था तथा वह लोभी भी था। उसने अपने हाथों से किसी को भी कण मात्र भी दान नहीं दिया था तथा दान देने वालों को भी वह मना करता था। जो भी व्यक्ति उसकी बात नहीं मानता था वह उसके साथ कलह करता था। इस कारण सारे नगर में उसकी अपकीर्ति फैल गई। पाप लगने के भय से कोई उसका नाम भी न लेता था। उसके बहुत दिन इस दुखमय अवस्था में बीते ।।७१-७६।।

एकदात्र विमानानि देवानां तिसृतात्पथे ।
तैर्वृष्टी रत्नपुष्पाणां कृता सुरविमानगैः ।।७७।।
निर्जगाम तदैवासौ लोभाक्रान्तो गृहाद्बहिः ।
तत्राजिताख्यमद्राक्षीत् मुनिं तं प्रति सोऽब्रवीत् ।।७८।।
मुनेर्बहुलकायास्ते दृश्यन्ते केन हेतुना ।
तदा तेन तथा वार्ता कथिता तेन तं प्रति ।।७९।।
लब्ध्वाहारं यथा श्रुत्वा बभूवासौऽब्रवीत्तदा ।
अभुञ्जताल्पमन्नं च स मुनिः संप्रभावतः ।।८०।।
लोभं हित्वाऽकरोद्दानं पुण्यात्मा स बभूव हि ।
एकदा शुभसेनाख्यो मुनीशस्तेन लक्षितः ।।८१।।
तदा सुप्रभकूटस्य वर्णनं मुनिना कृतम् ।
यात्राभावी स तत् श्रुत्वा बभूव मुनिदर्शनात् ।।८२।।

एक समय, देवों के विमान आकाश-मार्ग से जा रहे थे, तब देवों ने रत्न-पुष्पों की वृष्टि की। तब लोभ से वह भी बाहर आया। उसने अजित नामक मुनि को देखकर ऐसा कहा कि 'आपका शरीर मोटा क्यों है ?' मुनि ने उत्तर दिया—मुझे

आहारलब्धि प्राप्त हुई है, जिसके फलस्वरूप कम अन्न खाने पर भी मेरा शरीर मोटा है। मुनि-वचनों के प्रभाव से सोमप्रभ ने लोभ छोड़ दिया और दान करने लगा। एक समय उसने शुभसेन मुनि को देखा। उन्होंने सुप्रभासकूट का वर्णन किया, जिसे सुनकर उस कूट की यात्रा का विचार उसके हृदय में उत्पन्न हुआ ।।७७-८२।।

तदैव कोटिभटता योग्यता तस्य चाभवत् ।
पुण्यवृद्धिर्बभूवास्य तद्यात्राभावनादपि ।।८३।।
विदर्भदेशमार्गे सः सम्मेदाचलमाप्तवान् ।
तत्रैव दैवयोगाच्च स श्रेष्ठी तनुमत्यजत् ।।८४।।
ततः सोमप्रभाख्यां स धृत्वात्रैवाभवन्नृपः ।
एवं प्रभासकूटं तज्ज्ञात्वा यात्रां कुरुष्व भो ।।८५।।
मुनिवाक्यमिति श्रुत्वा गृहमागत्य सत्वरम् ।
सत्संघसहितो यात्रां सम्मेदस्य चकार सः ।।८६।।
तत्र गत्वा सुप्रभाख्यं कूटं भक्त्याभिनंदितः ।
राज्यं च लौकिकं प्राप्य भुक्त्वा भोगाननेकशः ।।८७।।
शुभसेनाख्यपुत्राय राज्यं दत्त्वा ततो नृपः ।
द्वात्रिंशत्कोटिभव्यैश्च सार्धं चक्रे तपो महत् ।।८८।।
केवलज्ञानमासाद्य घातिकर्मक्षयान्मुनिः ।
स्वसंघसहितो मुक्तिं जगाम भुवि दुर्लभाम् ।।८९।।
महालुब्धोऽपि मंदश्च सम्मेदं भावयन्मुदा ।
भस्मीकृत्याखिलं कर्म कैवल्यपदमाप सः ।।९०।।
ईदृक्प्रभावस्सम्मेदकूटोऽयं सुप्रभाभिधः ।
श्रावणीयो माननीयः सदा वन्द्यो मनीषिभिः ।।९१।।

वन्दनादेककूटस्य फलमीदृक्प्रकाशितम् ।
वन्दनात्सर्वकूटानां वक्तव्यं किं पुनर्बुधाः ।।६२।।

उस शुभविचार से ही उसको बहुत पुण्य-वृद्धि हुई तथा उसी समय कोटिभट होने की योग्यता भी उसे प्राप्त हुई। वह श्रेष्ठी सुखदत्त विदर्भ देश के मार्ग से सम्मेदशिखर जा रहा था, किन्तु दैव-योग से रास्ते में ही मरण को प्राप्त हो गया। उसके बाद इस नगर में सोमप्रभ नामक राजा होकर तू जन्मा। इसलिए, हे सोमप्रभ! तुम प्रभासकूट की यात्रा करो। मुनि से ऐसे वचन सुनकर वह सोमप्रभ राजा शीघ्र घर वापस आ गया व संघ-सहित सम्मेदशिखर जाकर प्रभासकूट की वंदना की। इसके फलस्वरूप उसे राज्य व लौकिक कीर्ति की प्राप्ति हुई। अनेक भोग उसने भोगे तथा बाद में उसने शुभसेन नामक पुत्र को अपना राज्य देकर बत्तीस कोटि भव्यों के साथ बहुत तप किया, जिससे उसे, घातिकर्मों का अभाव होकर केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। वह अपने संघ के सहित मुक्ति को प्राप्त हुआ। यद्यपि सुखदत्त श्रेष्ठी महा-लोभी था, अज्ञानी था, तथापि सम्मेदगिरि की यात्रा करने की भावना से उसने सर्व कर्मों का नाश किया और केवलज्ञानी होकर मुक्त हुआ। सम्मेदशिखर के इस सुप्रभासकूट का इस रीति से प्रभाव होने के कारण यह विद्वानों को श्रवण, मनन करने योग्य है—ऐसा मानकर उसकी वंदना करना चाहिये। एक कूट की यात्रा का फल इस प्रकार कहा है, तब सर्व कूटों की वंदना करने पर कौन-सा फल नहीं मिल सकता? विद्वज्जनों के समक्ष मैं और क्या कहूँ ।।८३-९२।।

चामर—

अखिलकलुषराशिध्वंसनाद्धि प्रवीणम् ।
सुकृतजलधिचन्द्रं पुष्पदन्ताधिवासम् ।।९३।।

तिमिरगजमहौघव्रातसंहारसिंहम् ।
मनसि निबिडभक्त्या सुप्रभं कूटमीडे ।।६४।।

श्री पुष्पदन्त का यह सुप्रभास कूट सम्पूर्ण पाप-राशि-रूप समुद्र को नाश करने के लिए समर्थ है, व सुकृत-पुण्य-समुद्र को भरने में चन्द्रमा के समान है, अज्ञान-रूपी गजराज को मारने के लिए सिंह के समाम है—ऐसा मानकर मैं मन में दृढ़ भक्ति से इस सुप्रभासकूट की स्तुति करता हूँ ।।६३-६४।।

इति दीक्षित देवदत्तकृते श्रीसम्मेदशिखरमाहात्म्ये 'सुप्रभासकूट' दर्शनस्य फलवर्णननाम नवमस्सर्गः समाप्तः ।

इस प्रकार सम्मेदशिखर माहात्म्य नामक ग्रन्थ में सुप्रभास कूट का वर्णन करने वाला नवम अध्याय समाप्त हुआ ।

इच्छा कभी तृप्त नहीं होती, अतः यदि कोई मनुष्य अपनी समस्त इच्छाओं का सर्वथा त्याग करदे तो जिस मार्ग से आने की वह आज्ञा देता है, मुक्ति उसी मार्ग से आकर उससे मिलती है ।

अथ दशमोऽध्यायः

विद्युद्वराख्य कूटाद्यः श्रेयस्सम्प्राप्त निर्मलः ।
जगत्सन्तापहर्तारं तं नाथं शीतलं नमः ॥१॥

पुष्कराख्ये महाद्वीपे मन्दरे कान्ति मन्दरे ।
नद्याः पूर्वविदेहेस्मिन् सीताया दक्षिणे तटे ॥२॥

वत्सदेशे सुसीमाख्यं नगरं किल शोभते ।
पद्मगुल्मस्तत्र राजा बभूव सुकृताम्बुधिः ॥३॥

महाप्रतापवान् सर्वं न्यायतः कर्म स व्यधात् ।
श्रीकान्ताख्या तस्य राज्ञी बभूवातीव सुन्दरी ॥४॥

सुशीला गुणराशिश्च तस्याश्चन्दनपुत्रकः ।
एकस्मिन्दिवसे चाभ्रविभ्रमं वीक्ष्य सोऽम्बरे ॥५॥

स्वयं मुनिर्बभूवासौ वनं गत्वा तपस्विनाम् ।
भूत्वा चाग्रेश्वरो धीमान् तपः तप्त्वा विशेषतः ॥६॥

साधूनामीश्वरो भूत्वा धर्मदेशनमाकरोत् ।
धृत्वा चैकादशाङ्गानि भावनानि च षोडश ॥७॥

दधे तैर्थंकरं गोत्रं अन्ते सन्यासरीतितः ।
तनुं त्यक्त्वारणे पञ्चदशमे कल्प उत्तमे ॥८॥

संप्राप सोऽहमिन्द्रत्वं द्वाविंशत्यर्णवायुषः ।
तत्प्रमाण सहस्राब्दगमने मानसं प्रभुः ॥९॥

आहारमग्रहीत् स द्वाविंशत्पक्षोपरि ध्रुवम् ।
आश्वसत्परमानन्दनिर्भरा भूरिनाशयः (?) ॥१०॥

ज्ञानलोचनतस्तस्मान्नरकावधि सत्ववान् ।
सर्वं कर्तुं समर्थोऽभूत् सिद्धबिम्बान् समर्चयन् ॥११॥

सिद्धवर कूट/विद्युतवर से जिसने मुक्ति की प्राप्ति की है, उन जगत् का संताप हरने वाले श्री शीतलनाथ जिनेश्वर को मैं नमस्कार करता हूँ। पुष्कर नामक महाद्वीप में कान्ति के घर के समान मन्दर मेरुपर्वत है। इस पर्वत के पूर्व-विदेह क्षेत्र में, सीता नदी के दक्षिण तट पर वत्स देश है। उस देश के मनोहर सुसीमा नगर में, मानो पुण्य का समुद्र ही हो—ऐसा पद्मगुल्म नामक राजा हुआ है, जो महाप्रतापी तथा न्यायपूर्वक कार्य करने वाला था। उसकी रानी श्रीकर्णा अतिशय सुन्दरी, सुशीला तथा अनेक गुणसमूहों से युक्त थी। उसके चन्दन नामक एक पुत्र हुआ। एक समय राजा आकाश के मेघों का विभ्रम देखकर विरक्त हो गया व तपोवन में जाकर मुनि बन गया। उसने ग्यारह अंग का पाठी होकर, उग्र तपश्चरण-पूर्वक, सोलह भावनाओं का चिन्तवन किया, जिससे उसे तीर्थंकर नामकर्म प्रकृति का बंध हुआ। आयु के अंत में सन्यासविधि से मरण प्राप्त कर वह पन्द्रहवें स्वर्ग में देवेन्द्र हुआ। वहाँ पर उसकी आयु बाबीस सागर की थी। वह बाबीस हजार वर्षों के बाद मानसिक आहार करता था तथा बाबीस पक्ष बाद श्वासोच्छ्वास लेता था। वह अवधिज्ञान से छठवें नरक पर्यन्त जानता था तथा वहीं तक विक्रिया करने में भी समर्थ था। परमानन्द से निर्भर-पूर्णरूपेण भरा हुआ वह इन्द्र प्रतिदिन सिद्धबिम्बों को पूजा करता था ॥१-११॥

तदा जम्बूमतिद्वीपे भरते क्षेत्र उत्तमे।
आर्यखण्डे शुभे देशे नगरे भद्रनामनि ॥१२॥

इक्ष्वाकुवंशे राजाऽभूत् नाम्ना दृढरथो महान्।
सुनन्दाख्या महाराज्ञी सुभगा देवतोपमा ॥१३॥

प्रभोरागमनं तस्य गृहे ज्ञात्वा स वासवः ।
राजराजं महोत्साहात् रत्नवृष्ट्यर्थमादिशत् ॥१४॥

षण्मासमेकरीत्या स प्रेमजीमूतवत्तदा ।
सुवृष्टिं च मुदा चक्रे मुसलाकारधारिकाम् ॥१५॥

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में उत्तम आर्यखण्ड शुभ देश के भद्र नामक नगर में इक्ष्वाकु वंशीय दृढ़रथ नामक महान् राजा हुआ है। उसकी सुनन्दा नामक देवाङ्गना तुल्य रानी थी। इस राजा के घर में जिनेश्वर का अवतार होने वाला है—ऐसा जानकर इन्द्र ने अति उत्साह से कुबेर को रत्नवृष्टि करने की आज्ञा दी। कुबेर ने छह माह तक प्रेम से मेघों के समान मूसलाधार रत्नवृष्टि की ॥१२-१५॥

एकदा रत्नपर्यङ्के देवी संमविशत्सती ।
चैत्रकृष्णदले षष्ठ्यां पूर्वाषाढाभिधे शुभे ॥१६॥

अर्धयामावशिष्टायां रात्रौ स्वप्नांश्च षोडशान् ।
दृष्टाऽपश्यत्तदन्ते सा वक्त्रगं मत्तसिन्धुरम् ॥१७॥

एवं स्वप्नान् समीक्ष्येयं प्रबुद्धा पुलकाञ्चिता ।
प्रफुल्लवदना देवी गता सा तत्पुरान्तिकम् ॥१८॥

सादरं सा शुभे पीठे भूपालेनोपवेशिता ।
दृष्टस्वप्नान् समुच्चार्याऽपृच्छत्स्वप्नफलं तदा ॥१९॥

ततः स्वप्नफलं राजा संविचार्याह तां प्रियाम् ।
तव गर्भे समायातो देवदेवो महान् ध्रुवम् ॥२०॥

इति श्रुत्वा तदा देवी परमानंद संप्लुता ।
धन्यत्वं स्वात्मनि स्थाप्याऽतिष्ठद्राजगृहे मुदा ॥२१॥

एक बार, पूर्वाषाढ़ नक्षत्र से युक्त चैत्र कृष्ण षष्ठी (उ० पु०—चैत्र कृष्ण अष्टमी) तिथि की रात्रि के अंतिम प्रहर में, जब रानी सुनन्दा निद्रालीन थी, उसे सोलह स्वप्न तथा उसके बाद मुख में प्रवेश करता हुआ उन्मत्त हस्ति दिखाई दिया। इस प्रकार के आश्चर्यकारक स्वप्नों को देखने से रानी जागृत हो गई। उसके शरीर में रोमाञ्च हो आया। प्रसन्न-मुख से वह पति के समीप गई। राजा ने रानी को आदर से आसन दिया। रानी ने रात्रि में देखे स्वप्न राजा को कह सुनाये। राजा ने स्वप्नों का फल विचार कर रानी से कहा—प्रिये! तुम्हारे गर्भ में देवों के देव का आगमन हुआ है। ऐसा सुनकर रानी अत्यन्त आनन्दित हुई। राजा भी अपने को धन्य मानता हुआ अपने महल में आनन्द से रहने लगा ॥१६-२१॥

गर्भागतेऽर्हमिन्द्रोऽभूत् सर्वदिक्षु प्रकाशकम् ।
गगनं निर्मलञ्चासीत् ववुर्वाताः सुखावहाः ॥२२॥

चक्रुस्तस्यास्तदा गर्भशोधनं षट्कुमारिकाः ।
दास्ये स्थिता स्म प्रणता नानासेवनतत्पराः ॥२३॥

माघमासे ततः कृष्णद्वादश्यां गर्भगे शुभे ।
आविरासीज्जगन्नाथः तस्यां सिन्धौ विधुर्यथा ॥२४॥

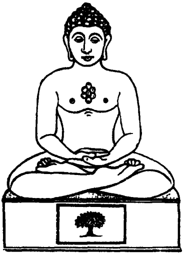
प्रबुद्धयावधितस्तस्य प्राभवं विश्वमोदकम् ।
सौधर्मेशस्तदा देवैः सार्धं तत्राभ्युपाययौ ॥२५॥

तं समादाय देवेन्द्रः सादरं श्रीपतिप्रभुम् ।
बालरूपं गतो मेरुं जयशब्दं समुच्चरन् ॥२६॥

तत्राभिषेकमकरोत् पूर्णैः क्षीरोदवारिभिः ।
कलशैर्हेमरचितैः देवदेवस्य सादरम् ॥२७॥



विद्युतवर कूट



शीतलनाथ जिनराज का, कूट विद्युतवर जेह।
मन वच तन कर पूजहूं, शिखर सम्मेद यजेह ॥

ओ३म् ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्रादि मुनि १८ कोड़ा कोड़ी ४२ करोड़ ३२ लाख ४२ हजार ६०५ मुनि इस कूट से सिद्ध भए तिनके चरणारविन्द को मेरा मन वचन काय से बारम्बार नमस्कार हो जलादि अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥१०॥

इस टोंक की भाव सहित वन्दना करने से एक करोड़ उपवास का फल होता है।

अभिषिच्याथ संभूष्य दिव्यैराभरणैः प्रभुम् ।
स तमानयत्पुनर्भद्रपुरे राजगृहं प्रति ॥२८॥
तत्र सम्पूज्य भक्त्या तं तदग्रेऽद्भुतताण्डवम् ।
विधाय तस्य देवस्य शीतलाख्यां चकार सः ॥२९॥
स्तुत्वा मुहुः सुरेन्द्रस्तं मातुरङ्के निधाय च ।
जयनिर्घोषपूर्वां स स्वर्गयात्रां मुदा व्यधात् ॥३०॥

अहमिन्द्र के गर्भ में आते ही सभी दिशायें प्रकाशयुक्त हो गईं, आकाश निर्मल हो गया और सुखदायक पवन चलने लगी। श्री ह्री आदिक छह कुमारिकाओं ने माता का गर्भशोधन किया। देव, दासत्व स्वीकार कर नमस्कार कर नाना प्रकार की सेवा करने के लिए तत्पर होने लगे। माघ कृष्ण द्वादशी के दिन समुद्र में चन्द्रमा के समान, माता के गर्भ से प्रभु ने अवतार लिया। अपने माहात्म्य से विश्व को आनन्दित करने वाले प्रभु का जन्म अवधिज्ञान से जानकर इन्द्र अपने परिवार के देवों के साथ आया। तदनन्तर देवों ने आदर से लक्ष्मीपति बालरूप प्रभु को मेरु पर ले जाकर, जयघोष के साथ क्षीर-समुद्र के जल से १००८ स्वर्ण कलशों को भरकर आदर के साथ प्रभु का अभिषेक किया। अभिषेक के बाद भगवन्त को दिव्य वस्त्रालंकारों से भूषित कर भद्रपुर नगर के राज्यगृह में लाये। वहाँ पर प्रभु की पूजा करके इन्द्र ने ताण्डव नृत्य किया व अंत में प्रभु का नामकरण शीतलनाथ रखा। पुनः-पुनः प्रभु की स्तुति कर, बालक को माता की गोद में देकर, इन्द्र अन्य देवों के साथ जयघोष करता हुआ स्वर्ग चला गया ॥२२-३०॥

पुष्पदन्ताद् गते काले नवकोटयब्धिसम्मिते ।
शीतलाख्योऽभवन्नाथः तदभ्यन्तरजीवनः ॥३१॥

स एवं लक्षपूर्वायुः धनुर्नवतिदेहभृत् ।
कुमारकालं क्रीडाभिर्यथोक्तं स व्यतीतवान् ॥३२॥
तारुण्ये पैतृकं राज्यं संप्राप्यातिरराज सः ।
शत्रूणां गर्वहृद्देवो मित्राणां सुखवर्धनः ॥३३॥
एकदा पटगं दृष्ट्वा तुष्टारं तत्क्षणाद्रवेः ।
अर्कस्य स्याद्विनष्टं स विरक्तोऽभूत्स्वराज्यतः ॥३४॥
स्वपुत्राय समर्थाय राज्यं संसारमुक्तये ।
लौकान्तिकं स्तुतः शक्रप्रभामारुह्य सत्वरम् ॥३५॥
देवोपनीतां शिबिकां इ-(ऐ)न्द्रादि कृतमङ्गलः ।
स्वयं जगाम तपसे वनं मुनिजनाल-(श्र)यम् ॥३६॥

पुष्पदन्त भगवान के मोक्ष जाने के बाद नौ करोड़ सागर वर्ष व्यतीत होने के बाद शीतल जिन का जन्म हुआ। प्रभु का आयुष्यकाल भी उक्त समयावधि में सम्मिलित है। प्रभु का आयुष्य एक लाख पूर्व तथा शरीर की ऊँचाई नब्बे धनुष थी। प्रभु को, कुमार-काल के क्रीडाओं में बीतने पर, तारुण्य प्राप्त हुआ; तब पिता का राज्य प्रभु को मिला। प्रभु राज-वैभव से अतिशय शोभा को प्राप्त हुए। उन्होंने शत्रुओं का गर्व नष्ट कर दिया और मित्रों को सुखी किया। एक समय सूर्य पर सुन्दर मेघों को आया देखकर प्रभु को आनन्द हुआ, किन्तु वह आवरण शीघ्र ही नष्ट हो गया। उसे देखकर प्रभु राज्य से विरक्त हुए। अपने समर्थ पुत्र को राज्य देकर स्वयं संसार से विमुख हो गये। लौकान्तिक देवों ने प्रभु की स्तुति की। शक्र-प्रभा नामक पालकी में प्रभु के बैठने पर इन्द्रादिकों ने उनका मंगल किया व प्रभु को मुनिजनों के निवास-स्थान रूप वन में ले गये ॥३१-३६॥

द्वादश्यां माघमासे स कृष्णायां जन्मभे शुभे ।
दीक्षां जग्राह शुद्धात्मा जैनीं जैनजनार्चितः ।।३७।।
सहेतुकवने धृत्वा दीक्षां वेलोपवासकृत् ।
सहस्रक्षितिपैस्सार्धं रराजार्कसमप्रभः ।।३८।।
अन्तर्मुहूर्ते स ज्ञानं चतुर्थं प्राप्य मानसे ।
परेऽप्यरिष्टनगरं भिक्षार्थं प्राप्तवान् प्रभुः ।।३९।।
पुनर्वसु-महीपालः सत्कारं प्राप्य भूरिशः ।
कृत्वाऽऽहारं ददौ प्रायः तदैवाश्चर्यपञ्चकम् ।।४०।।
छद्मस्थोऽभूत् त्रिवर्षं स तप उग्रं समाचरन् ।
पुष्य (पौष) कृष्ण चतुर्दश्यां जन्मभे भगवान् वने ।।४१।।
अधस्ताद् बिल्ववृक्षस्य कृत्वा घातिक्षयं विभुः ।
सम्प्राप्य केवलज्ञानं सर्वतत्त्वप्रकाशकम् ।।४२।।

प्रभु शीतलनाथ ने माघ कृष्ण द्वादशी के दिन शुभ जन्म नक्षत्र में भक्तों से पूजित शीतलनाथ ने सहेतुक वन में दीक्षा ग्रहण की । एक उपवास की प्रतिज्ञा करके प्रभु के साथ में एक हजार राजाओं ने भी दीक्षा ले ली । प्रभु सूर्य के समान कान्ति से शोभने लगे । दीक्षा के अनन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र में ही प्रभु को मनःपर्ययज्ञान प्रकट हो गया । दूसरे दिन अरिष्ट नामक नगरी में प्रभु आहार के लिए आये । वहाँ पुनर्वसु नामक राजा ने प्रभु को अतिशय आदर करके आहारदान दिया । उसी समय उसके आंगन में पञ्चाश्चर्य-वृष्टि हुई । प्रभु तीन वर्षों तक छद्मस्थावस्था में रहे । उन्होंने उग्र तप किया, जिसके फलस्वरूप पौषशुक्ल चतुर्दशी (उ० पु०—पौष कृष्ण चतुर्दशी) के दिन रोहिणी नक्षत्र में, भगवान ने, जब वे वन में बिल्व वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ थे, घातिकर्मों का क्षय करके केवलज्ञान प्राप्त किया ।।३७-४२।।

अनगारगणेन्द्राद्यैः यथासङ्ख्यैः समाश्रितः ।
स्थितैर्द्वादशकोष्ठेषु बभ्राजे दिनराडिव ॥४३॥

तदासौ भव्यसम्पृष्टः सर्वतत्त्वावबोधकम् ।
दिव्यघोषं समुच्चरन् पीयूषद्रूपकं मुदा ॥४४॥

पुण्यक्षेत्रेष्वशेषेषु स विलासं महाप्रभुः ।
शृण्वन् देव जयध्वानं विजहार यदृच्छया ॥४५॥

एकमासावशिष्टायुः सम्मेदाख्यधराधरे ।
विद्युद्वराभिधे कूटेऽतिष्ठत् संहृत्य तद्ध्वनिम् ॥४६॥

श्रावणे मासि शुद्धेयं पू-(पौ) र्णिमायां जगत्पतिः ।
सहस्रमुनिभिस्सार्धं कैवल्यपदमाप्तवान् ॥४७॥

अष्टादशोक्तकोटीनां कोट्यु क्तस्तद्वतः परम् ।
द्विचत्वारिंशदुक्ताश्च कोट्यो द्वात्रिंशदीरिताः ॥४८॥

लक्षास्तद्वद्द्विचत्वारिंशत्सहस्राण्यतः परम् ।
शतानि नव पञ्चेति संख्योक्तास्तापसाः गिरौ ॥४६॥

तस्मात्कूटाच्छिवं जाताः तदन्वविचलो नृपः ।
चालयामास सत्सङ्घः शीतलानन्तरं महत् ॥५०॥

बारह कोठों में यथाक्रम से विराजमान सर्व मुनि, गणधर-आदि ने जिनका आश्रय लिया है, ऐसे भगवान शीतलनाथ सूर्य समान कान्ति से प्रकाशित हो रहे थे। भव्यों के द्वारा निवेदन किये जाने पर प्रभु अमृत के समान मधुर दिव्य-ध्वनि में धर्म का स्वरूप कहने लगे। सर्व पुण्य-क्षेत्रों में प्रभु ने इच्छा रहित होकर विहार किया। जब प्रभु की आयु एक माह अवशिष्ट रह गई, तब वे अपनी दिव्यध्वनि को रोककर सम्मेदशिखर के विद्युद्वर नामक कूट पर विराजमान हो गये। श्रावण शुक्ल

पूर्णिमा (उ० पु०—आश्विन शुक्ल अष्टमी) के दिन त्रैलोक्य-पति शीतलनाथ ने एक हजार मुनियों के साथ निर्वाण प्राप्त किया। अविचल नृप शीतलनाथ के मुक्त होने के बाद इस विद्युद्वर कूट से अठारह कोटाकोटि, बयालीस कोटि, बत्तीस लाख, बयालीस हजार नौ सौ पाँच मुनियों ने मोक्ष प्राप्त किया ।।४३-५०।।

भद्राभिधे पुरे धीमान् देशे मलयसंज्ञके ।
अभून्मेघरथो राजा धर्मकर्मपरायणः ।।५१।।
एकस्मिन् समये सिंहासनस्थो बलवारिधिः ।
पप्रच्छ मन्त्रिणः श्रेयान् किं दानं हि महाफलम् ।।५२।।
भूपालभारतीं श्रुत्वा सुमतिर्मन्त्रिसत्तमः ।
प्राह भूपं महाराज ! शृणु दानचतुष्टयम् ।।५३।।
प्रथममाहारदानं शास्त्रदानं द्वितीयकम् ।
तृतीयमौषधं दानं चतुर्थमभयाभिधम् ।।५४।।

मलयदेश के भद्र नामक गाँव में मेघरथ नामक धर्म-परायण राजा सिंहासनारूढ था। एक बार वह अपार शक्ति का धारक राजा मन्त्रियों से ऐसा कहने लगा—कौन-सा दान महाफल देने वाला है, सो कहो। राजा की बात सुनकर मन्त्रिश्रेष्ठ सुमति कहने लगा—राजन् ! चारों दानों का वर्णन सुनो—प्रथम आहारदान, दूसरा शास्त्रदान, तीसरा औषधिदान व चौथा अभयदान है ।।५१-५४।।

चतुर्दानानि दानानां प्रधानानि बुधा जगुः ।
येभ्यः एवात्र भव्यानां सम्यक्त्वं जायते ध्रुवम् ।।५५।।
इति श्रुत्वा मेघरथः पुनः प्राह स मन्त्रिणम् (णः) ।
अन्यानि विप्रदानानि ब्रूत मे दानवित्तमाः ।।५६।।

सोमशर्मा द्विजस्तत्र प्राह तं श्रृणु भूपते ।
चतुर्दानानि पूर्वोक्तानीह सन्त्यधनास्ति वै ।।५७।।
भूपानामन्यदानानि दशप्रोक्तानि चागमे ।
श्रृणु भूपेन्द्र चैतानि मया संभाषितानि वै ।।५८।।
कन्याश्वगजदास्यस्त्ररथालयधनान्यपि ।
भूरिशस्तिलगोधूम दशदानान्यनुक्रमात् ।।५९।।
श्रुत्वा दानानि संदातुमुद्यतोऽभून्महीपतिः ।
कस्मै देयानि दानानि इति वाक्यं समुच्चरन् ।।६०।।
सोमशर्मः सुतो मूढः बालस्तान्यतिलोभतः ।
शास्त्रवस्त्रप्रतिजप्राह दानान्युक्तानि दुष्टधीः ।।६१।।

ये चारों ही दान अन्य दानों में प्रधान है—ऐसा विद्वान् कहते हैं। इन चारों दानों के प्रभाव से भव्यों को सम्यक्त्व की प्राप्ति निश्चय से होती है। यह सुनकर राजा मेघरथ पुनः बोला—दानों का स्वरूप उत्तम रूप से जानने वाले विद्वज्जनो! अन्य जो विप्रदान हैं उनका भी स्वरूप कहो। तब सोमशर्मा नामक ब्राह्मण कहने लगा—हे राजन्! तुम सुनो, ये जो चार प्रकार के दान पहिले कहे थे, वे निर्धनों के लिए हैं। श्रीमन्तों के लिए वे दान नहीं हैं। राजाओं आदि श्रीमन्तों के लिए आगम में दश प्रकार के दानों का वर्णन किया गया है। मैं उनका वर्णन करता हूँ, सो सुनो। कन्या, हाथी, घोड़ा, अस्त्र, रथ, घर, धन, बहुत तिल, गेंहूँ, स्वर्ण—ये दश प्रकार के दान हैं। यह वर्णन सुनकर राजा ने उक्त वस्तुओं को देने के लिए उद्यत होकर पूछा—ये दान किसे देना चाहिए? सोमशर्मा के अतिलोभी व मूढ़ पुत्र ने शास्त्र, वस्त्र आदि के दान का वर्णन किया ।।५५-६१।।

स्वतः स्वीकृत्य दानानि नृपास्तुष्टोऽभवत्सदा ।
तन्मेघरथवंशेऽभूत् भूपोऽविचलनामकः ॥६२॥

मुनिश्चारणसंगाच्च निर्मले तस्य मानसे ।
सम्मेदभूमिभृद्भक्तिर्जाता ह्यचिरकालतः ॥६३॥

अद्भुता महिमा तस्य श्रुता श्रुत्वा जहर्ष सः ।
तदा संघसमेतोऽसौ शैलसन्दर्शनोत्सुकः ॥६४॥

द्वात्रिंशल्लक्षमनुजैः समं यात्रां चकार सः ।
प्राप्य विद्युद्वरं कूटमभिवन्द्य समर्च्य च ॥६५॥

षोडशप्रोक्तलक्षोक्तभव्यजीवैः समं नृपः ।
दीक्षामविचले धृत्वा श्रीमेघरथवंशजः ॥६६॥

दग्ध्वाऽघवनं पूर्णं शुक्लध्यानोग्रवह्निना ।
सम्यक्त्वादिगुणोपेतः पदं स प्राप शाश्वतम् ॥६७॥

इस मेघरथ के वंश में अविचल नामक राजा हुआ, जिसका मन चारणमुनि की संगति से निर्मल हुआ। उसके मन में सम्मेदशिखर की भक्ति उत्पन्न हुई। सिद्धवर कूट की आश्चर्यकारक महिमा उसने सुनी व आनन्दित हुआ। सर्व संघ के साथ राजा सम्मेदशिखरजी का दर्शनोत्सुक था। उस समय बत्तीस लाख भव्यों के साथ उसने सम्मेदगिरि की यात्रा की। विद्युद्वर कूट पर पहुँचकर अभिवंदना व पूजन करके मेघरथ के वंशज राजा अविचल ने उपर्युक्त सोलह लाख भव्य जीवों के साथ दीक्षा ग्रहण की तथा पापरूपी वन को शुक्लध्यान-रूपी अग्नि से जलाकर, सम्यक्त्वादि आठ गुणों से युक्त होकर शाश्वत मुक्ति-पद प्राप्त किया ॥६२-६७॥

· शार्दूलविक्रीडितम्

यस्माच्छीतलनाथ उत्तमतपस्तेजःकृशानुज्ज्वल–
ज्वालासम्परिदग्धकर्मविपिनः सिद्धालयेशोऽभवत् ।।
ध्यानाद्वन्दनतो हि यस्य मनुजः कैवल्यपात्रं भवेत् ।
तं विद्युद्वरकूटमुत्तमतरं भक्त्या प्रवंदामहे ।।६८।।

उत्तम तप के तेज रूपी अग्नि-ज्वालाओं से, जिसने सर्व कर्म-रूपी वन को जला दिया है—ऐसे श्री शीतलनाथ भगवन्त ने जिस कूट से मुक्ति प्राप्त की है तथा जिसके ध्यान से व वन्दन से मनुष्य केवलज्ञान का पात्र होता है, उस अतिशय उत्तम विद्युद्वर कूट को मैं भक्ति से नमस्कार करता हूँ ।।६८।।

इति दीक्षितब्रह्मदेवदत्तविरचिते सम्मेदशैलमाहात्म्ये विद्युद्वरकूटवर्णनंनाम दशमोऽध्यायः सम्पूर्णः ।

इस प्रकार 'सम्मेदशिखर माहात्म्य' में विद्युद्वर कूट का वर्णन करने वाला दशम अध्याय समाप्त हुआ ।

अथ एकादशोऽध्यायः

(श्री श्रेयांस जिनेश्वर चरित्र)

अथोत्तमतपोमूर्ति केवलज्ञानसागरम् ।
श्रेयस्करं वन्दकानां श्रेयांसं तं नमाम्यहम् ॥१॥

गतः सङ्कुलकूटाद्यो मुक्तिं संसारदुर्लभाम् ।
श्रेयांसस्तस्य कथां पुण्यां वक्ष्ये संक्षेपतोऽधुना ॥२॥

द्वीपेऽस्मिन्पुष्करार्धाख्ये शुचौ पूर्वविदेहके ।
मन्दरे शैवलिन्याश्च सीतायाः उत्तरे तटे ॥३॥

कच्छदेशो महान् तत्र भाति क्षेमपुरं महत् ।
तस्य राजा महानासीत् नामतो नलिनप्रभः ॥४॥

न्यायकर्ता प्रतापाब्धिः सुखी धर्मरतस्सदा ।
राज्यं चकार स्वकृतैः सुकृतैः पूर्वजन्मनि ॥५॥

जो उत्तम तप की मूर्ति तथा केवलज्ञान के सागर हैं, तथा जो वंदना करने वालों का कल्याण करने वाले हैं—ऐसे श्री श्रेयांस प्रभु की मैं वन्दना करता हूँ। जिन्होंने सङ्कुल कूट से संसार के लिए दुर्लभ मुक्ति प्राप्त की, उन श्रेयांस जिन की कथा को मैं संक्षेप में कहता हूँ। पुष्करार्द्ध द्वीप के पवित्र पूर्व-विदेह क्षेत्र में मंदर पर्वत की सीता नदी के उत्तर तट पर कच्छ नामक महान देश है। वहाँ पर क्षेमपुर नाम का एक बहुत बड़ा नगर है। उस नगर में नलिनप्रभु नामक राजा राज्य करता था; जो लोगों को योग्य न्याय देने वाला, प्रताप का सागर, सुखी तथा सदा धर्मरत रहने वाला था। उसने पूर्व के जन्म में संगृहीत पुण्य के उदय से बहुत सुख-पूर्वक राज्य किया ॥१-५॥

सहस्र–वन एकस्मिन् समये नन्दनामकः ।
समागतोऽजितस्वामी तपसा भास्करोपमः ॥६॥
श्रुत्वा तमाऽऽगतो राजा परिवारसमन्वितः ।
मुदा तद्दर्शनाकाङ्क्षी गत्वा तत्र ननाम तम् ॥७॥
यतिधर्मास्ततः पृष्ट्वा श्रुत्वा वैराग्यमाप्तवान् ।
राज्यं समर्प्य पुत्राय स स्वयं दीक्षितोऽभवत् ॥८॥
बहुभूपैस्समं तत्र दीक्षां सन्धार्य पावनीम् ।
एकादशाङ्गविद्भूत्वा तपः षोडशभावनाः ॥९॥
सम्भाव्य तीर्थकृद्गोत्रं सम्प्राप्यान्ते तपोनिधिः ।
सन्यासेन तनुं त्यक्त्वा स्वर्गं षोडशमं ययौ ॥१०॥
तत्र पुष्पोत्तराख्ये स विमाने स्वतपोबलात् ।
सम्प्राप्य चाहमिन्द्रत्वं रेजे शारदचन्द्रवत् ॥११॥
द्वाविंशतिसमुद्रायुः शुक्ललेश्यालसत्तनुः ।
त्रिहस्तप्रमितोत्सेधो बभूवाद्भुतदर्शनः ॥१२॥
गतेष्वब्देषु तत्रासौ द्वाविंशति सहस्रकैः ।
मितेषु मानसाहारमग्रहीत्सुखसंप्लुतः ॥१३॥
तथा गतेषु पक्षेषु द्वाविंशतिमितेषु सः ।
श्वासोच्छ्वासधरः श्रीमान् सर्वकार्यक्षमोऽभवत् ॥१४॥
ध्यायंस्तथा वन्दमानः सिद्धान् संपूजयन्मुहुः ।
तत्र षण्मासशिष्टायुर्बभूव सुरसेवितः ॥१५॥

एक समय सहस्र वन में नन्द नामक मुनीश्वर आये । वे सूर्य के समान तप के तेज से युक्त थे। उनके आगमन का समाचार सुनकर राजा दर्शनों की उत्कण्ठा से सपरिवार वहाँ गया और मुनि की वंदना की। मुनि-मुख से यतीश्वरों का धर्म

सुनकर उसने वैराग्य धारण कर, अपना राज्य पुत्र को दे दिया और अनेक राजाओं के साथ पावन दीक्षा ले ली। ग्यारह अंगों का पाठी होकर उसने षोडश-कारण भावनाओं का चिन्तवन कर तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया तथा अंत में संन्यास-विधि से मरण प्राप्त कर सोलहवें स्वर्ग के पुष्पोत्तर नामक विमान में स्व-तप सामर्थ्य से इन्द्र हुआ। उस इन्द्र की कान्ति शरदपूर्णिमा के चन्द्रमा के समान आनन्ददायक थी। उस देवेन्द्र की आयु बावीस सागरोपम वर्ष की थी तथा वह तीन हाथ ऊँचा था। अद्भुत सौन्दर्य का धारक वह देवेन्द्र बावीस हजार वर्ष उपरान्त मानसाहार तथा बावीस पक्ष बीतने पर श्वासोच्छ्वास लेता था। वह इन्द्र सुख से रह रहा था। वह वैभव-सम्पन्न तथा सर्व कार्य करने में सक्षम था। निरन्तर सिद्धों का ध्यान करते हुए, वंदना तथा पूजन करते हुए उसकी आयु केवल छह मास शेष रही, तब ।।६-१५।।

यथा स आगतो भूपो भूम्यां भुवनदीपकः ।
तद्वक्ष्ये श्रवणाद्यस्य सर्वपापक्षयो भवेत् ।।१६।।

जम्बूद्वीपे शुभे क्षेत्रे भारते कोशलाभिधे ।
देशे सिंहपुरी तत्र इक्ष्वाकौ वंश उत्तमे ।।१७।।

विष्णुर्नामाभवद्राजा भाग्यसिंधुः प्रतापवान् ।
सत्कीर्तिः स्वविभूत्या स देवेन्द्रमपि लज्जयत् ।।१८।।

संसार को दीपक के समान प्रकाशित करने वाला वह देवेन्द्र जिस प्रकार पृथ्वी पर आया, उसको मैं कहता हूँ, जिसको सुनने से सर्व पापक्षय होता है। जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में कौशल नामक देश है। उस देश के सिंहपुर नगर में उत्तम इक्ष्वाकु-वंशीय विष्णु नामक राजा था। समुद्र के समान विशाल भाग्य

का स्वामी, प्रतापी तथा सत्कीर्तिवान् था। अपनी विभूति से वह देवेन्द्र को भी लज्जित करने वाला था ।।१६-१८।।

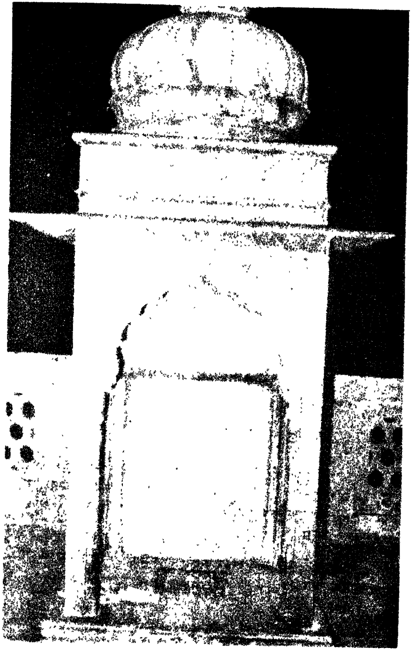
नन्दाख्या तस्य महिषी शुभलक्षणलक्षिता ।
प्राणेशप्राणसदृशा स्वकीयैः सद्गुणैर्ध्रुवम् ।।१९।।
यया सह स धर्मात्मा शीलसम्पन्नया तदा ।
रेमे राजगृहे शच्या त्रिदिवे देवराडिव ।।२०।।

उसकी नन्दा नाम की रानी शुभ लक्षणों से युक्त, सद्गुणी व अपने पति को प्राण-सदृश प्रिय थी। वह राजा अपनी धर्मात्मा, शील-सम्पन्न रानी के साथ अपने महलों में, स्वर्ग के इन्द्र-इन्द्राणी के समान क्रीडा करता था ।।१९-२०।।

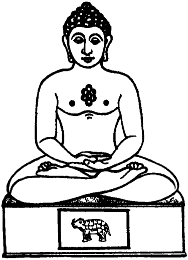
ज्ञात्वा तयोर्गृहे देवागमनं भाविनं तथा ।
शक्राज्ञया धनाधीशो वसुवृष्टिं चकार सः ।।२१।।
तां दृष्ट्वा विस्मिताः सर्वे सन्ततापातनिर्भराम् ।
अन्वमन्यन्त भवने राज्ञो भावि शुभं महत् ।।२२।।

उस रानी के उदर में भावी तीर्थंकर आने वाले हैं, ऐसा जानकर इन्द्राज्ञा से कुबेर ने रत्नवृष्टि की। लगातार हो रही रत्नवृष्टि को देखकर सब लोग आश्चर्यचकित हुए। इस राजा का भावि-काल महान् शुभ-मंगलकारी होगा—लोगों ने ऐसा अनुमान किया ।।२१-२२।।

ज्येष्ठे कृष्णदले षष्ठ्यां श्रवणर्क्षे नृपप्रिया ।
निशावसाने साऽपश्यत् स्वप्नान् षोडश मन्दिरे ।।२३।।
स्वप्नान्ते सा करटिनं मत्तं स्वमुखपङ्कजे ।
प्रविशन्तं समालोक्य प्रबुद्धा विस्मिताऽभवत् ।।२४।।



संकुल कूट



श्रेयांसनाथ जिनराज का, संकुल कूट है जेह।
मन वच तन कर पूजहूं, शिखर सम्मेद यजेह।

ओ३म् ह्रीं श्री श्रेयांसनाथ जिनेन्द्रादि ९६ कोडा कोड़ी ९६ करोड़ ९६ लाख ९ हजार ५४२ मुनि इस टोंक से सिद्ध भए तिनके चरणारविन्द को मेरा मन वचन काय से बारम्बार नमस्कार हो जलादि अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।।११।।

इस टोंक की भाव सहित वन्दना करने से एक करोड़ प्रोषध उपवास का फल होता है।

तदैव मुखमाक्रेशं संमार्ज्य विमलैर्जलैः ।
गता पतिसमीपं सा स्वश्रौषीत्स्वाप्निकं फलम् ।।२५।।
श्रुत्वाद्भुतं फलं तेषां गर्भे सन्धार्य वैवतम् ।
रराज मन्दिरे देवी महासुकृतभूरिव ।।२६।।
*दशमे मासि फाल्गुरणे कृष्णैकादश्यां मासि चोत्तमे ।
ग्रहमिन्द्रो भूपगृहेऽवतरत्तेजसां निधिः ।।२७।।
त्रिज्ञानलोचनोद्भासी शुभलक्षणदीपितः ।
तपोनिधिः प्रसन्नात्मा भ्राजते स्म रविर्यथा ।।२८।।
तदैवावधितो शक्रो ज्ञात्वाऽवतरं प्रभोः ।
जयेत्युच्चार्य सहसा स देवस्तत्र चागमत् ।।२९।।
ततः प्रभुं समादाय सादरं भक्तिनम्रधीः ।
विमाने स्वाङ्कगं कृत्वा गतः स्वर्णाचलं मुदा ।।३०।।
शिलायां पाण्डुकाख्यायां ततस्संस्थाप्य तं प्रभुम् ।
चक्रे घटाभिषेकं स क्षीरोदधिजलैश्शुभैः ।।३१।।

ज्येष्ठ कृष्ण षष्ठी की रात्रि के अंत में, श्रवण नक्षत्र के रहते हुए, रानी नन्दा ने सोलह स्वप्न देखे और अंत में एक उन्मत्त हाथी को अपने मुख में प्रवेश करते हुए देखा। रानी जागृत होकर आश्चर्यचकित हुई। अनन्तर वह अपने मुँह को निर्मल पानी से धोकर पति के समक्ष गई और राजा से अपने स्वप्नों का फल उसने सुना। अपने गर्भ में उसने भावी तीर्थंकर बालक को धारण किया। रानी नन्दा अपने महल में महापुण्य की पृथ्वी के समान शोभित होने लगी। दशवें माह में, फाल्गुन कृष्ण एकादशी के दिन तेजोनिधि प्रभु राजगृह में अवतीर्ण हुए। तीन ज्ञान रूपी लोचनों से जानने वाले, शुभ लक्षणों से

* दशमे मासि—इति पाठभेदः ।

दीप्त, तपोनिधि तथा प्रसन्नात्मा प्रभु सूर्य के समान शोभायमान थे। उसी समय इन्द्र, प्रभु का जन्म हो गया है—ऐसा अवधि-ज्ञान से जानकर, प्रभु का जयकार करता हुआ तत्काल अन्य सर्व देवों सहित सिंहपुर नगर में आया। नम्रतापूर्वक प्रभु को लेकर वह मेरुपर्वत पर ले गया। वहाँ प्रभु को पाण्डुक-शिला पर स्थापन कर उत्तम क्षीर-समुद्र का जल कुंभों में भरकर उसने प्रभु का अभिषेक किया ॥२३-३१॥

पुनर्गन्धोदकस्नानं समाप्य विधिवन्मुदा ।
दिव्यैराभरणैर्देवं समाभूषयदद्भुतैः ॥३२॥
ततो जयध्वनिं कृत्वा पुनरायान् नृपालयम् ।
तत्र सम्पूज्य देवेशं चक्रे *ताण्डवमुत्तमम् ॥३३॥
श्रेयस्करत्वात् श्रेयानित्यभिधां त्रिजगद्गुरोः । (श्री)
कृत्वा मात्रे समर्प्यैनं गतस्स्वर्गं स वासवः ॥३४॥

पुनः, गन्धोदक स्नान समाप्त कर दिव्य वस्त्राभरणों से प्रभु को अलंकृत कर जयध्वनि के साथ प्रभु को नगर में वापस लाये। वहाँ पर इन्द्र ने प्रभु का पूजन कर ताण्डवनृत्य किया। तत्पश्चात्, जगद्गुरु प्रभु सम्पूर्ण संसार का हित करने वाले हैं, इसलिए इन्द्र ने बालक-प्रभु का नाम श्रेयांस रखा तथा बालक को माता की गोद में सोंपकर वापस स्वर्ग के लिए प्रस्थान किया ॥३२-३४॥

षट्षट्कोटि सम्प्रोक्त सागरेषु गतेषु वै ।
शीतलेशादभूच्छ्रेयान् तन्मध्ये प्राप्तजीवनः ॥३५॥
चतुर्युक्ताऽशीतिलक्षा वर्षायुरभवत्प्रभुः ।
चापाऽशीत्युन्नति बिभ्रद्दिवाकर जयीरुचिः ॥३६॥

* मेरुपर्वतोपरि कृतमिति महापुराणादिषु वर्तते ।

एकविंशतिलक्षायुः पर्यन्तं बालकेलिषु ।
आसक्तः स्वेच्छया देवः सुखं पित्रोर्ददौ महत् ।।३७।।
कुमारवयसि श्रीमान् रूपलावण्यसागरः ।
अशेषसुर-मर्त्यानां मनोहरदवेक्षणः ।।३८।।
नीतिशास्त्रप्रियोन्नीतीशास्त्राऽध्ययनतत्परः ।
नीतिशास्त्रोक्तकर्माणि नीतिविन्नीतिमाचरत् ।।३९।।
प्रजानुरागी सततं प्रजारक्षणकोविदः ।
प्रजासङ्गीतिकीर्त्याऽसौ प्रजानाथममोदयन् ।।४०।।
तारुण्यागमने तस्मै विष्णुभूपति सत्तमः ।
सर्वथा योग्यमालक्ष्य स्वयं राज्यं ददौ मुदा ।।४१।।
सम्प्राप्य पैतृकं राज्यं सिंहासनस्थितः प्रभुः ।
शुशुभेतितरां दीप्त्या देवेन्द्रं व्रीडयन्निव ।।४२।।

शीतलेश प्रभु के मोक्ष जाने के बाद ६६ कोटि सागर व्यतीत होने के बाद श्रेयांस प्रभु का जन्म हुआ । इन प्रभु का जन्म काल भी पूर्वोक्त अन्तर्गत समझना । प्रभु की आयु चौराशी लाख वर्ष थी तथा सूर्य के समान कान्ति से युक्त शरीर अस्सी धनुष प्रमाण ऊँचा था । प्रभु की आयु में से ३१ लाख वर्ष बाल्यकाल के रूप में माता-पिता को अपनी क्रीडाओं से आनंदित करते हुए व्यतीत हुए । बाल्यकाल की समाप्ति/कौमार्य अवस्था में पदार्पण करने पर प्रभु के सौन्दर्य रूपी समुद्र में मानो बाढ़ ही आ गई । उनके सौन्दर्य ने सर्व देवों व मनुष्यों के नेत्रों व मन को आकर्षित कर दिया । भगवन्त को नीति-शास्त्र भाता है, मानो नीति-शास्त्र का अध्ययन ही कर रहे हों—ऐसा भाषित होता था । नीति-शास्त्रानुसार आचरण करने से प्रभु का प्रजा पर प्रेम था । प्रभु प्रजा-रक्षण के कार्य में चतुर थे ।

प्रजा का प्रभु के साथ प्रेमयुक्त सम्बन्ध था। उनकी कीर्ति से प्रजानाथ राजा विष्णु को बहुत आनन्द हुआ। प्रभु अब तारुण्यावस्था में आ गये हैं व वे अब राज्य-पालन करने में पूर्ण समर्थ हैं—ऐसा जानकर राजा विष्णु ने अपना राज्य प्रभु को दे दिया; पिता के राज्य-सिंहासन पर आरूढ़ होकर प्रभु श्रेयांस अतिशय शोभित होने लगे, स्वयं की कान्ति से प्रभु ने देवेन्द्रों को भी लज्जित कर दिया ॥३५-४२॥

तस्य राज्येऽखिला पृथ्वी तस्करैर्वञ्चकैर्विना।
परमानन्दमन्वभूत् निर्भया निरुपद्रवा ॥४३॥
विपक्षाहतपक्षाश्च तं मत्वा विजयेश्वरम्।
सन्तारणोपायनीकृत्य शरण्यं शरणंगतः ॥४४॥
परैरखण्डितं राज्यं सम्प्राप्य जगदीश्वरः।
नरेन्द्रकन्यासहितः परमं सुखमन्वभूत् ॥४५॥
आद्विचत्वारिंशदष्टलक्षं सुखमयं नृपः।
कृत्वा राज्यं हतारातिर्वसन्ततुं समैक्षत ॥४६॥
प्रफुल्लान्भूरुहांस्तद्वत् फलितान्वीक्ष्य नित्यशः।
कुर्वन्ति कि(खि)लतान्येव सोऽपश्यच्च विवर्जितान् ॥४७॥

प्रभु के राज्य में सम्पूर्ण पृथ्वी ठगों व तस्करों से रहित तथा निर्भय व निरुपद्रव होकर परमानन्द का अनुभव करती थी। शत्रुओं का कोई सहारा न होने से वे भी प्रभु की शरण में आये। प्रभु ने उनका भी रक्षण किया। प्रभु को अनेक प्रकार की भेंट आती थी। शत्रुओं द्वारा खण्डित न किया गया होने से प्रभु का राज्य अखण्डित था। प्रभु ने अनेक राज-कन्याओं के साथ विवाह किया तथा अनेक उत्तम सुखों का अनुभव किया। बयालीस लाख वर्ष पर्यन्त प्रभु ने सुखपूर्वक राज्य

किया। राज्य को शत्रुओं से रहित करके प्रभु एक बार बसन्त ऋतु की शोभा देखने के लिए गये। प्रफुल्लित कमलों व फल-युक्त वृक्षों को मैं नित्य ही देखता हूँ, किन्तु यहाँ अब न तो प्रफुल्लित कमल ही हैं, और न फल-युक्त वृक्ष ही—ऐसा विचार प्रभु के हृदय में उत्पन्न हुआ ॥४३-४७॥

एवमेव जगत्सर्वमिति मत्वा स्वमानसे।
विरक्तोऽभूत्तदा श्रेयान् संसाराद्दुःखवारिधेः ॥४८॥

सारस्वतास्तदाऽगत्य तं दृष्ट्वा स्फारितेक्षणाः।
तुष्टुवुर्विविधैर्वाक्यैः वैराग्यरसगर्भितैः ॥४९॥

देवेन्द्रोऽपि जयेत्युक्त्वा तदागत्यानमत्प्रभुम्।
देवदेवीगणोपेतः शिरस्सन्धार्य भूतले ॥५०॥

देवोपनीतां विमलप्रभाख्यां शिबिकां प्रभुः।
समारुह्य तदैवाशु सहेतुकवनं ययौ ॥५१॥

तत्र दीक्षा विधानेन सिद्धान्समभिवन्द्य सः।
कृष्णैकादशिकायां स फाल्गुने श्रावणोडुनि ॥५२॥

जैनीं मुक्तिनिदानं सद्दीक्षां जग्राह तत्त्ववित्।
सहस्रप्रमितैर्भूपैः सार्धं भूत्वावधीक्षितः ॥५३॥

इसी प्रकार सर्व संसार है—ऐसा मन में समझकर तथा यह संसार दुःखों का समुद्र है—यह जानकर प्रभु संसार से विरक्त हुए। लौकान्तिक देवों ने आकर उन प्रभु को ज्ञान-नेत्रों से देखा व उनके वैराग्य की अनेक प्रकार से स्तुति की, पश्चात् स्वस्थान वापस चले गये। इन्द्र भी वहाँ पर उपस्थित हुआ। उसने प्रभु को नमस्कार कर, देव-देवियों सहित उसने अपने मस्तक को जमीन पर लगाया। उसके बाद देवोपनीत शिविका—

'विमलप्रभा' में प्रभु विराजमान हुए। उन्होंने सहेतुक वन में पहुँचकर सिद्ध-भगवन्तों को नमस्कार-पूर्वक, फाल्गुन कृष्ण एकादशी के दिन, श्रवण नक्षत्र में, मुक्ति की कारणभूत दीक्षा ग्रहण की। प्रभु के साथ एक हजार अन्य राजाओं ने भी दीक्षा ली ॥४८-५३॥

सिद्धार्थं स द्वितीयेह्नि भिक्षार्थं गतवान्पुरम् ।
नन्दिषेणाभिधो राजा तस्मै सद्भोजनं ददौ ॥५४॥
पुनर्वनं समासाद्य द्विवर्षावधिमौनभाक् ।
नानाशुचिप्रदेशेषु तपश्चक्रे सुदारुणम् ॥५५॥
घातिकर्ममहारण्यं तपोऽग्निज्वालया तदा ।
भस्मीचक्रे ततो मोहशत्रुक्षयमपि व्यधात् ॥५६॥
अमायां माघमासस्य तिन्दुकद्रुतले प्रभुः ।
लेभे स केवलज्ञानं मोक्षसंप्राप्ति कारणम् ॥५७॥
तदैवागत्य देवेन्द्रः सार्धं निखिलदैवतैः ।
प्रभोः समवसारोऽसौ रचयत्यमरोद्भुतम् ॥५८॥
कुन्थुसेनाविभिस्तत्र यथोक्तैः सर्वकोष्ठगैः ।
स्तुतः सम्पूजितो देवः स्वतेजोभिर्व्यभात्तराम् ॥५६॥

दूसरे दिन प्रभु आहार के लिए सिद्धार्थ नगर में गये। वहाँ नन्दिषेण राजा ने उन्हें आहार दिया। पश्चात्, पुनः वन में जाकर, प्रभु ने दो वर्ष तक का मौन धारण कर, नाना पवित्र प्रदेशों में घोर तपश्चरण किया और चारों घातिया कर्मों को तपोग्नि से भस्म कर, माघ कृष्ण अमावस्या के दिन, तेंन्दु वृक्ष के नीचे, मोक्षदायक केवलज्ञान को प्राप्त किया। उसी समय सर्व देवों के साथ इन्द्र ने आकर प्रभु के लिए, आश्चर्य-

कारक समवशरण की रचना की। बारह कोठों में विराजमान कुन्थुसेनादि गणधर आदिकों द्वारा स्तुति को प्राप्त प्रभु स्वतेज से अतिशय चमकने लगे ॥५४-५६॥

सम्पृष्टोऽयं गणेन्द्राद्यैस्तत्त्वं जिज्ञासुभिस्तदा ।
चक्रे स तत्त्वव्याख्यानं सार्वं सर्वप्रकाशकम् ॥६०॥
हर्षयन् दिव्यनिर्घोषात् सर्वांस्तत्त्वव्यवस्थितान् ।
व्यहरत्पुण्यदेशेषु परमानन्दसागरः ॥६१॥
आयुर्मासावशिष्टत्वं ज्ञात्वा संहृत्य तद्ध्वनिम् ।
सम्मेदपर्वतं प्राप सहस्रमुनिसंयुतः ॥६२॥
तत्र संकुलकूटेऽसौ स्थित्वा मासावधिः प्रभुः ।
महायोगसमारूढो सर्वकर्मक्षयंकरः ॥६३॥

गणधरादि जिज्ञासुओं द्वारा तत्त्व पूछे जाने पर प्रभु ने सर्वतत्त्व-प्रकाशक व सर्वजन-कल्याणकारी तत्त्वोपदेश किया। दिव्यध्वनि से सभी को आनन्दित करते हुए परमानन्द के सागर प्रभु ने पुण्य-प्रदेशों में विहार किया। एक माह आयु अवशिष्ट रहने पर प्रभु की दिव्यध्वनि बंद हो गई। तत्पश्चात् उन्होंने सम्मेदगिरि के सङ्कुलकूट पर आकर एक माह तक योग धारण कर सर्व (अवशिष्ट) कर्मों का क्षय किया ॥६०-६३॥

प्रतिमायोगमास्थाय श्रावणे पौर्णिमातिथौ ।
साधकैर्मुनिभिः सार्धं सुखं सिद्धालयं गतः ॥६४॥
षण्णवत्युक्तकोटीनां कोट्यस्तावत्य एव हि ।
कोटयषण्णवत्युक्ता लक्षौनवतिकार्द्धकम् ॥६५॥
सहस्राणि तथा पञ्च शतानि तदनन्तरम् ।
द्विचत्वारिंशितिश्चैवं गणिताः मुनिनायकाः ॥६६॥

प्रभोरनन्तरं तस्मात् कूटात्सङ्कुलनामकात् ।
तपस्तेजोऽर्करुचिराः सम्प्राप्ताः परमं पदम् ।।६७।।

प्रभु ने श्रावण शुक्ल पूर्णिमा के दिन योग धारण कर, साधक मुनियों के साथ में मोक्ष प्राप्त किया, सिद्धालय में गये। प्रभु के बाद इस सङ्कुलकूट पर से तप के तेज से सूर्य समान कान्तिमान् योगी, जिन्होंने मोक्ष प्राप्त किया है, उनकी संख्या छियानबे कोटि, छियानबे लक्ष, नब्बे हजार व पेंतालीस हजार पाँच सौ ब्यालीस है ।।६४-६७।।

तत्पश्चादानन्दिषेणाख्यो यात्रां चक्रे गिरेर्नृपः ।
तत्कथां पावनीं धीराः श्रृणुध्वं श्रद्धयान्विताः ।।६८।।

जम्बूमति शुभे क्षेत्रे भारते चार्यखण्डके ।
विषये नलिनाख्येति रम्यं कल्पपुरं महत् ।।६९।।

नृप आनन्दसेनोऽभूत् राज्ञी विजयसेनिका ।
सती लक्षणसम्पन्ना शरच्चन्द्रनिभानना: ।।७०।।

तया सह स धर्मात्मा स्वपूर्वकृतपुण्यतः ।
अभुञ्जत परं सौख्यं धर्मो हि सुखकारणम् ।।७१।।

एकदाथवने श्रुत्वा गुणभद्रं समागतम् ।
स्वामिनं शीलसम्पन्नं दृष्ट्वा केवलिनं ययौ ।।७२।।

महानुभावं गुणितं समीक्ष्यानन्दसेनकः ।
त्रिः परिक्रम्य तं भक्त्या नत्वा पुनरुवाच सः ।।७३।।

स्वामिन् ! निर्वाणकाङ्क्षा मे तदर्थं यतनं मुने ।
कष्टं कृत्वा तपः कर्तुमुत्सहे भवदाज्ञया ।।७४।।

ततः प्राह मुनिर्भूपं यदि निःश्रेयोऽभिवाञ्छसि ।
तर्हि सम्मेदशैलस्य यात्रां कुरु महामते ।।७५।।

त्वमस्मिन्नेव पर्याये मुक्तिं यास्यसि निश्चितम् ।
इति श्रुत्वा नन्दिषेणः तदैवानन्दभेरिकाम् ।।७६।।

अकारयत्स निर्घोषं संघपूजां विधाय च ।
दृढभक्त्या शिखरिणो यात्रां चक्रे महामतिः ।।७७।।

तत्र गत्वा सङ्कुलाख्यं ववन्दे कूटमुत्तमम् ।
पश्चाद्दिगम्बरो भूत्वा कोटिभव्यैः समन्वितः ।।७८।।

दीक्षितोऽयं दग्धकर्मा तपसा मुक्तिमाप सः ।
कोटयुक्त प्रोषधानां यत्फलं प्रोक्तं मुनीश्वरैः ।।७९।।

अनायासाल्लभेन्मर्त्यः तत्फलं सङ्कुलेक्षणात् ।
वन्दनात् सर्वकूटानां फलं हि कोऽनुवर्ण्यते ।।८०।।

श्रेयां यतः परम दुस्सहतीव्रतेजः ।
सूक्ष्मप्रदग्धनिखिलायतकर्मबन्धः ।।
मोक्षं जगाम बहुभव्य शिवं प्रदाता ।
श्रेयस्करो भवतु मे सततं स कूटः ।।८१।।

उसके बाद नंदिषेण राजा ने इस सम्मेदशिखर क्षेत्र की यात्रा की, उसकी कथा को श्रद्धा-सहित सुनो । इस जम्बूद्वीप के शुभ भरतक्षेत्र में नलिन नामके देश में एक रमणीय व विशाल नगर 'कल्पपुर' है । इस नगर का राजा आनन्दसेन अपनी रानी विजयसेना के साथ आनन्दपूर्वक रहता था । विजयसेना सती, सुलक्षण-सम्पन्न व शरद् ऋतु की पूर्णिमा के चन्द्र की भाँति सुन्दर मुखवाली थी । उस रानी के साथ वह धर्मात्मा राजा पूर्वकृत पुण्योदय से उत्तम सुखों को भोगता था । यह सही है कि धर्म ही सुख का कारण है । एक बार, आम्र वन में शील-सम्पन्न केवलज्ञानी गुणभद्र मुनि पधारे हैं—ऐसा जानकर राजा

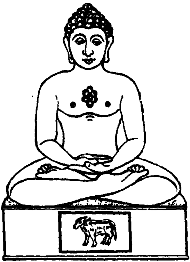
आनन्दषेण उन्हें देखने की अभिलाषा से वहाँ गया। उन प्रभावशाली मुनि को देखकर उसने तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार किया व कहने लगा—प्रभो ! मुझे मोक्ष की अभिलाषा है, मैं उसके लिए प्रयत्न करना चाहता हूँ, आपकी आज्ञा से कष्ट सहन कर तप करने के सामर्थ्य को मैं धारण करता हूँ। इसके बाद मुनिराज ने कहा—राजन् ! यदि तुम मोक्ष-प्राप्ति चाहते हो तो तुम सम्मेद-शैल की यात्रा करो। ऐसा सुनकर राजा आनन्दषेण ने तत्काल आनन्द भेरी बजवाई। तदनन्तर उसने संघ की पूजा कर दृढ़ भक्ति से सम्मेदशिखर की यात्रा की। उसने इस क्षेत्र के सङ्कुलवर कूट की वंदना की और कोटि भव्यों के साथ दिगम्बरी दीक्षा ले ली व तपस्या से कर्मों को दग्ध कर मोक्ष प्राप्त किया। इस कूट की यात्रा करने से कोटि प्रोषधोपवास का फल मिलता है—ऐसा मुनीश्वरों का वचन है। इस कूट के दर्शनों से यह फल अनायास ही प्राप्त हो जाता है। अतिशय दुःसह व्रत धारण कर कर्मों को जला दिया है जिसने, ऐसे श्री श्रेयांस जिनेश्वर जहाँ से मोक्ष पधारे, वह सङ्कुल कूट, जो अनेक भव्यों को मोक्ष देने में समर्थ है, मुझे सतत् श्रेयस्कर हों ॥६८-८१॥

इति दीक्षितब्रह्मदत्तविरचिते सम्मेदशैलमाहात्म्ये संकुलकूटवर्णनंनाम एकादशोऽध्यायः समाप्तः।

इस प्रकार 'सम्मेदशिखर-माहात्म्य' ग्रन्थ में सङ्कुलकूट का वर्णन करनेवाला ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।



वासु पूज्य भगवान की टोंक



वासुपूज्य जिन सिद्ध भए, चम्पापुर से जेह।
मन वच तन कर पूजहूं, थापित चरण सनेह ।।

ओ३म् ह्रीं श्री वासूपूज्य जिनेन्द्रादि चम्मापुर मंदारगिरि से एक हजार मुनि सिद्ध भए तिनके चरणारविन्द को मेरा मन वचन काय से बारम्बार नमस्कार हो जलादि अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।।१२।।

अथ द्वादशोऽध्यायः

विमलो ज्ञानसंपन्नो विमलो विमलद्युतिः ।
नाम्ना विमलनाथो नो कुरताद्विमलं मनः ॥१॥
धन्यो जिनस्त्वं विमलो धन्योऽसौ जैनधार्मिकः ।
धन्य इक्ष्वाकुवंशश्च धन्या सा काम्पिलापुरी ॥२॥
यद्वागादर्शमध्येऽत्र भासते निखिलं जगत् ।
तस्मै विमलनाथाय प्रणामो मे त्रिकालतः ॥३॥

जो विमलज्ञान से सम्पन्न, विमल द्युति-कान्ति से युक्त तथा नाम से भी विमल हैं, ऐसे विमलनाथ प्रभु हमारे मन को विमल करें। हे विमलनाथ जिनेश्वर! तुम धन्य हो और जैनधर्म को धारण करने वाले भी धन्य हैं। आपका इक्ष्वाकु वंश व आपकी जन्मभूमि कम्पिलापुरी भी धन्य हैं। जिनके वचन रूपी दर्पण में सारा जगत् प्रतिभासता है, दिखाई देता है, उन विमलनाथ को मेरा त्रिकाल नमस्कार हो ॥१-३॥

प्रसिद्धे धातकीखंडे मेरौ वीप्तेऽथ पश्चिमे ।
तत्पश्चिमे विदेहाख्यं क्षेत्रं परमयुत्तमम् ॥४॥
सरित्तत्रास्ति सीतोदा पवित्रतरवारिभृत् ।
तद्भागे दक्षिणे भाति महारम्येव पत्तनम् ॥५॥
पुरे तत्राऽभवद्राजा महानगरनामनि ।
पद्मसेनः सभिक्षूणां गीर्वाणतरुसन्निभः ॥६॥
स्वपूर्वजन्मसुकृतैः स्वमहिष्या समं प्रभुः ।
शक्रवद्बुभुजे स्वीयं राज्यं निहतकण्टकम् ॥७॥

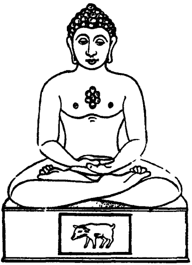
एकस्मिन्समये पीताम्बरं धृत्वा वने शुभे ।
बहुभिर्मुनिभिस्सार्धं पद्मसेनः समाययौ ॥८॥
श्रुत्वा तं मुनिशार्दूलं समायातं महाप्रभुम् ।
तद्वन्दनार्थं भूपालः प्रत्यगात्स जनैः समम् ॥९॥

प्रसिद्ध धातकी खण्ड में पश्चिम दिशा में दीप्ति-युक्त मेरु पर्वत है। उसके पश्चिम में अतिशय उत्तम विदेह क्षेत्र है। पवित्र जल से भरी सीतोदा नदी है, उसके दक्षिण भाग में 'रम्य' नामक एक देश है। उस देश के महानगर नामक गाँव में, मुनिजनों के लिए देववृक्ष समान पद्मसेन राजा था। पूर्व-जन्म के पुण्य से वह अपनी रानी के साथ इन्द्र समान निष्कण्टक राज्य का उपयोग करता था। एक समय उत्तम पीताम्बर वस्त्र धारण कर राजा पद्मसेन शुभ वन में आया। बहुत मुनियों के समूह के साथ एक महामुनि यहाँ आये हुए हैं, ऐसा उसने सुना। राजा अनेक सज्जनों के साथ उनको वंदन करने के लिए आया ॥४-९॥

तत्र गत्वाऽभिवन्द्यैनं चतुर्वर्गां कथां शुभाम् ।
धर्मार्थकाममोक्षाप्ति प्रयत्नवर गर्भिताम् ॥१०॥
श्रुत्वैव सत्सकाशाद्धि भवनिर्विण्णमानसः ।
जैनीं दीक्षां समुत्सह्य राज्ये पुत्रं नियोज्य च ॥११॥
अग्रहीच्छ्रुद्धयाङ्गानि धृत्वैकादश धैर्यवान् ।
अखिलाः जैनशास्त्रोक्ताः भावयामास भावनाः ॥१२॥
बद्धा स तीर्थकृद्गोत्रमन्त्ये संन्यासरीतितः ।
तपोनिधिस्तनुं त्यक्त्वा तपस्सुकृतसञ्चयात् ॥१३॥
सहस्रारे सुकल्पे स अहमिन्द्रो बभूव सः ।
अष्टादशसहस्रोक्तवर्षोपरि स मानसम् ॥१४॥



सुवीर कूट (संकुल कूट)



विमलनाथ जिनराज का, कूट सुवीर है जेह।
मन वच तन कर पूजहूं, शिखर सम्मेद यजेह ।।

ओ३म् ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्रादि मुनि ७० कोड़ा कोड़ी ६० लाख ६ हजार ७४२ मुनि इस कूट से शिवपुर पधारे तिनके चरणारविन्द को मेरा मन वचन काय से बारम्बार नमस्कार हो जलादि अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।।१३।।

इस टोंक की भाव सहित वन्दना करने से एक करोड़ उपवास का फल मिलता है ।

आहारमगृहीदष्टादशपक्षोपरि ध्रुवम् ।
अश्वसच्छ्वान्वमूत्तत्र दिव्योद्भवसुखं परम् ॥१५॥
सर्वकार्यक्षमो देवः स्वावधेश्च प्रमाणतः ।
सिद्धस्मरणकृत्तत्र सिद्धबिम्बसमर्चकः ॥१६॥

उनके पास जाकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्ति के प्रयत्न से गर्भित चतुर्वर्ग की कथा को राजा ने सुना और वह विरक्त हो गया। उसने अपना राज्य अपने पुत्र को दे दिया और उत्साह से जिन-दीक्षा ली। उसने ग्यारह अंगों का पाठी होकर व सर्व जैन शास्त्रों में वर्णित दर्शन-विशुद्धयादि सोलह भावनाओं का चिन्तवन करके तीर्थंकर-प्रकृति का बंध किया। उस तपोनिधि ने मरण समय सन्यास धारण कर शरीर का त्याग किया व तपश्चरण के पुण्य-संचय से सहस्रार स्वर्ग में देवेन्द्र हुआ। वहाँ पर उसकी आयु अठारह सागर की थी। वह अठारह हजार वर्ष बाद मानसाहार करता था तथा अठारह पक्ष उपरान्त श्वासोच्छ्वास लेता था। वहाँ पर देवियों का शारीरिक संभोग नहीं रहने से ब्रह्मचर्य-सुख का अनुभव लेता था। वह देव सर्व कार्य करने में समर्थ था। वह वहाँ स्वर्ग में सिद्धों का स्मरण तथा सिद्ध-बिम्बों का पूजन किया करता था ॥१०-१६॥

आसीत्तत्र सुखेनाऽसौ षण्मासावधिजीवनः ।
तस्यावतारचरितं श्रवणात् कल्मषापहम् ॥१७॥
वक्ष्ये संक्षेपरीत्याहं श्रृणुध्वं पुरुषोत्तमाः ।
जम्बूनाम्नि महाद्वीपे भरतक्षेत्र उत्तमे ॥१८॥
विद्युत्तरायां शुभ्रासाकाम्पिलाख्या महापुरी ।
कृतवर्मा महीपालः तां स्नेहात्परिपालयन् ॥१९॥

जयश्यामाभिधा तस्य राज्ञी लोकेतिविश्रुता ।
भविष्यदवतारे वै तस्य देवस्य निर्मलम् ।।२०।।

जब उस देव की आयु छह माह ही बाकी रही, इस भूमि पर आने वाले प्रभु का चरित्र पापों का नाश करने वाला है— यह मानकर, हे पुरुषोत्तमो ! वह कथा में संक्षेप से कहता हूँ, सो तुम सुनो। इस जम्बूद्वीप के उत्तम भरत क्षेत्र के अन्दर उत्तर दिशा में शुभ काम्पिल्य नगर है। कृतवर्मा नामक राजा स्नेह से उस नगरी का पालन करता था। उसकी जय-श्यामा नाम की रानी थी, जिसके पेट से भावी विमलनाथ प्रभु का अवतार होने वाला है ।।१७-२०।।

बुद्ध्वा धनेशं तत्राऽसौ सौधर्मेन्द्रस्समादिशत् ।
इन्द्राज्ञप्तस्स यक्षेन्द्रः क्षितीशागर (गृह) उत्तमे ।।२१।।

उस रानी के गर्भ में भगवान आने वाले हैं, ऐसा जानकर सौधर्मेन्द्र ने कुबेर को आज्ञा दी, इन्द्र से आज्ञप्त कुबेर ने यक्षेन्द्र को आदेश देकर राजा के घर रत्नवृष्टि करने को कहा ।।२१।।

षाण्मासिकीं रत्नवृष्टिं चकार प्रमदोद्गमात् ।
ज्येष्ठकृष्णदशम्यां सा जयश्यामा नृपप्रिया ।।२२।।

प्रसुप्ताहर्मुखे स्वप्नान् षोडशैक्षत् तान् शुभान् ।
स्वप्नान्ते सिन्धुरं वक्त्रे प्रविशन्तं मदोद्धतम् ।।२३।।

संवीक्ष्योन्मील्य नयने प्रबुद्धाथ (थ) समुत्थिता (स्थिता)
मुखं प्रक्षाल्य विधिवत्सुगन्धितजलेन सा ।।२४।।

पत्युस्समीपमगमत्तान् स्वप्नान् सम्प्रभाषितुम् ।
अगच्छत्सावरं तेनेत्युक्त्वा तत्रोपविश्य सा ।।२५।।

स्वप्नान्निवेद्य चापृच्छत् फलं तेषां सुविस्मिता ।
श्रुतस्स्वप्नो महीपालः सुखाश्रुकलितेक्षणः ।।२६।।

देवीं प्राह श्रृणु प्राज्ञे ! तव गर्भे जगत्पतिः ।
नूनं समागतस्तेन सत्पुत्रा (त्रं) त्वं भविष्यसि ।।२७।।

श्रुत्वेति हृदि सा लेभे सुखं यद्वागगोचरम् ।
गर्भाऽगतेन सा देवी प्रभुणाभान् नृपालये ।।२८।।

मुक्तिमूर्तिमतीबन्धं परमानन्दगर्भिता ।
अथ माघचतुर्दश्यां शुक्लायां उत्तरादिमे ।।२९।।

भाद्रे प्रसूतिभवने देव्यां देवोऽभ्यजायत ।
सर्वागमैर्गते कीर्तिस्त्रिज्ञानसहितः प्रभुः ।।३०।।

देव्यामधृत ईशानः प्राच्यामिव दिवाकरः ।
तदागत्य सुरेशानः तं वेवं देवतार्चितम् ।।३१।।

स्वाङ्गैः कृत्वाऽगतो मेरुं स्वर्देवो जयघोषयन् ।
तत्र क्षीरोदवारिभिः प्रपूर्णैर्हेमकुम्भकैः ।।३२।।

देवमस्नापयद्भक्त्या दिव्यगन्धोदकैस्ततः ।
आवृत्याभरणैर्दिव्यैरथ तं बालमीश्वरम् ।।३३।।

छह माह पर्यन्त राजगृह के आंगन में रत्नवृष्टि हुई, जिसने सभी को आनन्दित किया। ज्येष्ठ कृष्ण दशमी के दिन सोती हुई रानी जयश्यामा ने सोलह स्वप्न देखे व उन स्वप्नों के अन्त में एक उन्मत्त हाथी को मुख में प्रवेश करता हुआ देखा। निद्रा से जागृत रानी सुगन्धित जल से मुँह धोकर अपने पति के पास गई। राजा ने आदरपूर्वक उसे आसन दिया तथा स्वप्न सुने। स्वप्नों को सुनकर आश्चर्यचकित होकर राजा ने उनके फल का विचार किया। उसके नेत्रों से आनन्दाश्रु बहने लगे। उसने

रानी से कहा—बुद्धिमती ! तुम्हारे गर्भ में जगत्पति आये हैं। उनके आने से तुम पुत्रवती होगी। अपने पति के मुख से ऐसी बात सुनकर रानी को शब्दातीत आनन्द हुआ। गर्भ में आये हुए प्रभु से युक्त वह रानी आनन्दपूर्वक महलों में रहने लगी। माघ शुक्ला चतुर्दशी के दिन (उ० पु०—माघ शुक्ल चतुर्थी) उत्तरा नक्षत्र में रानी को प्रसूति हुई, देव का अवतरण हुआ। सर्वागमज्ञ प्रभु तीन ज्ञानों के धारक थे। जन्म होते ही सौधर्मेन्द्र अपने परिवार के साथ में आया व जयघोष करके उसने प्रभु को मेरुपर्वत पर ले जाकर भक्ति से क्षीर-समुद्र के जल से भरे १००८ कलशों से अभिषेक किया। उसके बाद दिव्य गंधोदक से पुनः अभिषेक कर प्रभु को वस्त्राभूषणों से भूषित किया ॥२२-३३॥

काम्पिलामगमद् भूपः पुरुहूतः स सामरः ।
नृपाङ्गणे दिव्यपीठे समारोप्य जगत्पतिम् ॥३४॥

नत्वा सम्पूज्य तस्याग्रे देवेन्द्रस्ताण्डवं व्यधात् ।
सर्वार्थविमलत्वात्तद्विमलाख्यां विधाय सः ॥३५॥

मातुरङ्के प्रभुं कृत्वा गतोऽसौ देवतालयम् ।
मुक्तिगते वासुपूज्ये त्रिंत्रिंशत्सागरोपरि ॥३६॥

तदभ्यन्तरजीवी स विमलोऽभान्नृपालये ।
षष्टी चापमितोत्सेधः षष्टिलक्षाप्तजीवनः ॥३७॥

जाम्बूनदप्रभः श्रीमान् विविधैर्बालचेष्टितैः ।
पितरौ मोदयामास भाग्यसिन्धुर्जगत्प्रभुः ॥३८॥

कुमारकालकं पञ्चदशलक्षोक्तवत्सरान् ।
व्यतीयुरस्याथ तनुः प्राप्ते तारुण्य उत्तमे ॥३९॥

कृतवर्मा ददावस्मै राज्यं राज्यभरालसः ।
राजसिंहासने देवो देवमानवसेवितः ।।४०।।

इसके बाद इन्द्र प्रभु को लेकर सर्व देवों के साथ काम्पिल्य नगरी में वापस आया। राजा के आंगन में दिव्य आसन पर प्रभु को बैठाकर, नमस्कार व पूजा कर इन्द्र ने उनके समक्ष दिव्य ताण्डव नृत्य किया; सर्वार्थ से विमल होने के कारण प्रभु का नाम विमलनाथ रखा तथा प्रभु को माता की गोद में रखकर देवों के साथ स्वर्ग वापस चला गया। वासुपूज्य प्रभु के मोक्ष जाने के बाद तेतीस सागर बीत जाने पर विमलप्रभु का जन्म हुआ, विमलनाथ की आयु भी इसी में अन्तर्भूत है। उनके शरीर की ऊँचाई साठ धनुष प्रमाण थी तथा आयु साठ लाख वर्ष। उनके देह का वर्ण स्वर्ण-समान था। भाग्य-सिंधु जगत्पति ने नाना प्रकार की बाल क्रीडाओं से माता-पिता को आनन्दित किया। प्रभु का कुमार-काल—पन्द्रह लाख वर्ष बीत जाने के बाद श्री कृतवर्मा राजा ने राज्यभार प्रभु को अर्पित कर दिया। राज्यभार से सहित तथा देवों व मानवों द्वारा सेवित प्रभु राज्यसिंहासन पर शोभायमान होने लगे ।।३४-४०।।

शशास पृथिवीं कृत्स्नां निर्विपक्षां स नीतिमान् ।
सम्यक्त्वराज्यभोगं च विचित्रैः वस्त्ररत्नकः ।।४१।।
तुषारपटलं वीक्ष्य विरक्तस्तत्क्षणादभूत् ।
हष्टनष्टहिमानीव हष्टनष्टमिदं जगत् ।।४२।।
विचार्य मोक्षसंसिद्धयै विरक्तो देहभोगतः ।
तदा लौकान्तिकाः देवाः स्वमागत्य जगत्पतिम् ।।४३।।
प्रशस्य विविधैर्वाक्यैः मुदमापुस्तवीक्षणात् ।
सदेवः देवराजोऽपि प्रभोरन्तिकमागतः ।।४४।।

श्री विमलनाथ प्रभु ने, शत्रु-रहित सम्पूर्ण पृथ्वी का पालन किया। प्रभु नीतिवान् थे। नाना प्रकार के वस्त्र, रत्नादिक पदार्थों के साथ उन्होंने राज्य का उपभोग किया। उनके राज्य-भोग के पदार्थ सम्यक् थे, अनीति-युक्त नहीं थे। एक समय, देखते ही नष्ट हो गया—ऐसा हिमपटल देखकर, यह संसार भी इसी तरह देखते ही नष्ट हो जाने वाला है—ऐसा विचार कर, मुक्ति की प्राप्ति के लिए प्रभु संसार, शरीर व भोगों से विरक्त हो गये। उसी समय लौकान्तिक देवों ने आकर जगत्पति विमलप्रभु की नाना वाक्यों से प्रशंसा की। उन्हें प्रभु के दर्शनों से आनन्द हुआ। उसी समय इन्द्र प्रभु के पास आया ॥४१-४४॥

उच्चरञ्जयनिर्घोषं प्रवन्द्य विमलं प्रभुम् ।
देवोपनीतां शिबिकां देवदत्ताभिधां ततः ॥४५॥
समारुह्य जगद्बन्धुः सहेतुकवनं ययौ ।
माघशुक्लचतुर्थ्यां स जन्मर्क्षे क्षितिनायकैः ॥४६॥
सहस्रसंमितैस्सार्धं विधिवद्दीक्षितोऽभवत् ।
अन्तर्मुहूर्ते तत्रैव चतुर्थज्ञानभागभूत् ॥४७॥
द्वितीयेऽह्नि स भिक्षार्थं नन्दनं पुरमभ्यगात् ।
तं समागतमालोक्य जयाख्यो नृपसत्तम ॥४८॥
आहारमस्मै पंचासौ दत्वाश्चर्याण्यवाप च ।
त्रिवर्षमौनमास्थाय ततः स मुनिराट् प्रभुः ॥४९॥
महाघोरतपस्तेपे विविक्तासनसंस्थितः ।
घातिकर्मक्षयान्माघशुक्लषष्ठ्यां महाप्रभुः ॥५०॥
जम्बूवृक्षतले सोऽभूत् केवलावगमी तदा ।
ततः समवसारेऽसौ चक्राविसुरनिर्मिते ॥५१॥

विभ्राजमानप्रभया तरुणार्क इवाबभौ । (भ)
ततः मन्दि (न्द) रसेनाद्या यथासङ्ख्याप्रमाणिताः ।।५२।।
तदा द्वादशकोष्ठेषु स्थिता देवार्चने रताः ।
सादरं भव्यकैः पृष्ट तत्वाज्जित्वा सुभिः प्रभुः ।।५३।।
चक्रे दिव्यध्वनिं मोहध्वान्तक्षपणको विदम् । (दः)
हर्षयंस्तेन भव्यौघान् पुण्यक्षेत्रेष्वसौ विभुः ।।५४।।
विजहार महानन्दसिन्धुर्भव्य जनार्चितः ।
एकमासप्रमाणं स्वमायुस्सम्बुध्य भव्यराट् ।।५५।।
संहृत्य दिव्यनिर्घोषं सम्मेदाचलमाययौ ।
महामोहजयी देव ! शुक्लध्यानपरायणः ।।५६।।
वीरसङ्कुलकूटात्स सहस्रमुनिसंयुतः ।
आषाढविशदाष्टम्यां निर्वाणपदमाप्तवान् ।।५७।।

इन्द्र ने प्रथमतः जय-जयकार करके, तदनन्तर नमस्कार किया। देवों द्वारा लाई गई 'देवदत्ता' नामक पालकी में बैठकर प्रभु सहेतुक वन में गये। माघ शुक्ल चतुर्थी के दिन उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में एक हजार राजाओं के साथ प्रभु ने विधिपूर्वक दीक्षा ले ली। दीक्षा लेने के बाद अन्तर्मुहूर्त में ही प्रभु को मनःपर्ययज्ञान हो गया। दूसरे दिन प्रभु आहार के लिए नन्दनपुर में गये। वहाँ प्रभु को देखकर जय नामक राजा ने उन्हें आहार दिया। उसके प्रभाव से पञ्चाश्चर्य वृष्टि हुई। भगवान ने तीन वर्ष पर्यन्त मौनपूर्वक विहार करते हुए उग्र तप किया। एकान्त स्थान में उन्होंने ध्यान किया। माघ शुक्ल षष्ठी के दिन महाप्रभु ने घातिया-कर्मों को नष्ट कर जामुन के वृक्ष के नीचे केवलज्ञान प्राप्त किया। इन्द्र ने समवशरण की रचना की। प्रभु स्व-कान्ति से तरुण सूर्य के समान शोभित होने लगे।

समवशरण में बैठे हुए मन्दरसेन गणधरादिक ऋषिगण तथा देवादि—सभी प्रभु की पूजा-स्तुति में तत्पर थे। भव्यों द्वारा आदरपूर्वक प्रश्न पूछे जाने पर प्रभु की दिव्यध्वनि प्रगट हुई। वह दिव्यध्वनि भव्यों के मोह का नाश करने में समर्थ थी। भव्यों को आनन्दित करने वाले प्रभु ने अनेक देशों में विहार किया। महानन्दसागर, भव्य-पूजित प्रभु की आयु जब एक माह अवशिष्ट रही, तब वे सम्मेदगिरि पर आये। दिव्यध्वनि को बंद कर, महामोह को जीतने वाले प्रभु ने शुक्लध्यान में परायण होकर, संकुलकूट से एक हजार मुनियों के साथ आषाढ़ शुक्ल अष्टमी (उ० पु०—आषाढ़ कृष्ण अष्टमी) के दिन मुक्ति प्राप्त की ॥४५-५७॥

तत्पश्चात् सप्ततिः प्रोक्ता कोट्यः षट्युक्तलक्षकाः ।
षट्सहस्राणि सप्तैव शतानि कथितानि च ॥५८॥
द्विचत्वारिंश इत्युक्ता भव्यात्कूटात्ततः शुभाः ।
सुबन्धुमुनयः प्राप्तास्तपसा दग्धकल्मषाः ॥५९॥
केवलज्ञानसम्पन्ना घातिकर्मक्षयात्परम् ।
ततः सुप्रभनाम्ना वै सङ्घभक्तिः कृता कृता ॥६०॥
यात्रा सम्मेदशैलस्याऽनन्तशक्तिरभूदसौ ।
तत्कथां कर्णसुखदां श्रवणात्पातकापहाम् ॥६१॥
वक्ष्येऽहं निर्मलैश्लोकैः श्रृणुध्वं निर्मला जनाः ।
जम्बूद्वीपेऽत्र पूर्वोस्मिन् विदेहे प्रथिता नदी ॥६२॥
सीताख्या तत्र देशोस्ति कच्छनामाधिमो महान् ।
मनोरमापुरी तत्र नाम्ना या विप्रकावति ॥६३॥

विमलप्रभु के मोक्ष जाने के पश्चात् इस संकुलकूट से सत्तर करोड़, साठ लाख, सात सौ चालीस मुनियों ने तप से पातकों

को नष्ट कर तथा घातिकर्मों का क्षयकर, केवलज्ञानी होकर मोक्ष प्राप्त किया। उसके बाद सुप्रभ नामक राजा ने संघ-भक्ति करके सम्मेदगिरि की यात्रा की, जिससे वह अनन्त-शक्ति वाला हुआ। उसकी निर्मल कथा, जो कानों को सुखप्रद तथा पापों को नष्ट करने वाली है, मैं श्लोकों में कहता हूँ। हे निर्मल सज्जनो! उसे सुनो। इस नदी के किनारे पर कच्छ नामक समृद्ध देश है। उस देश में विप्रकावती नामक एक मनोहर नगरी है ॥५८-६३॥

तस्यां वैश्रवणो राजा बभूव सुकृती महान् ।
विजयन्तो तस्य राज्ञी शोभिता स्वीयसद्गुणैः ॥६४॥

रूपशीलवती तद्वत् महागुणवतीप्यभूत् ।
राजा विजयसेनाख्य एकदा केनचित्तदा ॥६५॥

हेतुना तं प्रति क्रोधात् प्राप्ते वैश्रवणं नृपम् ।
तेन वैश्रवणं सार्धं संयुध्य सह सेनया ॥६६॥

पराजयं गतः क्रोधात् तप्तो दीक्षां समग्रहीत् ।
आयुष्यान्ते तनुं त्यक्त्वा चतुर्थं स्वर्गमेयसः ॥६७॥

सम्प्राप्य देवतारूपः तत्रास्थात् स्वकृताच्छुभात् ।
तस्माच्च्युतो मालवाख्ये सुदेशेऽवन्तिकापुरे ॥६८॥

रुद्रदत्तो भवेद्राजा बलवान् मतिमांस्तथा ।
सुधर्माख्या तस्य राज्ञी तद्विसंयोगतस्तदा ॥६९॥

पुत्रः सुप्रभनामासीत् कान्त्या शशिसमप्रभः ।
सुरूपवान् शीलवांश्च ज्ञानवांस्तेजसान्निधिः ॥७०॥

तपस्वी गुणगम्भीरः साहसी वीरवन्वितः ।
धैर्यवानेकदा भूपः सुप्रभो मुनिमागतम् ॥७१॥

सुधर्माख्यं निशम्याथ गतस्तद्वन्दनाय सः ।
अभिवन्द्य स्तुतिं कृत्वा पपृच्छय मुनिसत्तमम् ।।७२।।

क्व गामिनो मुनीशान भव्याः संसारिणस्तथा ।
अचिरं मोक्षसंल्लब्धिः कथं वद महामुने ।।७३।।

इस नगरी में वैश्रवण राजा राज्य करता था वह महान् पुण्यवान् व उत्तम विद्वान् था। उसकी रानी का नाम विजयन्ती था। वह पातिव्रतादि गुणों से तथा रूप व शील से युक्त थी। एक बार विजयसेन नामक राजा ने किसी कारणवश क्रोधित होकर राजा वैश्रवण से युद्ध किया। वैश्रवण पराजित हो गया। उसने खेद-खिन्न होकर दीक्षा ले ली। आयुष्य के अन्त में शरीर त्याग कर वह चौथे माहेन्द्र स्वर्ग में उत्पन्न हुआ। आश्चर्य-कारक पुण्य से वह महर्धिक देव हुआ। वहाँ की आयु बीत जाने पर वह मालवा देश की अवन्ति नगरी में रुद्रदत्त नामक बलवान व बुद्धिमान राजा हुआ। उसकी रानी का नाम सुधर्मा था। इन दोनों से सुप्रभ नामक पुत्र हुआ। जो कान्ति में चन्द्रमा के समान था। साथ ही वह रूपवान्, शीलवान्, ज्ञानवान्, तेज-युक्त, तपस्वी, गुण-गम्भीर, साहसी, वीरों द्वारा पूजित तथा धैर्यवान् भी था। एक समय, सुधर्म नामक मुनिराज के आने का समाचार सुनकर राजा सुप्रभ उनकी वंदना के लिए गया। उसने उन्हें वंदन कर, स्तुति कर प्रश्न पूछा कि— हे प्रभो! ये संसारी, किन्तु भव्य कहाँ जायेंगे और उन्हें शीघ्र मोक्ष की प्राप्ति कैसे होगी, सो कहो ।।६४-७३।।

तच्छ्रुत्वा मुनिराहैनं श्रृणु नृपतिसत्तम ! ।
संसारिणोऽत्र ये जीवास्ते वै गतिचतुष्टयम् ।।७४।।

भव्याः मोक्षपदं प्राप्य प्राप्नुवन्ति न संशयः ।
सम्मेदगिरियात्रातः सत्वरं मुक्तिराप्यते ।।७५।।

सुगमं मुक्तिमार्गं स इति ज्ञात्वा जहर्ष सः ।
एकार्बुदं चतुरशीति कोटिसम्मित जीवकैः ।।७६।।

सहितः संघभक्तोऽसौ सम्मेदगिरिमभ्यगात् ।
तत्राभ्यवन्दत नृपः तत्कूटं वीरसङ्कुलम् ।।७७।।

सम्पूज्य विधिवद्भक्त्या जैनीं जग्राह दीक्षिकाम् ।
एकार्बुदनवप्रोक्ता कोटिभव्यैः समं गतः ।।७८।।
शास्त्रोक्तविधिना घोरं तपः कृत्वाऽष्टकर्मणाम् ।
नाशं कृत्वा हि कूटात्ते सानन्दं मुक्तिमाप्नुवन् ।।७९।।

राजा सुप्रभ के प्रश्न को सुनकर मुनि ने कहा—राजन् ! चारों गतियों—देव, मनुष्य, पशु व नरक में रहने वाले जीव संसारी हैं; उनमें से जो भव्य हैं वे नियम से मुक्ति प्राप्त करते है। सम्मेदगिरि की यात्रा से मुक्ति शीघ्र ही प्राप्त होती है। उस पर्वत की वंदना करना सुगम मुक्ति का मार्ग है—ऐसा जानकर राजा सुप्रभ आनन्दित हुआ। एक अरब, चौरासी करोड़ भव्यों को लेकर, संघ-भवन राजा सुप्रभ सम्मेद-पर्वत की यात्रा करने को निकला। वहाँ उसने वीर-संकुल नामक कूट की वंदना की। पूजा-विधि अनुसार उसने उस क्षेत्र व उस वीर संकुल कूट की पूजा की। अनन्तर उसने वहीं दीक्षा लेकर तपश्चरण किया व कर्मों का नाश कर एक अरब, नौ करोड़ भव्यों के साथ मोक्ष प्राप्त किया।।७४-७९।।

यतो गतः श्री विमलेश्वरः शिवम् ।
तदन्विता वै बहुवर्शिवालयम् ।।

सुभक्तिमुक्तिप्रदमर्चनाद् ध्रुवम् ।
नमामि कूटं किल वीरसङ्कुलम् ॥८०॥

जिस वीर-संकुल कूट से सुखदायक विमलनाथ मोक्ष को गये, उस कूट से ही उनका अनुसरण कर अनेक भव्यों ने भी मोक्ष प्राप्त किया है। वंदकों को यह कूट व्यक्त रूप से मुक्ति-प्रदान करने वाला है—ऐसा मानकर मैं इस कूट की वंदना करता हूँ ॥८०॥

इति श्रीदीक्षितब्रह्मनेमिदत्तविरचिते सम्मेदशिखर-माहात्म्ये वीरसङ्कुलकूटवर्णनंनाम द्वादशोऽध्यायः समाप्तः ।

इसप्रकार सम्मेदशिखर माहात्म्य ग्रन्थ में वीर-संकुल कूट का वर्णन करने वाला बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।



अथ त्रयोदशोऽध्यायः

अनन्तगुणसम्पन्नमनन्तज्ञानसागरम् ।
अनन्तसुखभोक्तारमनन्तजिनमाश्रये ॥१॥

स्वयम्भूनामकूटाद्यो गतः सिद्धालयं प्रभुः ।
तत्कथापूर्वकं तस्य कूटं स्तोष्ये यथामतिः ॥२॥

प्रसिद्धे धातकीखण्डे पूर्वमेरौ महान्किल ।
दुर्गदेशोऽस्ति विख्यातो तत्रारिष्टपुरं महत् ॥३॥

तस्य पद्मरथो राजा गुणज्ञो गुणवान् स्वयम् ।
महाप्रतापवानासीदनेकनृपसंस्तुतः ॥४॥

पूर्वजन्मोद्भवैः पुण्यैः राज्यं प्राप्य महानृपः ।
अकरोत् राज्यभोगं स देवेन्द्रसमवैभवम् ॥५॥

एकस्मिन्समये प्राप्त तीर्थकर्ता स्वयम्प्रभः ।
अभिवन्द्यार्च्य तं राजा यतिधर्मान् स पृष्टवान् ॥६॥

श्रुत्वा तन्मुखचन्द्राच्च यतिधर्मान् सुनिर्मलान् ।
मिथ्यात्ववर्जितो राजा विरक्तस्सम्बभूव सः ॥७॥

तदा धनरथायासौ राज्यं दत्वात्मपुत्राय ।
वनं गत्वा तपोदीक्षां जग्राह परमार्थवित् ॥८॥

एकादशाङ्गभृद्धीरो भावयित्वा सभावनः ।
बबन्धतीर्थकृद्गोत्रं कर्मासौ स्वतपोबलात् ॥९॥

अन्ते संन्यासविधिना तनुं त्यक्त्वा च धैर्यवान् ।
स्वात्मध्यानबलान्मोहवीरारिं स विजित्य च ॥१०॥

शुद्धचित्तो हि षोडशे कल्पे जज्ञे सोऽच्युतनामनि ।
पुण्यादिन्द्रत्वमापेदे पुष्पोत्तरविमानगः ॥११॥

जो अनन्त गुणों के परिपूर्ण सागर हैं तथा जो अनन्त सुखों के भोक्ता हैं, उन चौदहवें अनन्तनाथ जिन को मैं आश्रय करता हूँ, अर्थात् उनकी शरण में जाता हूँ। अनन्तनाथ जिनेश्वर की, जो सम्मेदगिरि के स्वयंभू कूट से मोक्ष पधारे हैं, कथा को मैं अपनी मति अनुसार कहता हूँ तथा उस कूट का वर्णन करता हूँ। प्रसिद्ध धातकीखण्ड के पूर्वदिशा में दुर्ग नाम का एक देश है। उस देश में अरिष्ट नामक एक बड़ा नगर है। वहाँ, गुणों का स्वरूप जानने वाला होने से स्वतः गुणवान् रथ नामक राजा राज्य करता था। उसके अतिशय पराक्रमी होने के कारण अनेक राजा उसके पराक्रम की स्तुति करते थे। पूर्वजन्म में किये पुण्य के उदय से इस राजा को इन्द्र समान वैभव व राज्य प्राप्त हुआ था। वह अनेक प्रकार के राज-सुखों को भोगता हुआ सुख से समय बिता रहा था। एक बार स्वयंप्रभ नामक मुनि आये। राजा भी उनके दर्शन के लिए गया। वहाँ उसने मुनि को वंदन कर उनसे यतिधर्म का स्वरूप पूछा। मुनिराज के मुख से निर्मल यतिधर्म का स्वरूप सुनकर राजा मिथ्यात्व-रहित हो गया। उसे संसार से विरक्ति हो गई। आत्मा का स्वरूप जानने वाले राजा ने अपने पुत्र धनरथ को राज्यभार सौंपकर, वन में जाकर मुनि-दीक्षा ले ली। उसने ग्यारह अंगों का पाठी होकर, दर्शनविशुद्धयादि सोलह भावनाओं को भाकर तीर्थंकर नामकर्म नामक महापुण्य प्रकृति का बंध किया। आयु के अन्त में सन्यास धारण कर शुद्धचित्त हो, वह धर्मज्ञ, पद्मरथ मुनि सोलहवें स्वर्ग के अच्युत स्वर्ग में पुष्पोत्तर विमान में इन्द्र हुआ ॥१-११॥

द्वाविंशतिसमुद्रायुः सम्प्राप्य सुरसत्तमः ।
द्वाविंशतिसहस्राब्दपरं सोऽभून्मनोऽशनः ॥१२॥

द्वाविंशत्युक्तपक्षेषु गतेषूच्छ्वासमग्रहीत् ।
दिव्यस्वर्गीयसौख्यास्स प्रोत्फुल्लवदनाम्बुजः ॥१३॥

वहाँ पर उसकी आयु बाबीस सागर वर्षों की थी। वह सर्व देवों में श्रेष्ठ था। वह २२ हजार वर्ष के बाद मानसिक आहार ग्रहण करता था तथा २२ पक्ष बीतने पर श्वासोच्छ्वास लेता था। स्वर्गों के दिव्य सुखों को भोगता हुआ वह प्रफुल्लित कमल के समान दिखाई देता था ॥१२-१३॥

स्वावधिज्ञानक्षेत्रेषु सर्वकार्यकृतिक्षमः ।
अनक्षसिद्धान्सन्ध्यायत् षण्मासायुर्बभूव सः ॥१४॥

अथ तस्यावतारस्य कथां श्रवणसौख्यदाम् ।
कलुषघ्नीं प्रवक्ष्येऽहं महासुकृतवर्धिनीम् ॥१५॥

जम्बूद्वीपे पुण्यभूमौ क्षेत्रे भारत उत्तमे ।
कोशले विषयेऽयोध्या त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥१६॥

तस्यामिक्ष्वाकुसद्वंशे काश्यपे गोत्र उज्ज्वले ।
सिंहसेनोऽभवद्राजा महापुण्यसरित्पतिः ॥१७॥

जयश्यामा तस्य राज्ञी राज्ञः तारा शशिप्रभा ।
महासुशीलसन्दीप्ता रूपसौभाग्यशालिनी ॥१८॥

तयोर्गृहे श्रीभगवदवतारं च भाविनम् ।
ज्ञात्वा शक्राज्ञयाऽमुञ्चद्धनदो रत्नसंचयम् ॥१९॥

षाण्मासिकीं रत्नवृष्टिं तदा पौरा हि सांततीम् ।
विस्मिता भावि सद्भद्रनृपगेहं प्रपेदिरे ॥२०॥

अवधिज्ञान से वह जितने क्षेत्र को जानता था, उतने क्षेत्र में वह सर्व कार्य करने में समर्थ था। अनादिसिद्धों का चिन्तवन

नियम से नित्य ही करते रहने में उसकी बाबीस सागर वर्ष की आयु समाप्त हो गई, मात्र छह माह की आयु शेष रही। अब वह कहाँ जन्म लेने वाला है, उसका कर्णमधुर, पाप-विनाशक और पुण्य-वर्द्धक कथानक मैं कहता हूँ, उसको सुनो। इस जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र भी पुण्य-भूमि है। यहाँ के उत्तम कौशल देश में अयोध्या नामक तीनों लोकों में प्रसिद्ध नगरी है, जहाँ इक्ष्वाकु वंश के उत्तम काश्यप गोत्र में महापुण्य का समुद्र सिंहसेन नामक राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम जयश्यामा था। उसकी अगकान्ति नक्षत्रों व चन्द्रमा के समान उज्ज्वल थी। शील का तेज उसके अंगों पर झलकता था। उनके घर में श्री भगवान का अवतार होने वाला है, ऐसा जानकर इन्द्र ने कुबेर को रत्नवृष्टि की आज्ञा दी। तदनुसार कुबेर ने षण्मास तक रत्नवृष्टि की। नित्य होने वाली रत्नवृष्टि को देखकर नगरवासी आश्चर्यचकित हो गये। इस राजा का राज्यग्रह भावी कल्याणप्रद है—ऐसा प्रजा मानने लगी ।।१४-२०।।

एकदा कार्तिके कृष्णपक्षे प्रतिपदातिथौ ।
सुप्ता देवी प्रभाते सा स्वप्नानैक्षत षोडश ।।२१।।

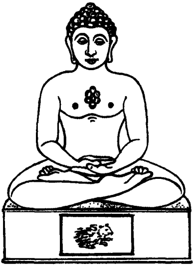
स्वप्नान्ते मत्तमातङ्गं शरच्चन्द्रप्रभोज्ज्वलम् ।
मुखं प्रविष्टमालोक्य प्रबुद्धा विस्मिताऽभवत् ।।२२।।

ततः पत्युस्समीपं सा प्राप्य स्वप्नानवोचत ।
तन्मुखात्तत्फलं श्रुत्वा महामोदमवाप सा ।।२३।।

गर्भाऽगतस्त्रयज्ञानीन्द्रो तदा तदा मरुत्तो भवत् ।
जगत्प्रसादसामेवे निर्मलं गगनं ह्यभूत् ।।२४।।



स्वयंप्रभु कूट



अनन्तनाथ जिनराज का, कूट स्वयंभू वर जेह।
मन वच तन कर पूजहूं, शिखर सम्मेद यजेह ।।

ओ३म् ह्रीं श्री अनन्तनाथ जिनेन्द्रादि मुनि ९६ कोड़ा कोड़ी ७० करोड़ ७० लाख ७० हजार ७०० मुनि इस टोंक से सिद्ध भए तिनके चरणारविन्द को मेरा मन वचन काय से बारम्बार नमस्कार हो जलादि अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।।१४।।

इस टोंक की भाव सहित वन्दना करने से एक करोड़ उपवास का फल होता है।

एक बार, कार्तिक कृष्ण प्रतिपदा को रानी जयश्यामा ने सोते हुए, रात्रि के अंतिम प्रहर में सोलह स्वप्न देखे तथा अपने मुख में एक उन्मत्त हाथी को प्रवेश करते हुए देखा। जागृत होकर वह आश्चर्यान्वित हो गई। उसने अपने पति के पास जाकर उन स्वप्नों का फल पूछा। राजा के द्वारा फलों को सुनकर रानी अति आनन्दित हुई। प्रभु के गर्भ में आने से ठंडी, मन्द व सुखप्रद हवायें चलने लगीं, आकाश निर्मल हो गया व सारे जगत में प्रसन्नता की लहर फैल गई ।।२१-२४।।

ज्येष्ठमासेऽथ कृष्णायां द्वादश्यां भूपतिप्रिया ।
भगवन्तं सुखं लेभे त्रिज्ञानधरमीश्वरम् ।।२५।।

द्यौश्चन्द्रेण यथा प्राची बालार्केण सुतेजसा ।
तथा देवेन सा देवी रराज शिशुमूर्तिना ।।२६।।

तदैवेन्द्रोऽवधिज्ञानात् भगवज्जन्म तद्वरम् ।
प्रबुध्य देवतैस्साधं त्वरात्तत्र समाययौ ।।२७।।

बालं प्रभुं समादाय सूर्यकोटिसमप्रभम् ।
सुवर्णाद्रिं गतः शीघ्रं जयध्वानं समुच्चरन् ।।२८।।

पाण्डुकायां शिलायां तं संस्थाप्य जगदीश्वरम् ।
कलशाऽभिषवं चक्रे पयोनिधिजलैर्मुदा ।।२९।।

उसके बाद ज्येष्ठ मास की कृष्ण द्वादशी के दिन महारानी जयश्यामा ने त्रिज्ञानधारी बालक-प्रभु को सुख से जन्म दिया। जिसप्रकार चन्द्रमा से आकाश शोभित होता है, पूर्व दिशा बाल-रवि के तेज से शोभित होती है, उसी प्रकार वह रानी बालमूर्ति जिनेश्वर से शोभने लगी। उसी समय, भगवान का जन्म हुआ है—ऐसा इन्द्र ने अवधिज्ञान से जाना व परिवार व अन्य देवों

के साथ शीघ्र ही वहाँ पर आया। वह सूर्य-चन्द्र के समान कान्ति के धारक बालक जिन को लेकर, जय-जय का घोष करते हुए मेरुपर्वत पर गया। यहाँ पर उसने भगवान को पाण्डुक शिला पर स्थापन कर क्षीर-समुद्र के जल से कलश भर कर प्रभु का अभिषेक किया ॥२५-२६॥

पुनर्गन्धाभिषेकं स कृत्वा दिव्यविभूषणैः ।
सम्भूष्य देवदेवं तामयोध्यां पुनरागमत् ॥३०॥

तत्र भूपाङ्गणे देवं सिंहासनविराजितम् ।
समर्च्य तत्पुरोभागे ताण्डवं विधिवत् कृतम् ॥३१॥

अनन्तगुणबोधत्वादनन्ताख्यं प्रभोरनु ।
कृत्वा मात्रे समर्प्याथ गतोऽयममरावतीम् ॥३२॥

इसके बाद इन्द्र ने पुनः गन्धोदक से प्रभु का अभिषेक कर उनको दिव्य विभूषणों से भूषित किया। पश्चात् अयोध्या में वापस आकर प्रभु को सिंहासन पर बैठाकर, पूजा करके, उनके सामने ताण्डव नृत्य किया तथा प्रभु का नाम अनन्त रखा और प्रभु को माता के पास सौंपकर इन्द्र अमरावती को वापस चला गया ॥३०-३२॥

श्रीमद्विमलनाथाच्च गतेषु नववार्धिषु ।
तदभ्यन्तरजीवी स बभूवाऽनन्त ईश्वरः ॥३३॥

त्रिंशल्लक्षमितायुश्च पञ्चाशद्धनुरुन्नतः ।
बालकेलिभिरत्यन्तं पितरावभिमोदयन् ॥३४॥

कौमारं सो व्यतीयाथ शरीरे यौवनागमे ।
प्राप्य तत्पैतृकं राज्यं बुभुजे भोगमुत्तमम् ॥३५॥

श्री विमलनाथ प्रभु के मोक्ष जाने के बाद नौ सागर वर्ष निकलने के बाद भगवान अनन्तनाथ का जन्म हुआ। उनका जीवन उपर्युक्त नौ सागर अवधि में ही अन्तर्भूत है। प्रभु की आयु तीस लाख वर्ष की थी तथा वे पचास धनुष ऊँचे थे। उन्होंने अपनी बाल-क्रीडा से अपने माता-पिता को अतिशय आनन्दित किया। कुमारावस्था की समाप्ति के बाद तारुण्यता प्राप्त करके उन्होंने अनेक उत्तम भोग भोगे ।।३३-३५।।

एकदा सौधमारुह्य सिंहासनगतः प्रभुः ।
तारापातं ददर्शाऽथ विरक्तस्तत्क्षणादभूत् ।।३६।।

तारापातवदेषोऽपि संसारः क्षणभङ्गुरः ।
अत्र मूढाः प्रमाद्यन्ते आत्मवन्तो न वै बुधाः ।।३७।।

नरत्वं दुर्लभं प्राप्य तपस्सारं महात्मनाम् ।
तपसः कर्मनाशः स्यात् कर्मनाशात्परं पदम् ।।३८।।

इति चिन्तयतस्तस्य स्तवार्थं सुरसत्तमाः ।
सारस्वतादयः प्राप्तास्तेजोभिर्भास्करा इव ।।३९।।

इन्द्रोऽपि स्वावधिज्ञानात्तपः कर्तुं समुद्यतम् ।
ज्ञात्वा देवं तदा प्राप सदेवो देवसन्निधिम् ।।४०।।

तदा सागरदत्ताख्यां शिबिकां देवसंस्तुतः ।
समारुह्य समुत्सह्य सहेतुकवनं ययौ ।।४१।।

ज्येष्ठमाससितायां हि द्वादश्यां भूमिपैः सह ।
सहस्रप्रमितैर्दीक्षां जग्राह शिवकारणम् ।।४२।।

ततस्तस्यान्तर्मुहूर्ते त्रिबोधनयनस्य हि ।
आसीच्चतुर्थं तज्ज्ञानं मनःपर्ययसंज्ञकम् ।।४३।।

द्वितीयदिवसेऽयोध्या भिक्षार्थं गतवान् प्रभुः ।
विशाखो नृपतिस्तत्र प्रभु सम्पूज्य सादरं ।।४४।।

आहारं कारयामास तस्य साश्चर्यपञ्चकम् ।
गृहीत्वाहारमायातस्तस्मिन्नेव वने प्रभुः ।।४५।।

द्विवर्षं मौनमास्थाय नानाशुचिपदेषु सः ।
महोग्रं दुस्सह चक्रे तपश्शिवपदोत्सुकः ।।४६।।

एक समय, प्रभु राजगृह के ऊपर छत पर, सिहासन पर बैठकर आकाश की तरफ देख रहे थे। उसी समय एक टूटता हुआ तारा प्रभु को दिखाई दिया। उसे देखकर प्रभु को तत्काल वैराग्य हुआ। तारा के नष्ट होने के समान ही यह ससार भी क्षणभगुर है, इस ससार मे जो मूढ है वे चूकते है, किन्तु विद्वान् लोग ससार का यथार्थ स्वरूप जानते है। वे, मनुष्य-जन्म दुर्लभ है, किन्तु उसे प्राप्त करके महातप ही इस जन्म का सार है—ऐसा समझ कर उस तप का पालन करते है। तप से ही कर्मो का नाश होता है, व कर्मो के नाश होने पर ही परम-पद-मोक्ष प्राप्त होता है—ऐसा चिन्तवन करते हुए प्रभु की स्तुति के लिए लौकान्तिक देव आये। उन देवो का तेज सूर्य-समान था। इन्द्र भी, अवधिज्ञान से प्रभु के वैराग्य को जानकर, सर्व देवो के साथ प्रभु के पास आया। देवो ने 'सागरदत्त' पालकी लाकर रखी। देवो से स्तुत्य प्रभु पालकी मे बैठकर सहेतुक वन मे गये। वहाँ, ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशी (उ०पु०—ज्येष्ठ कृष्ण द्वादशी) के दिन एक हजार राजाओ के साथ मोक्ष की कारणभूत दीक्षा प्रभु ने धारण की। दीक्षा के बाद अन्तर्मुहूर्त मे प्रभु को मन पर्ययज्ञान प्राप्त हुआ। उपवास की पारणा के लिए प्रभु अयोध्या नगरी को गये। वहाँ विशाख नामक राजा

ने आदरपूर्वक प्रभु को आहार दिया। राजा के आंगन में पंचाश्चर्य हुए। आहार लेकर प्रभु पुनः उसी वन में आ गये। उसके बाद दो वर्ष पर्यन्त मौनधारण कर अनेक स्थानों पर विहार करते हुए। उन्होंने उग्र तप किया, व शिवपद की प्राप्ति के लिए उत्सुक हुए ।।३५-४६।।

चैत्रमासे ह्यमायां स घातिकर्माणि भस्मसात् ।
कृत्वाऽश्वत्थतले प्राप केवलज्ञानमुज्ज्वलम् ।।४७।।

तज्ज्ञानस्य प्रकाशात्स यत्तदेव जगत्तु तत् ।
न भूतं नास्ति नो भावि नामरूपगुणादिभृत् ।।४८।।

प्रभोः केवलबोधाप्तिं ज्ञात्वा देवपतिस्तदा ।
चित्रं समवसारं स तत्रैवागत्य संव्यधात् ।।४९।।

तस्मिन् सहस्ररविरुक् प्रभुः प्रभुरुदारधीः ।
सर्वोपरि स बभ्राज भव्यवृन्दसमर्चितः ।।५०।।

जयसेनादयस्तत्र गणेन्द्राश्च तदादिभिः ।
यथोक्तैरखिलैर्भव्यैः स्तुतो द्वादशकोष्ठगैः ।।५१।।

चैत्र मास की अमावस्या के दिन प्रभु ने घातिकर्मों का नाश किया। वट वृक्ष के नीचे ध्यानरत प्रभु को निर्मल केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। केवलज्ञान के प्रकाश से उन्होंने जगत् को यथार्थ, जैसा है वैसा, जाना। 'यह संसार पहिले नहीं था, अब नहीं हैं या आगे नहीं रहेगा' ऐसा नहीं है, किन्तु यह संसार नाम को धारण करता है, रूप, रस, गंध व वर्णों को धारण करता है व यह सद्रूप है, अतः नाश की प्राप्ति नहीं होगा—ऐसा उन्होंने जाना। प्रभु के केवलोत्पत्ति जानकर इन्द्र ने तत्काल आश्चर्य-कारक समवशरण की रचना की। उस समवशरण में महाज्ञान

के धारक तथा भव्य जीवों द्वारा पूजित, सहस्र सूर्य की कान्ति से दीप्त प्रभु सबसे ऊँचे शोभायमान हो रहे थे। जयसेनादि गणधरों तथा यथोक्त बारह कोठों में स्थित भव्यजीव प्रभु की स्तुति कर रहे थे ॥४७-५१॥

दिव्य स्वनेन तत्त्वानां प्रकाशं व्यदधात्प्रभुः ।
सम्मेदपर्वतं प्राप्य स्वयम्भू कूटेऽवस्थितः ॥५२॥

कृष्णद्वादशिकायां च माघे मासि तपोनिधिः ।
कायोत्सर्ग विधानेन षट्सहस्रमुनीश्वरैः ॥५३॥

सार्धं ध्यानं समारुह्य शुक्लाख्यं योगवित्तमः ।
निरामयं मुक्तिपदं प्राप भव्यजनार्चितम् ॥॥५४॥

स्वयम्भूकूटतस्सर्वे गता ये साधवः शिवम् ।
नैष्कर्मसिद्धिसन्दीप्तान् वन्दे तान् प्रतिवासरम् ॥५५॥

तत्पश्चात्प्रणवत्युक्ता कोटीनां कोटिरीरितः ।
सप्तत्युक्ताः कोटयश्च तथा सप्तति लक्षकाः ५६॥

सप्तत्युक्त सहस्राणि तथा सप्तशतानि च ।
इत्युक्ता मुनयस्तस्मात् कूटात्सिद्धि वरान्तकाः ॥५७॥

तेषामन्वभवद्राजा चारुसेनस्सुधार्मिकः ।
सङ्घं सचालयामास यात्रायै भूभृदीशितुः ॥५८॥

अपनी दिव्यध्वनि से जीवादिक तत्वों का स्वरूप कहने वाले प्रभु सम्मेदशिखर के स्वयंभू कूट पर आये। माघ कृष्ण द्वादशी के दिन तपोनिधि प्रभु ने कापोत्सर्ग धारण कर छह हजार मुनि संघ के साथ शुक्लध्यान से निरामय, रोगरहित व भव्यजीवों द्वारा पूजित मोक्षपद प्राप्त किया। मैं इस कूट से मोक्ष प्राप्त करने वाले साधुओं को, जो नैष्कर्म-सिद्धि से दीप्त हैं, नमस्कार

करता हूँ। प्रभु के मोक्ष जाने के बाद इस कूट से एक कोटाकोटि, सात कोटि सत्तर लाख सात सौ मुनि कर्मक्षय करके मोक्ष गये हैं। इसप्रकार चारुसेन नामक एक सुधार्मिक राजा था, उसने इस क्षेत्र की यात्रा के लिए संघ निकाला था। उसकी पुण्य-वर्धक व मोक्षप्रद कथा को मैं कहता हूँ, उसे सुनो ॥५१-५८॥

तत्कथां श्रवणात्पुण्यवर्धिनीं शिवदायिनीम् ।
वक्ष्ये भव्यजनास्सर्वे श्रुणुध्वं धर्मवत्सलाः ॥५६॥
जम्बवाख्ये महति द्वीपे भरतक्षेत्रमध्यगा ।
को(कौ)शाम्बी नगरी रम्या तत्र श्रेष्ठी प्रबोधवान् ॥६०॥
वातसेनाभिधस्तस्य शुभसेना सुधर्मिणी ।
तयोस्समुद्रदत्ताख्यः तनयोऽभूदभाग्यवान् ॥६१॥
महादारिद्र(द्र्य)पात्रं स जातमात्रोऽत्र पञ्चताम् ।
एतस्य पितरौ यातौ बुभोजादौ दरिद्रताम् ॥६२॥
एकदा मुनिमेकः स भाग्यतः परिखस्वजि ।
समुद्रदत्तो दुःखाभिभूतो भाग्यविवर्जितः ॥६३॥
आधाय पादयोस्तस्य मस्तकं स दरिद्रकः ।
करुणार्द्रदृशाय दृष्टस्तेनेदं वाक्यमब्रवीत् ॥६४॥
किमत्र पातकं नाथ ! कृतं पूर्वं भवे मया ।
यतोऽकिञ्चनतां प्राप्य भुञ्जेऽहं दुःखमुल्बणम् ॥६५॥

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में कौशाम्बी नामक नगरी है, वहाँ पर वातसेन नामक एक ज्ञानी श्रेष्ठी रहता था। उसकी पत्नी का नाम शुभसेना था। उन दोनों से समुद्रदत्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो कि भाग्यहीन व महादरिद्री था। इतना ही

नहीं, किन्तु जन्मते ही माता-पिता की मृत्यु हो गई। इसकारण वह जन्म से ही अभागी था। एक बार भाग्य से उसकी भेंट एक मुनि से हो गई। उस भाग्यहीन व दुखी समुद्रदत्त ने मुनि के चरणों में अपना मस्तक रखकर मुनि से इस प्रकार प्रश्न किया—प्रभो ! मैंने इस जन्म में या पूर्व-जन्म में ऐसा कौन-सा पातक किया था, जिससे मुझे उत्कट दरिद्रय-दुख भोगना पड़ रहा है। मुनिराज ने कहा—अरे ! पिछले भव में तुमने कुछ भी पुण्य नहीं किया, इसलिए तू दरिद्री हुआ है। पुण्य से ही सर्व सुख प्राप्त होता है—ऐसा तू समझ ॥५९-६५॥

मुनिः प्राहाऽन्यपर्याये कृतं पुण्यं न च त्वया ।
ततो दरिद्रतां प्राप्तः त्वमपुण्यादेव शर्मता ॥६६॥

पुनः स तं मुनिं प्राह यतो मे दुःखसञ्चयः ।
नश्येत्तत्त्वं समाख्याहि यदि मय्यस्ति ते कृपा ॥६७॥

तदोवाच मुनीशस्तं विवेकरहितं जडम् ।
तपो-व्रत-जपान्कर्तुमसमर्थं शुचार्दितत् ॥६८॥

सम्मेदशैलराजस्य यात्रां दारिद्रयनाशिनीम् ।
धृत्वा पीताम्बराण्यङ्गे कुरु त्वमविचारयन् ॥६९॥

दारिद्र्यं न तवागारे स्थात्यत्र न संशयः ।
इति श्रुत्वा तदैवासौ गतः पुण्य स पर्वतम् ॥७०॥

पुनः वह समुद्रदत्त मुनिराज से कहने लगा—प्रभो ! दारिद्रय नष्ट हो, ऐसा कोई उपाय मुझे बताओ, यदि आपको मुझ पर थोड़ी-सी भी कृपा है तो। मुनिराज कहने लगे—तुम विचार रहित, जड़, मूर्ख हो। दुख से पीड़ित होने के कारण तप, व्रत, जप करने के लिए असमर्थ हो। इसलिए तुम शरीर पर पीत-वस्त्र

धारण कर सम्मेदशिखर की यात्रा करो, जिससे तुम्हारा दारिद्र्य मिट जायेगा। तुम्हारे घर में दारिद्र्य पांव भी रखने वाला नहीं है, यह बात निःसंशय है। मुनिराज के ऐसे वचन सुनकर वह वहाँ से चलकर एक पर्वत के पास गया। वहाँ आम्रवृक्ष के नीचे बैठकर मन में चिन्ता करने लगा कि पीत-वस्त्र मुझे किसकी सहायता से मिलेंगे और यात्रा करना शक्य कैसे होगा ॥६६-७०॥

आम्रवृक्षस्थले स्थित्वा चिन्तां चक्रे स्वमानसे।
कस्यापि महतः पुंसः सकाशान्मे ह्ययं विधिः ॥७१॥

चिन्तां यावत् चकारेमां तावद्विद्याधरस्तदा।
सुके(खे)ताख्य विमानस्य आ(चा)यास्तत्रैवभाग्यतः ॥७२॥

कनकादिधरा तस्य प्रिया सार्धं तया हि सः।
पूजां पद्मप्रभस्वामी कर्तुकामः कृतोत्सवः ॥७३॥

अभ्यधावत तं दृष्ट्वा तद्भावेन तदैव तत्।
विमानं कीलितं तंतु शशाकन किलाभ्रतः ॥७४॥

तदा विस्मितचित्तोसौ कारणान्वेषणोत्सुकः।
समुद्रदत्तमायातं ददर्शातीव दुःखितम् ॥७५॥

उत्ततार तदा तस्य विमानं तस्पृहेरितम्।
विद्याधरः प्रसन्नोऽभूत् तस्योपरि दयावशात् ॥७६॥

पीतानि वस्त्र-रत्नानि तस्मै दत्वा स्वयं तदा।
विद्याधरैरनेकैश्च तेन सार्धं चचाल सः ॥७७॥

विद्याधरस्य-सामर्थ्यात् यात्रा सम्मेदभूभृतः।
कृत्वा समुद्रदत्तोऽयं विरक्तस्सम्बभूव सः ॥७८॥

स्वयं दीक्षां गृहीत्वाऽसौ जैनीं परमपावनीम् ।
भावलिङ्गी बभूवाऽसौ दुर्धरं द्वादशं तथा ।।७६।।
तपः कृत्वा महोग्रं स संन्यासविधिना ततः ।
तनुं त्यक्त्वा षोडशमे स्वर्गे प्रापत ऐन्द्रताम् ।।८०।।
द्वाविंशति समुद्रायुः स ए(चै)व भवतारकः ।
तत्रासौ दिव्यसौख्यं स तपसोग्रेण चान्वभूत् ।।८१।।

इसप्रकार का विचार कर ही रहा था कि उसके भाग्य से एक विमान में बैठकर सुकेतु नामक एक विद्याधर वहाँ आया। वह कनकधारा नामक स्वयं की पत्नी के साथ पद्मप्रभ की पूजा करने की इच्छा से विमान में बैठकर वेग से जा रहा था, परन्तु इस समुद्रदत्त को देखकर उसका विमान स्तंभित हो गया, जिससे आश्चर्यचकित, विद्याधर, तत्रस्थ समुद्रदत्त को देखकर विमान के रुकने का कारण खोजने की इच्छा से प्रेरित होकर विमान से नीचे उतरा। उसके विषय में दयान्वित होकर प्रसन्नता से अपने पीले वस्त्र व रत्नादिक देकर, उसको अपने साथ लेता हुआ विद्याधर चलने लगा। इस विद्याधर की सहायता से उस समुद्रदत्त ने सम्मेदशिखर की यात्रा की। उसके बाद समुद्रदत्त ने, विरक्त होकर उग्र तप किया और संन्यास-विधि से शरीर त्याग कर सोलहवें स्वर्ग में अहमिन्द्र देव हुआ। वहाँ उसने बावीस सागर की आयु प्राप्त की तथा भवतारक उग्र तप के द्वारा दिव्य सौख्य प्राप्त किया ।।७१-८१।।

अथ जम्बूमति द्वीपे क्षेत्रे भारतभूभृतः ।
कुरुजाङ्गलदेशोस्ति रमणीयः शुभाश्रयः ।।८२।।
हस्तिनागपुरं तत्र रत्नसेनो महीपतिः ।
मलयाख्या तस्य राज्ञी महासुकृतदीपिता ।।८३।।

तत्सुतो विविजेन्द्रोऽभूत् चारुषेणाख्य उ(चो)त्तमः ।
महाप्रतापवान् धीरः पुण्यवान् पुण्यकृत प्रियः ।।८४।।
चारुसेनस्य मन्दिरे चक्रवर्ती नृपादपि ।
बहवो निधयो जातः तत्सुखं स नृपोऽन्वभूत् ।।८५।।
एकदा स वनं यातः क्रीडां कुर्वन् सुखान्वित् ।
द्ररिद्रमेकं दृष्ट्वा स पूर्वजन्मसमस्मरत् ।।८६।।
ईदृग्विधो भवे पूर्वं भवं चाहमपीक्षितम् ।
सम्मेदशैलयात्रातः क्षितीशोस्मीह साम्प्रतम् ।।८७।।
पराधीनतया यात्रा कृता सम्मेदभूभृतः ।
ईदृक्फलं स्वतन्त्रेण कृता कीदृक्फला भवेत् ।।८८।।

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में कुरुजांगल नामक रमणीय व पुण्याधार देश है। उस देश में हस्तिनापुर नगर में रत्नसेन राजा राज्य करता था। महापुण्य से दीप्त मलया नामकी उसकी रानी थी। उक्त अहमिन्द्र देव ने स्वर्ग से चय कर, रत्नसेन व मलया के पुत्र चारुषेण के रूप में जन्म लिया। यह चारुषेण महाप्रतापी, धैर्यवान् व मानो पुण्य का भण्डार ही था। इसके घर में चक्रवर्ती से भी अधिक निधि थी। उसका सुख उसने दीर्घकाल पर्यन्त भोगा। एक समय क्रीडा करने के लिए वह सुखी राजा बगीचे में गया। वहाँ उसे एक दरिद्री मनुष्य मिला। उसे देखकर चारुदत्त को जातिस्मरणज्ञान हो गया। मैं भी पूर्वजन्म में इसके ही समान था, मैंने एक विद्याधर की सहायता से सम्मेदगिरि की यात्रा की थी, उसके पुण्य से ही में इस जन्म में पृथ्वीपति बना हूँ। मैंने पराधीन होकर यात्रा की, तो भी मुझे इतना फल मिला, तब यदि स्वतन्त्रपने यात्रा की होती तो क्या फल प्राप्त नहीं होता ? ।।८२-८८।।

इति सञ्चिन्त्य हृदये स यात्रासम्मुखोऽभवत् ।
अष्टादशभिरक्षोणी मितान् जनवरान्नृपः ॥८९॥
सार्धकां स विधायासौ सङ्घ-भक्तिसमन्वितः ।
पीतवस्त्रधरो धीमान् शैलयात्रां चकार सः ॥९०॥
नवमोक्तशतान्येष रत्नानि प्राप्य भूमिपः ।
अनेकलोकसम्पन्नो बभूवाऽस्य प्रयाणतः ॥९१॥
अवर्णनीय तद्भूतिः नानारत्नमयी किल ।
वर्णनाद् ग्रन्थविस्तारो भवेत्तस्मान्न चोच्यते ॥९२॥
ईदृग्विधमपि स्वीयां चारुषेणस्स भव्यराट् ।
राज्यं त्यक्त्वा विरक्तोऽभूत् जैनीं दीक्षामथाग्रहीत् ॥९३॥
ध्वनिं जयजयेत्युच्चैः शृण्वन् सततमाचरन् ।
स्वयम्भूनाम तत्कूटमभिवन्द्यमुदान्वितः ॥९४॥

मन में ऐसा विचार कर वह विद्वान् राजा यात्रा करने के लिए उद्यत हुआ। उसने अपने साथ अठारह अक्षोणी प्रमाण भव्यों को लेकर, संघ-भक्ति करके, यात्रा के लिए प्रस्थान किया। उसने यह यात्रा पीत-वस्त्र पहिनकर की। प्रयाण करते उसे असंख्यात रत्न प्राप्त हुए, नाना रत्नमय, आकर्षित वैभव प्राप्त हुआ। उसके वर्णन से ग्रन्थ का आकार बढ़ेगा, इसलिए मैं उसका वर्णन नहीं करता हूँ। इस प्रकार का राज्य मिलने पर भी उस भव्यराट (भव्यों के राजा) चारुषेण ने उसका त्याग करके विरक्त होकर स्वयंभू नामक कूट की वंदना कर प्रसन्नतापूर्वक जैनी-दीक्षा ले ली। लोगों ने उसका बार-बार जयकार किया ॥८९-९४॥

एकार्बुदं चतुर्युक्ताऽशीतिकोटिमुनीश्वरैः ।
सार्धं शिवपदं प्राप्य बभूव भवनिर्वृतः ॥९५॥

महामोक्षपदं तस्य कूटं भव्यजनाश्रितम् ।
श्रद्धया योऽभिवन्देत स निर्वाणपदं लभेत् ।।९६।।

यस्माच्छ्रीमान् विश्वनाथो ह्यनन्तः सिद्धस्थानं
विश्ववाञ्छ्यं जगाम ।
यो भव्यौघैः पूजितो वन्दितश्च,
कूटं शुद्धं तं स्वयम्भ्वाख्यमीडे ।।९७।।

एक अरब चौराशी कोटि मुनीश्वरों के साथ उसे मोक्ष की प्राप्ति हुई। वह संसार से पूर्व-निवृत्त हो गया। यह स्वयंभू नामक कूट महामोक्षपद प्रदान करने वाला है। भव्य-जन नित्य ही इस कूट का आश्रय लेते हैं। जो इस कूट की वंदना करता है, उसको निर्वाण पद प्राप्त होगा। इस कूट से, विश्वनाथ—अनन्तनाथ जिनेश्वर ने, सभी संसारियों की इच्छा के विषयभूत मोक्ष को प्राप्त किया है। जो भव्यजनों द्वारा वंदित है, पूजित है, उस स्वयंभू नामक शुद्ध कूट को मैं नमस्कार करता हूँ ।।९५-९७।।

इति दीक्षितब्रह्मनेमिदत्तविरचिते श्रीसम्मेदशैलमाहात्म्ये श्रीस्वयम्भूकूटवर्णनंनाम त्रयोदशाध्यायः सम्पूर्णः ।।१३।।

इसप्रकार 'सम्मेदशिखर माहात्म्य' ग्रन्थ में श्री स्वयंभू कूट का वर्णन करने वाला तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

यदि व्यक्ति का विवेक जागरूक हो जाये तो थोड़े समय में वह काम हो सकता है, जो तमाम जिन्दगी में नहीं हो पाया।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

(श्री धर्मनाथ चरित)

धर्मान्दशविधान्योऽत्र भव्यानां पुण्यकर्मणाम् ।
उपाविशत्तमीशानं धर्मनाथं सदानुमः (नमाम्यहम्) ।।१।।
यो वै दत्तवरात्कूटात् धर्माधर्मौ विभज्य च ।
शुक्लध्यानाद् ततो मोक्षं वक्ष्ये तच्चरितं शुभम् ।।२।।
धातकी नाम सद्द्वीपे विदेहे पूर्व उत्तमे ।
सीतादक्षिणभागेऽस्ति वत्सदेशः शुभालयः ।।३।।
सुसीमानगरं तत्र राजा दशरथो महान् ।
प्रतापवान् मित्रगणह्लादकः पूर्णचन्द्रमाः ।।४।।
शत्रूणां कालरूपश्च स्वर्णकान्तिर्ज्वलत्तनुः ।
धर्मकृद्धर्मरूपोऽसौ शशास पृथिवीं प्रभुः ।।५।।

देवपूजनादि पुण्य-कार्य करने वाले भव्यों को उत्तम क्षमादि दशधर्म का जिन्होंने उपदेश दिया है, उन जगत्पति धर्मनाथ की हम सदा स्तुति करते हैं। प्राणि-मात्र पर करुणा करने वाले वे दयारूप ही हैं और उत्तम क्षमादिक पालन करना ही धर्म है—ऐसा विभाग करके जिन प्रभु ने कहा है व जिन्होंने शुक्ल-ध्यान के द्वारभूत दत्तवरकूट से मोक्ष प्राप्त किया है, उनका अर्थात् धर्मनाथ जिनपति का, जीवों का कल्याण करने वाला शुभचरित मैं कहता हूँ। धातकीखण्ड के पूर्व-विदेह में, सीता नदी के दक्षिण भाग में वत्स नामक देश, जो कि देव-पूजनादि शुभ-कर्मों का घर है, के सुसीमा नगर में राजा दशरथ राज्य करता था। वह महा-पराक्रमी, मित्रों को आनंदित करने के

लिए चन्द्र समान तथा शत्रुओं के लिए काल समान भाषित होता था। उसका शरीर स्वर्ण की कान्ति के समान तेजस्वी था। वह धर्माचरण करने वाला होने से धर्मरूप था व पृथ्वी पर उसका शासन था ॥१-५॥

स शरत्पूर्णिमां दृष्ट्वा पूर्णचन्द्रसमुज्ज्वलाम् ।
नश्वरीं तत्क्षणादेव विरक्तोऽभूत्स्वराज्यतः ॥६॥

राज्यं महारथायाथ दत्त्वा स स्वंभुवे तदा ।
तपो (जैनीं) दीक्षां स जग्राह विपिने मुनिसेविते ॥७॥

एकादशाङ्गवृक् सोऽथ षोडशामलभावनाः ।
भावयित्वा बबन्धासौ गोत्रं तीर्थंकरं वरम् ॥८॥

अन्ते संन्यासविधिना प्राणत्यागं विधाय सः ।
सर्वार्थसिद्धिमगमत् तत्र प्रापाऽहमिन्द्रताम् ॥९॥

तत्र प्रभुर्यथोक्तायुराहारोच्छ्वाससंयुतः ।
त्रिज्ञानाधीश्वरो भूत्वा सर्वकार्यक्षमोऽभवत् ॥१०॥

परमानन्द भोक्ता स सिद्धध्यान परायणः ।
तत्र षण्मासशिष्टायुः तथाऽनासक्तमानसः ॥११॥

ततश्च्युतो यस्मिन् देशे यन्नृपस्य शुभे गृहे ।
अवतीर्णो जगत्स्वामी तद्वक्ष्ये श्रुणुतामलाः ॥१२॥

एक बार वह राजा पूर्णचन्द्र के कारण उज्ज्वल, शुभ्र दिखाई देने वाली नश्वर पूर्णिमा को देखकर स्व-राज्य से विरक्त हो गया (अर्थात् राहु द्वारा चन्द्र को ग्रसित किया जाना देखकर उसे वैराग्य हो गया)। तब उसने महारथ नामक अपने पुत्र को राज्य सौंपकर, मुनियों से शोभित वन में जाकर, दीक्षा ले ली। ग्यारह अंगों का ज्ञाता होकर, दर्शनविशुद्धयादि सोलह

भावनाओं को भाकर उसने तीर्थंकर गोत्र का बंध किया तथा अन्त में सन्यासविधि से मरण प्राप्त कर सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुआ। वहाँ पर उनकी आयु, आहार, उच्छ्वास आगमोक्त थे। तीन ज्ञानों का अधिपति, सर्व कार्यों के करने में समर्थ, परमानन्द का भोक्ता तप सिद्धों के ध्यान में तत्पर वह देव सर्वार्थसिद्धि के सुखों में निमग्न नहीं था। तेतीस सागर आयु के समाप्त होने में केवल छह मास शेष रह जाने पर, छह मास बाद जिस देश में, जिस राजा के यहाँ उस अहमिन्द्र देव ने तीर्थंकर के रूप में जन्म लिया, उसका वर्णन मैं करता हूँ, उसको, हे निर्मल सज्जनो! सुनो ॥६-१२॥

जम्बूमति महापुण्ये द्वीपे क्षेत्रे च भारते।
कोशलाख्ये शुभे देशे भाति रत्नपुरं महत् ॥१३॥

इक्ष्वाकुवंशे सद्गोत्रे काश्यपे भानु भूपतिः।
अभवत्तत्पुरत्राता चाद्भुताय निधिर्महान् ॥१४॥

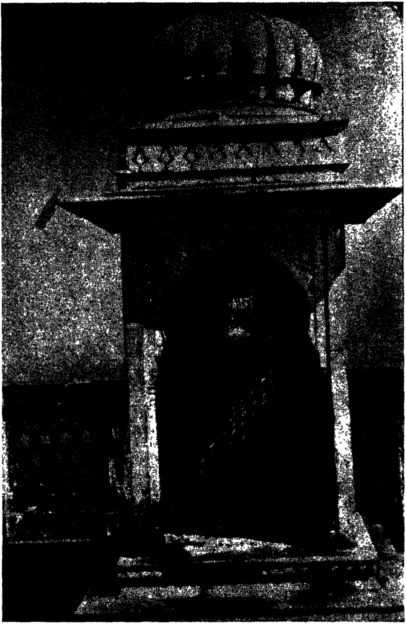
सुव्रता तस्य महिषी सती धर्मपरायणा।
त्रिजगत्सुन्दरी मौलिरत्नं स्त्रीरत्नसंज्ञिता ॥१५॥

तया सह स धर्मात्मा शास्त्रविन्नीतिवित्तथा।
धर्म्यान्भोगान्यथाकालं बुभुजे वासवोपमः ॥१६॥

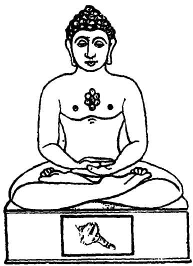
देवावतारं तद्गेही जगत्यवन (त्यन्त) मुत्तमम्।
ज्ञात्वा शक्राज्ञया रत्नवृष्टिं चक्रे धनाधिपः ॥१७॥

षण्मासावध्यहोरात्रमेकरूपां किलाद्भुताम्।
रत्नवृष्टिं समीक्ष्यैनां भावि भद्रं जगुर्बुधाः ॥१८॥

वैशाखेमासि शुक्लायां त्रयोदश्यां चतुष्कमे।
सुप्तादेवी प्रभाते सा स्वप्नानैक्षत षोडश ॥१९॥



सुदत्तवर कूट



धर्मनाथ जिनराज का, कूट सुदत्तवर जेह।
मन वच तन कर पूजहूं, शिखर सम्मेद यजेह ।।

ओ३म् ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्रादि मुनि २९ कोड़ा कोड़ी १९ करोड़ ९ लाख ९ हजार ७९५ मुनि इस टोंक से सिद्ध भए तिनके चरणारविन्द को मेरा मन वचन काय से बारम्बार नमस्कार हो जलादि अर्ध निर्वपामीति स्वाहा ।।१५।।

इस टोंक की भाव सहित वन्दना करने से एक करोड़ उपवास का फल होता है।

तदन्ते मत्तमातङ्गं प्रविष्टं मुखपङ्कजे ।
समालोक्य प्रबुद्धा सा मानसेनाऽद्भुतमलभत् ।।२०।।
पत्युस्समीपं गत्वाऽथ तन्मुखात्स्वप्नसत्फलम् ।
श्रुत्वाऽनन्दमवाप्योच्चैः गर्भवत्यभवत्सती ।।२१।।
माघे मासि त्रयोदश्यां शुक्लायां पुष्यभे शुभे ।
प्रसूत साऽद्भुतं पुत्रं सर्वदेवगणेश्वरम् ।।२२।।
इन्द्रादिदेवास्तज्ज्ञात्वा जयशब्दपुरस्सराः ।
तदैवाऽगत्य तत्रैव समादायाऽद्भुतं शिशुम् ।।२३।।
सुमेरुपर्वतं गत्वा चक्रुस्तत्रोत्सवं पृथुम् ।
अभिषिच्य प्रभुं शक्रः क्षीरवारिधिवारिभिः ।।२४।।

महापवित्र जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में कौशाम्बी नामक शुभ देश में रत्नपुर नाम का बड़ा नगर है। वहाँ इक्ष्वाकु-वंशीय काश्यपगोत्रज राजा भानु प्रजा-पालन करता था। वह अद्भुत पुण्य-निधि व महान् था। उनकी रानी का नाम सुव्रता था। वह सती, धर्म-परायणता तथा त्रैलोक्य में सर्व सुन्दर स्त्रियों में शिरोमणि थी, इसकारण 'स्त्री-रत्न' पद से अलंकृत थी। वह धर्मात्मा, शास्त्रज्ञ, नीतिज्ञ राजा भानु इन्द्र के समान धर्मपूर्वक यथाकाल उसके साथ भोग भोगता था। उस राजा के घर में जगत् का उत्तम रक्षण करने वाले प्रभु का जन्म होने वाला है—यह जानकर कुबेर ने इन्द्राज्ञा से षण्मास-पर्यन्त रत्नवृष्टि की। छह माह तक लगातार रत्नवृष्टि होती देखकर, विद्वान् लोग महाहितकारक भाविकाल के आने की बात करने लगे। वैशाख शुक्ल त्र्योदशी की रात्रि के पिछले प्रहर में, रोहिणी नक्षत्र के रहते हुए सोती हुई रानी सुव्रता ने सोलह स्वप्न देखे और उनके अन्त में एक उन्मत्त हाथी को अपने मुख में प्रवेश

करते हुए देखा। उसके बाद वह जागृत हुई। उसके मन में स्वप्नों के प्रति बड़ा ग्राश्चर्य हुग्रा। उसने ग्रपने पति से जाकर उन स्वप्नों का फल पूछा। पति के मुख से स्वप्नों के फलों को सुनकर रानी ग्रति ग्रानन्दित हुई। उसने ग्रहमिन्द्र के जीव को गर्भ में धारण किया। इसके बाद माघ शुक्ल त्र्योदशी के दिन पुष्य नक्षत्र के रहते हुए, देवों के भी देव—ऐसे ग्रदृभुत् पुत्र को रानी ने जन्म दिया। इन्द्रादि देवगण, जिन-जन्म जानकर जय-जय का शब्दोचार करते हुए ग्राये। वे उस बालक को लेकर सुमेरु पर्वत पर गये, जहाँ पांडुकशिला पर प्रभु का स्थापन कर ग्रभिषेक किया ॥१३-२४॥

तदन्ते प्रभुमाभूष्य दिव्यभूषणमालया।
पुनः रत्नपुरं प्राप्य तत्राऽप्युत्सवमाकरोत् ॥२५॥

धर्मकृद्वा-धर्मभृद्वा धर्मविद्वा सुरेश्वरः।
तद्धर्मनाथ-नामानं कृत्वा स्वर्गमथाऽगमत् ॥२६॥

ग्रनन्तनाथाद् गच्छत्सु चतुर्वाधिषु सप्रभुः।
तन्मध्ये जीवी धर्माख्य नाथः समभवत्किल ॥२७॥

दशलक्षाष्टगीतायुः उत्सेधस्तस्यसत्तनोः।
पञ्चचत्वारिंशदुक्तधनुर्मित उदाहृतः ॥२८॥

मोदयित्वा स कौमारे पितरौ भाग्यसागरौ।
तारुण्ये पैतृकं राज्यं प्राप्य शक्रं रुचाजयत् ॥२९॥

शक्रादप्यधिकं सौख्यं भुक्त्वा राज्ये स ईश्वरः।
प्रजाः स पालयामास पुत्रानिव सुनीतिवित् ॥३०॥

ग्रभिषेक के बाद प्रभु को दिव्याभूषणों से भूषित कर रत्नपुर वापस लाये ग्रौर उत्सव-पूर्वक प्रभु का नाम, धर्म के

धारण करने तथा धर्म का स्वरूप जानने वाला होने के कारण, धर्मनाथ रखा। इसके बाद सभी देव स्व-स्थान चले गये ॥२५-३०॥

एकदा सौधगो देवः सिंहासन (ने) विराजितः।
धनेषु धनुरुद्वीक्ष्य नश्वरं नश्वरीं श्रियम् ॥३१॥
विचार्य मनसा तत्र वैराग्यं मोक्षकारणम्।
अगमत्तत्क्षणादेव भव्य शीर्षशिरोमणिः ॥३२॥
लौकान्तिकास्तदाभ्येत्य कलवर्णाङ्कितैः पदैः।
तद्वैराग्य प्रशंसां-ते, चक्रुर्विमलविग्रहाः ॥३३॥
इन्द्रादयोऽपि सम्प्राप्ता देवस्तुतिपरायणाः।
प्रणेमुस्त महेशानं भूम्यामाधाय मस्तकम् ॥३४॥
तदा राज्यं स्वपुत्राय समर्प्य जगदीश्वरः।
नाभिदत्ताभिधां देवोपनीतां शिविकां वराम् ॥३५॥
सप्तसप्त पदान्येव नृपैर्विद्याधरैस्तथा।
स्कन्धारोप्य चचाल तां शिविकां भक्तितत्किल
(पश्चात्) ॥३६॥
सुरैरूढां समारुह्य प्रोच्चरद्भिर्जयस्वनम्।
लवणाख्यं स्तुतो देवैः वनं स समुपाययौ ॥३७॥

एक बार राजमहल में सिंहासन पर विराजमान प्रभु ने इन्द्र-धनुष को नष्ट होते हुए देखा, तत्क्षण प्रभु के मन में विचार उत्पन्न हुआ कि इसीप्रकार यह राज्य-लक्ष्मी भी नष्ट होने वाली है। इसप्रकार भव्यों में श्रेष्ठ प्रभु को मोक्ष का कारणभूत वैराग्य उत्पन्न हुआ। उसी समय निर्मल शरीर के धारक लोकान्तिक देव प्रभु के पास आये। उन्होंने प्रभु की

स्तुति की और मधुर शब्दों में प्रभु के वैराग्य की प्रशंसा की। इन्द्रादिक देवों ने आकर प्रभु की स्तुति की तथा धरती पर मस्तक रखकर नमस्कार किया। उस समय प्रभु अपने पुत्र को राज्य देकर, देवोपनीत 'नाभिदत्ता' नामक सुन्दर पालकी में बैठे। देवों ने उस पालकी को अपने कन्धे पर धारण किया तथा वे उसे लवण नामक वन में वन में ले आये ॥३१-३७॥

माघशुक्लत्रयोदश्यां, पुष्यर्क्षे भव्यभूमिपैः।
सहस्त्रप्रमितैस्सार्धं, दीक्षां जग्राह तद्वने ॥३८॥
त्रिज्ञानस्वामिनस्तस्य चतुर्थज्ञानमुत्तमम्।
तदैवाविरभूदन्तर्मुहूर्ते जगदीशितुः ॥३९॥
पुरं पाटलिपुत्राख्यं द्वितीयेह्निगतः प्रभुः।
भिक्षार्थं धन्यसेनाख्यो भूपतिस्तमपूजयत् ॥४०॥
परमेश्वरबुद्ध्या तं सम्पूज्य विधिवन्नृपः।
दत्वाहारं तदा तस्मै पञ्चाश्चर्याण्यवैक्षत ॥४१॥
स छद्मस्थैकवर्षस्य नानादेशं गतः प्रभुः।
महाघोरतपश्चक्रे शीतवाताऽतपान् सहन् ॥४२॥
भस्मीकृत्याऽथघातीनि पौष्ये सत्पूर्णिमा दिने।
तूजीवृक्षतलेज्ञानं केवलं प्राप्तवान् प्रभुः ॥४३॥
यथाऽदर्शे मुखाम्भोजं प्राप्ते सम्यक्प्रदर्श्यते।
लोकाऽलोकद्वयं तद्वत् वीक्ष्यते तत्र केवले ॥४४॥

उस वन में माघ शुक्ल त्रयोदशी को पुष्य नक्षत्र में एक हजार राजाओं के साथ प्रभु ने दीक्षा ली। तीन ज्ञानों को जन्म से ही धारण करने वाले प्रभु को दीक्षा के बाद अन्तमुहूर्त्त में ही मनःपर्ययज्ञान भी प्रगट हो गया। दूसरे दिन प्रभु

पाटलीपुत्र नगर में भिक्षा के लिए गये। वहाँ पर धन्यसेन नामक राजा ने उनकी पूजा करके, उन्हें विधिपूर्वक आहार दिया। उसी समय उसके घर पञ्चाश्चर्य-वृष्टि हुई। छद्मस्थावस्था में प्रभु ने एक वर्ष पर्यन्त अनेक देशों में विहार किया; शीत, वात, उष्णादि परिषहों को सहन करते हुए महातप किया। पौष शुक्ल पूर्णिमा के दिन तरुणी वृक्ष के तले ध्यानस्थ बैठकर प्रभु ने घातिकर्मों का क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त किया। जिसप्रकार दर्पण में मुखकमल का प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखता है, उसीप्रकार केवलज्ञान में सम्पूर्ण लोकालोक स्पष्ट दिखाई देता है ॥३८-४४॥

तदा समवसारं ते तं लब्ध्वा जगदीश्वरम्।
तत्रस्थं पूजयामासुः देवायिन्द्र पुरोगमाः ॥४५॥
भव्याश्चारिष्ठसेनाद्यां गणेन्द्राश्च तदाधिकाः।
सर्वे द्वादशकोष्ठेषु यथोक्तास्तस्थुरुत्तमाः ॥४६॥
स्वाभिर्विभूतिभिर्दीप्तः प्रभुः पृष्टो मुनीश्वरैः।
दिव्यनादेव (न) सर्वेभ्यः चक्रे धर्मोपदेशनम् ॥४७॥
उच्चरन् दिव्यनिर्घोषं सर्वेषां संशयान् दहन्।
पुण्यक्षेत्रेषु देशेषु विजहार जगत्पतिः ॥४८॥
जीवनं मास–मात्रं स्वं प्रबुध्य परमेश्वरः।
संहृत्य दिव्यनिर्घोषं सम्मेदाचलमध्यगात् ॥४९॥
स दत्तवरसत्कूटे शुक्लध्यानकृतादरः।
प्रतिमा योगवान् ज्येष्ठ-चतुर्थ्यां शुक्लतापरः ॥५०॥

केवलज्ञान प्राप्त होते ही इन्द्र ने समवशरण की रचना की तथा वहाँ पर स्थित जगत्प्रभु की इन्द्र ने पूजा की। अरिष्ट-

सेनादि भव्य व गणधरादिक श्रेष्ठ मुनि बारह सभाओं में आकर बैठे। अशोकवृक्ष आदिक आठ प्रतिहार्यों से उज्ज्वल दिखने वाले प्रभु ने, मुनीश्वरों से उपदेश देने के निवेदन करने पर, अपनी दिव्यध्वनि से सबको धर्मोपदेश दिया। उन्होंने दिव्यध्वनि से सर्व संशय दूर करते हुए अनेक पुण्य-देशों में विहार किया। एक माह की आयु शेष रहने पर वे दिव्यध्वनि को बंद कर सम्मेदगिरि के मध्यभाग में स्थित दत्तवरकूट पर आये और शुक्ल-ध्यान में तत्पर हुए। ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्थी के दिन उन्होंने प्रतिमायोग धारण किया ॥४६-५०॥

कर्मबन्धविनिर्मुक्तः सहस्र-मुनिभिस्समम् ।
देवो जगाम कैवल्यं दुर्लभं मुनिवाञ्छितम् ॥५१॥

एकोन (कान्न) विंशत्कोटीनां कोटीस्तस्मात्प्रभोरनु ।
एकोन (कान्न) विंशत्कोट्यस्तु नवलक्षस्तथेरिताः ॥५२॥

नवैव च सहस्राणि तथा सप्तशतानि च ।
पञ्चोत्तर नवत्या संयुतो नित्येव सङ्ख्यया ॥५३॥

गणिता दत्तधवलात् भव्याः मुक्तिपदं गताः ।
ईदृशो दत्तधवलः कूटस्साम्मेदिकः स्मृतः ॥५४॥

प्रभु धर्मनाथ सर्व कर्म-सम्बन्ध से रहित होकर एक हज़ार मुनियों द्वारा वाञ्छित दुर्लभ मोक्ष को प्राप्त हुए। उसके बाद उन्नीस कोटाकोटि व उन्नीस कोटि नौ लाख, नौ हजार, सात सौ पन्चानवें मुनिराज दत्तधवल कूट पर से मोक्ष को गये। इसप्रकार यह दत्तधवल कूट अतिशय पूजनीय है ॥५१-५४॥

अथ श्री भावदत्ताख्यो नृपः सम्मेदभूभृतः ।
यात्रां कृत्वा गतो मुक्ति वक्ष्येऽहं तत्कथां शुभाम् ॥५५॥

द्वीपे जम्बूमतिख्याते भरतक्षेत्र उत्तमे ।
पाञ्चालविषयो भाति श्रीपुरं श्रीनिकेतनम् ॥५६॥

भावदत्तो नृपस्तत्र सम्यक्त्वादिगुणान्वितः ।
महेन्द्रदत्तया देव्या रराजेव हरिश्रिया ॥५७॥

चिरम्बुभोज राज्यं स सर्वसौख्यरसान्वितम् ।
धर्मविन्नीतिविद्वन्द्यः शास्त्रविद्धर्मकार्मुकः ॥५८॥

अब, सम्मेदगिरि क्षेत्र की यात्रा करके मोक्ष प्राप्त करने वाले भावदत्त राजा की कथा मैं कहता हूँ, सो सुनो। उस देश में लक्ष्मी का घर-ऐसा श्रीपुर नामक नगर है। वहाँ पर सम्यग्दर्शन, सदाचरणादिक गुणों से युक्त भावदत्त नाम का राजा राज्य था। उसकी रानी का नाम महीन्द्रदत्ता था। इन्द्र के समान लक्ष्मी से शोभित राजा भावदत्त रानी महीन्द्रदत्ता के साथ शोभित हो रहा था। वह धर्माचरण करने वाला, धर्मज्ञ, नीतिज्ञ, शास्त्रज्ञ व सर्वमान्य राजा था। उसने बहुत वर्षों तक सर्वप्रकार के सुखों के साथ राज्य का उपभोग किया ॥५५-५८॥

उवाच सत्सभामध्ये सौधर्मेन्द्रः स एकदा ।
नाना गीर्वाणहृद्भृङ्ग समाराध्य मुखाम्बुजः ॥५९॥

तत्र प्रसङ्गश्चलितः क्षेत्रे कोप्यस्ति भारते ।
सम्यक्त्वगुणसम्पन्नः तदा प्राह स्वयं हरिः ॥६०॥

भावदत्ताभिधो भूपः एकः सम्यक्त्वसंयुतः ।
कीर्त्या भूमितले भाति कौमुद्याग्लौरिवाम्बरे ॥६१॥

इति श्रुत्वाम्बिको देवः आगतो यत्र भूपतिः ।
नवरत्नमयं पात्रं नृपाग्रे धत्त सोऽद्भुतम् ॥६२॥

अपृच्छत्किमिति श्रीमान् तदा देव उवाच तम् ।
इन्द्रेण प्रेषितं पात्रं प्रगृहाण तव प्रभो ॥६३॥
चतुर्दश नवोक्तानां रत्नानां निधिनां तथा ।
निधानं कनकस्रावी पात्रमेतन्महीश्वर ! ॥६४॥

एक बार, अनेक देवों के नेत्र रूपी भवरों से सुशोभित मुख-कमल वाले सौधर्मेन्द्र की अपनी सभा के मध्य में एक प्रसंग पर एक देव ने इन्द्र से प्रश्न किया—इस भरतक्षेत्र में सम्यक्त्व गुण से सम्पन्न कौन है ? तब इन्द्र ने कहा कि इस भरतक्षेत्र में राजा भावदत्त सम्यक्त्वी है। जिसप्रकार आकाश में चन्द्र अपनी कान्ति से शोभित होता है, उसीप्रकार वह राजा भी अपनी कीर्ति से इस भूतल पर शोभित है। राजा के प्रति इन्द्र की इसप्रकार की स्तुति सुनकर अम्बिका नामक एक देव ने राजा भावदत्त के पास जाकर एक नवरत्नमय अद्भुत् पात्र उसके समक्ष रख दिया। राजा ने पूछा—यह क्या है। तब देव कहने लगा—राजन् ! इस पात्र से चौदह रत्न व नौ निधियों की उत्पत्ति होती है, इस पात्र से नित्य ही स्वर्ण की प्राप्ति होती है ॥५६-६४॥

इति श्रुत्वा देववाक्यं भावदत्तस्तमब्रवीत् ।
अस्मत्कार्यस्य किम्मेव दास्यस्मै देहि भूभृते ॥६५॥
निर्बन्धो बहुधा तेन कृतो देवेन तं प्रति ।
अङ्गीचकार नैवाऽसौ पात्रं तल्लोकदुर्लभम् ॥६६॥
परीक्ष्य तस्य सद्भावं भूपतेराह सोऽमरः ।
धन्यस्त्वं भूमिगो राजन्नेवृशी यदकामना ॥६७॥
सम्यक्त्वानां प्रसङ्गिन्त्वं देवराजेन संसदि ।
सम्यक्त्ववान् त्वमेवैकः प्रोक्तस्तन्मुखेन हि ॥६८॥

इस प्रकार देव के वचन सुनकर राजा कहने लगा—हे देव ! मुझे इनमें से किसी भी कार्य (वस्तु) की आवश्यकता नहीं है, न ही इच्छा है। तुम यह पात्र दूसरे किसी राजा को दे दो। देव ने पात्र गृहण करने के लिए राजा से बहुत आग्रह किया, किन्तु राजा ने उसे स्वीकार नहीं किया। राजा की सद्भावना की परीक्षा कर वह देव कहने लगा—हे राजन् ! तुम धन्य हो। तुम्हारी निस्पृहता की वृत्ति अपूर्व है। इस पृथ्वी पर तुम धन्य हो। सम्यक्त्व के प्रसंग पर वर्णन करते हुए इन्द्र ने अपनी सभा में केवल तुम्हारे सम्यक्त्वी होने की बात कही थी। इन्द्र के मुख से जिसप्रकार आपकी प्रशंसा सुनी थी, राजन्, तुम सचमुच वैसे ही भूप-शिरोमणि हो ॥६५-६८॥

यथोक्तस्त्वं तथैवाऽत्र दृष्टो भूप शिरोमणे।
इत्युक्त्वा साम्बिकस्तस्मै प्रार्थनां तस्य भूयसीम् ॥६९॥

दत्त्वा भेरीं तदाप्येकां प्रभावध्वनिमुत्तमाम्।
यद्ध्वनिश्रवणादत्र कोटिरोगक्षतिर्भवेत् ॥७०॥

परोपकारहेतोस्तां देवनिर्बन्धतो नृपः।
तां भेरिकां च जग्राह विश्वरोगोपशान्तये ॥७१॥

तस्यानुपर्यसौ राज चतुरो मायबोत्तमान्।
संस्थाप्य सादरं देव मम्बिकं (साम्बिकं)
विससर्जतः ॥७२॥

मास एक दिने तस्य प्रति प्रहरमुत्तमम्।
शब्दोऽभूत्तेन बहवो रोगिणः सुखिनोऽभवन् ॥७३॥

महती यात्रिका लग्ना रोगिभिर्निखिलैः कृता।
श्रुतस्तस्य प्रभावो यैरागच्छान्ति तयेपताम् ॥७४॥

ग्रामतस्तत्रयस्तया ह्यश्रुणोद् घोषमुत्तमम् ।
स तत्क्षणाद पापोच्चैरारोग्यं चिरवाञ्छितम् ।।७५।।

इसप्रकार बहुत प्रशंसा कर उस देव ने राजा को एक भेरी प्रदान की, जिसके ध्वनिप्रभाव से कोटि-कोटि रोगों का नाश होता था। राजा ने भेरी को परोपकार के हेतु से स्वीकार कर लिया और उस देव को सन्मान-पूर्वक वापस स्वर्ग भेज दिया। राजा ने उस भेरी को बजाने के लिए चार मनुष्यों को नियुक्त किया। महिने में एक दिन प्रत्येक प्रहर वह भेरी बजाई जाती थी। भेरी का शब्द सुनकर अनेक रोगी भेरी का शब्द सुनने के लिए आने लगे। जिसने भी भेरी के शब्द का प्रभाव सुना, वे स्वयं आकर रोग-मुक्त हुए ।।६९-७५।।

एकदा भूपति राजगृहग्रामेश्वरो महान् ।
महेन्द्रनामतो वातपीडिताङ्गो बभूव सः ।।७६।।

उपाया बहवस्तेन कृता वातोपशान्तये ।
शान्तो नैवाऽभवद्वायुर्बहुपीडाकरो ध्रुवम् ।।७७।।

भेरी प्रभावमाकर्ण्य ततोऽसौ तत्र चाप्तवान् ।
एक घस्रान्तरे मासात् चिन्तामाप गरीयसीम् ।।७८।।

तदा पुरुषसेनाख्यं पप्रच्छ सचिवं नृपः ।
को वा यत्नो मया कार्यं इदानीं मंत्रिसत्तम ।।७९।।

मासे गते ध्वनिश्चास्य भविष्यति नृपालये ।
समेति दुर्लभः कष्टान् त्वयाऽप्यत्र विचार्यताम् ।।८०।।

एक बार राजगृह ग्राम का अधिपति महेन्द्रदत्त वात रोग से पीड़ित हो गया। उसने बहुत उपाय किये, किन्तु रोग जरा भी उपशान्त नहीं हुआ। इसकारण वह अत्यन्त दुखी था।

एक दिन उसने भेरी का प्रभाव सुना। वह वहाँ आया, किन्तु यह जानकर कि भेरी केवल महिने की समाप्ति पर एक दिन ही बजाई जाती है, चिन्ताक्रान्त हुआ। उसने राजा के मन्त्री से पूछा—हे मंत्रिश्रेष्ठ! मेरे शरीर में घोर वेदना होती है, और भेरी एक महिने बाद बजेगी। मेरा कष्ट ध्यान में लाकर, कृपया यह बताने का कष्ट करें कि मुझे क्या करना चाहिए ॥७६-८०॥

मन्त्रिणोक्त महीपाल ! बहुद्रव्यव्ययाद् ध्रुवम् ।
अकालेऽपि ध्वनिं श्रोतुं शक्यस्यादन्यथा नहि ॥८१॥

अथवा श्रवणादस्या ध्वनेः रोगक्षयो ध्रुवम् ।
घृष्टाङ्गेऽसौ बशं लग्ना व्याधिनिर्नाशयेन किम् ॥८२॥

श्रुत्वैवं स नृपो भेरीपालमाहूय सत्वरम् ।
प्राहार्धं भेरि निर्घोषं श्रावय व्याधिनाशकम् ॥८३॥

स्वर्णं कोटिं प्रदास्यामि तुभ्यं श्रुत्वापि हर्षतः ।
तद्वाक्यं नृप सन्त्रासात् भेरीपालः स नाग्रहीत् ॥८४॥

पुनस्तं प्राह नृपतिः स चेद्वाक्यसी हृताम् ।
किञ्चिद्वृश्रुत्वा तर्हि तां मे देहिमद्रोगशान्तये ॥८५॥

लोभतोऽथ सुवर्णस्य कोटयुक्तस्य स भूमिपः ।
उक्तं हेमगृहीत्वा तां भित्वा किञ्चित्तदा ददौ ॥८६॥

सङ्कृष्य देहे लिप्तवा तां स व्यथो हि भिनायकः ।
व्यथा संहृत्य सर्वाङ्गी निर्व्यथुस्तत्क्षणाबभूत् ॥८७॥

मंत्री ने कहा—बहुत द्रव्य खर्च करने पर अकाल में भी भेरी की ध्वनि सुनने को मिल सकेगी, अन्यथा नहीं। अगर भेरी का शब्द सुनकर रोग का नाश होता है, तब उस भेरी को

घिसकर शरीर में लेप करने से क्या रोग शान्त नहीं होगा ? अवश्य होगा—ऐसे वचन मंत्रि से सुनकर राजा महेन्द्रदत्त भेरी का रक्षण करने वालों के पास आकर कहने लगा—तुम धीरे से अकाल में भेरी बजा दो, मैं तुम्हें एक कोटि स्वर्ण-मुद्रायें दूँगा। किन्तु भेरी-बजाने वालों ने राजा के भय से भेरी का अकाल में बजाना मान्य नहीं किया। राजा ने पुनः कहा—यदि तुम भेरी नहीं बजाते हो तो मेरी रोग-शान्ति के लिए इस भेरी का एक थोड़ा-सा टुकड़ा तोड़कर मुझे दे दो। भेरी-वादक ने एक कोटि स्वर्ण-मुद्राओं के लोभ में आकर राजा का कहना मान लिया व भेरी को तोड़कर टुकड़ा उस राजा को दे दिया। राजा ने उस टुकड़े को घिसकर अपने शरीर पर लेप किया, उसकी व्यथा दूर हो गई। इसप्रकार वह राजा महेन्द्रदत्त व्यथा-रहित हुआ ॥८१-८७॥

रीत्या नयैव सा भेरी द्रव्यलोभान्वितैर्नरैः ।
छित्वा दत्ता च तस्मात् न नाकिञ्चिच्च बभूव सः ॥८८॥
तदा भेरी नवीनैका स्थापिता राजमन्दिरे ।
तन्नादश्रवणाद्रोगी रोगशान्तिर्न चाभवत् ॥८९॥
ततः प्रतिदिनं तस्या महिमा न्यूनतां गता ।
पूर्ववन्नैव तन्नादा तत्त्ववेनाऽ भवत्तदा ॥९०॥
तद्वृत्तान्तं श्रुतो राज्ञा तदा दुःखमवाप सः ।
मनस्यचिन्तयत्कस्मात् हेतो सा मोघतां गता ॥९१॥
ध्यायतो भूपतेस्तस्य देवः प्रत्यक्षतां गतः ।
कथितः सर्ववृतान्तः तेन राज्ञा श्रुतोऽखिलः ॥९२॥
भावकस्तस्तदा भूपो हर्षितो देव सङ्गमात् ।
संसारात् विरक्तोऽभूत् मुमुक्षुर्मोक्षसिद्धये ॥९३॥

त्रिंत्रिशत्कोटि भव्यैः स सार्धं सङ्घसमन्वितः ।
यात्रां सम्मेदशैलस्य श्रेष्ठां चक्रे महामतिः ॥९४॥

तत्र गत्वा महीपालः नाम्ना दत्तवरं गिरेः ।
कूटं भावेन ववन्दे मुक्तः संसारबन्धनात् ॥९५॥

तत्कूटवन्दनाद्भक्त्या मानवस्य महीतले ।
अनायासाद्भवेदेव कोट्युपोषधजं फलम् ॥९६॥

इन्द्रवज्रा

श्रीधर्मनाथः किलधर्मभूपो धर्मोपदिष्टाखिल धर्मधारी ।
यस्माद् गतो मुक्तिपदं तमेव कूटं गिरेर्दत्तवरं
नमामि ॥९७॥

द्रव्यलोभ से युक्त लोगों ने उस भेरी को फोड़कर बार-बार दिया, तो भी रोग शान्त नहीं हुआ। उसके बाद राज-मंदिर में एक नवीन भेरी लाकर रखी गई, किन्तु उस भेरी के शब्द से रोगियों का रोग शान्त नहीं हुआ। इसकारण उस भेरी की महिमा दिनों-दिन कम होती गई और रोगियों का आना बंद हो गया। जब यह बात राजा भावदत्त ने सुनी तो वह बहुत दुखी हुआ। यह भेरी निरुपयोगी क्यों हो गई ?—ऐसा विचार करते हुए राजा भावदत्त की दृष्टि में वह देव आया। उसने उस भेरी का सर्व वृत्तान्त राजा को कह सुनाया। राजा देव के आगमन से हर्षित हुआ और संसार से विरक्त हो गया। यह बात सच है कि जो मुमुक्षु हैं उनको मोक्ष के लिए वैराग्य होता है। संघ के पूजक उस राजा ने तीस कोटि भव्यों के साथ सम्मेदशिखर की यात्रा की। इस क्षेत्र पर जाकर दत्तवर कूट की भक्तिपूर्वक वंदना की और संसार के बंधनों से मुक्ति प्राप्त की। उस कूट की वंदना भक्तिपूर्वक करने वाले मनुष्यों को

अनायास ही बहुत-से उपवासों का फल प्राप्त हो जाता है। श्री धर्मनाथ जिनेश्वर सच्चे धर्म के राजा थे। उन्होंने सर्व देशों में विहार कर धर्म का उपदेश दिया। उन्होंने जिनधर्म पूर्ण-रूप से हृदय में धारण किया। जिस दत्तवर कूट से उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया, उसे मैं नमस्कार करता हूँ ॥८८-९७॥

इति दीक्षितब्रह्मनेमिदत्तविरचिते श्रीसम्मेदशैलमाहात्म्ये दत्तधवलकूटवर्णनंनाम चतुर्दशोऽध्यायस्समाप्तः ॥१४॥

इसप्रकार सम्मेदशिखर माहात्म्य में दत्तवर कूट का वर्णन करने वाला चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

मेहमान कितने भी शानदार मकान में ठहरे, उसकी उस मकान के प्रति आसक्ति नहीं होगी; क्योंकि वह समझता है कि मैं कुछ दिनों के लिए ही ठहरने वाला हूँ—आगे या पीछे मुझे यह स्थान छोड़ना ही पड़ेगा। ठीक इसी प्रकार हमें भी सोचना चाहिये कि हम इस दुनिया में एक मेहमान की भांति आते हैं और मेहमान की तरह ही इसे छोड़ कर जाने वाले हैं; जाना न चाहें तो भी हमें जाना पड़ेगा।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

(शान्तिनाथ जिनेश्वर का चरित)

सिद्धास्पदकृतावासं परमानन्दविग्रहम् ।
महाकान्तिप्रदातारं शान्तिनाथं स्मराम्यहम् ॥१॥

जिन्होंने सिद्धों के स्थान में अपना निवास बनाया है—अर्थात् जो कर्मनाश कर मुक्त हो गये हैं, परमानन्द ही जिनका शरीर है तथा जो भव्यों को अक्षय शान्ति प्रदान करने वाले हैं, उन शान्तिनाथ जिनेश्वर को मैं हृदय से नित्य स्मरण करता हूँ ॥१॥

शान्तिनाथप्रसादाय पञ्चकल्याणनायकम् ।
वक्ष्येऽहं चरितं तस्य श्रवणात् सर्वसिद्धिदम् ॥२॥
यस्मात्कूटाद् गतो मुक्तिं शान्तिनाथो महेश्वरः ।
वक्ष्ये तस्यापि माहात्म्यं शृणुध्वं भव्यसत्तमाः ॥३॥
जम्बूद्वीपे विदेहेऽथ पुण्डरीकपुरं महत् ।
श्रीषेणो नृपतिस्तत्र बभूव गुणसागरः ॥४॥
केनाऽपिहेतुना राजा विरक्तः संसृतेः किल ।
राज्यं त्यक्त्वा स जग्राह दीक्षां जिनमतोचिताम् ॥५॥
अङ्गान्येकादशारण्ये संसाध्य मुनिसत्तमः ।
भावयामास तत्त्वेन कारणानि स षोडश ॥६॥
सन्यासेनतनुं त्यक्त्वा स्वायुषोन्ते तपोनिधिः ।
सर्वार्थसिद्धौ संलेभे दुर्लभामहमिन्द्रताम् ॥७॥

श्री शान्तिनाथ प्रभु मुझ पर प्रसन्न हों, इस हेतु मैं, पंच-कल्याणक सहित उनके चरित्र को कहता हूँ; जिसके सुनने से

सर्व इष्ट पदार्थों की प्राप्ति होती है। साथ ही, उन्होंने जिस कूट पर से मुक्ति प्राप्त की है, उसके माहात्म्य को भी कहूँगा। हे श्रेष्ठ भव्यों, उसे तुम सुनो।

इस जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र में पुण्डरीकपुर नामक एक बड़ा नगर है। वहाँ गुणनिधि श्रीषेण राजा राज्य करता था। उसे किसी कारण संसार से वैराग्य हो गया। उसने राज्य छोड़कर जिनमतानुसार मुनि-दीक्षा ले ली तथा वन में रहकर कठोर तप करते हुए ग्यारह अंगों का ज्ञान प्राप्त किया। परमार्थ रीति से सोलह भावनाओं का चिन्तवन किया। आयु की समाप्ति के समय तपोनिधि श्रीषेण मुनिराज ने तीर्थंकर प्रकृति का बंध करते हुए, समाधिमरण से मरकर सर्वार्थसिद्धि में दुर्लभ अहमिन्द्र पद प्राप्त किया ॥२-७॥

त्रिंत्रिंशत्सागरायुः स स्वतपो वैभवेन च।
तत्रोक्तदेहनिश्वास ऋद्धि विक्रमयानभूत् ॥८॥

अतीन्द्रियसुखं तत्र ह्यनन्ताख्यं बुभोज सः।
तत्वचर्चानिमग्नोऽसौ नित्यं श्रीसिद्धध्यानतः ॥९॥

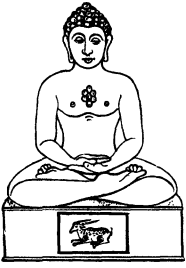
सिद्धाचार्यां सदाऽसक्तो नित्यानन्दपरायणः।
तत्र षण्मासशिष्टायुः तथा वैराग्यभाज(भाव)नम्॥१०॥

अथ तस्यावतारस्य कथां कल्मषनाशिनीम्।
श्रोत्राभिरामां शिवदां वक्ष्येहं जिनभाषितः ॥११॥

स्वतः के तपोवैभव से तेतीस सागर की आयु उसे प्राप्त हुई। इतने ही हजार वर्षों के बाद वह मानसिक आहार लेता था तथा इतने ही पक्ष व्यतीत होने पर श्वासोच्छ्वास लेता था। उसे विक्रिया ऋद्धि के द्वारा सप्तमनरक पर्यन्त गमन



कुन्दप्रभ कूट (शाँतिनाथ कूट)



शांतिनाथ जिनराज का, कुन्दप्रभ कूट है जेह ।
मन वच तन रन पूजहूं, शिखर सम्मेद यजेह ।।

ओ३म् ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्रादि मुनि ९ कोड़ा कोड़ी ९ लाख ९ हजार ९९९ मुनि इस कूट से सिद्ध भए तिनके चरणारविन्द को मेरा मन वचन काय से बारम्बार नमस्कार हो, जलादि अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।।१६।।

इस टोंक की भाव सहित वन्दना करने से एक करोड़ उपवास का फल होता है ।

करने की सामर्थ्य प्राप्त थी। वह वहाँ अनन्त सुखों का भोग करता हुआ, सिद्धचरणों को सदा वंदन करता रहता था। जब उस देव की आयु छह माह की अवशिष्ट रही, तब भी वह वैराग्यपूर्वक आत्मचिंतन करता रहता था। अब उनके अवतार की कर्ण-मधुर, मोक्षप्रद व पापनाशक कथा को कहता हूँ ॥८-११॥

जम्बूद्वीपेऽस्ति भरते विषयः कुरुजाङ्गलः ।
हस्तिनागपुर तत्र देवेन्द्र पुरोपमम् ॥१२॥
अपालयद्विश्वसेनः तत्पुरं धर्मकोविदः ।
ऐराख्या तस्य महिषी (पूतात्मा) देवदेवता ॥१३॥
तयोः गृहे भगवतो ज्ञात्वाऽवतरणं हरिः ।
भाव्यथादिशदानन्दात् रत्नवृष्ट्यै धनेश्वरम् ॥१४॥
तदाज्ञप्तोरोलबिलः तद्गृहे गगनाऽगतः ।
वसून्यवर्षदत्युच्चै नानाजातीन्यसौ मुदा ॥१५॥

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में कुरुजांगल नामक एक देश है। उस देश में इन्द्रपुरी की उपमा को धारण करने वाली हस्तिनागपुर नामक नगरी है। विश्वसेन उस नगरी का पालक था। वह धर्म का स्वरूप जाननेवाला था। उसकी रानी का नाम एरादेवी था। इन राजा-रानी के घर में भगवान का जन्म होने वाला है—ऐसा जानकर इन्द्र ने हर्ष से कुबेर को रत्नवृष्ठि करने की आज्ञा दी। इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने आकाशाङ्गण में आकर आनन्दपूर्वक नाना जाति के रत्नों की वृष्टि की। अनुपम रत्नवृष्टि देखकर देवी को अतिशय समाधान मिला। राजा, भाविकाल में अपने को बहुत बड़ा आनन्द/कल्याण होने वाला है—ऐसा मानने लगा ॥१२-१५॥

एकदा भाद्रसप्तम्यां कृष्णायां भूपतिप्रिया ।
भरण्यामैक्षत प्रातः सा स्वप्नान् षोडशाद्भुतान् ।।१६।।
स्वप्नान्त्ये (न्ते) वारणं वक्त्रे प्रविष्टमनुवीक्ष्य सा ।
कुरुवंशोद्भवं भूपं प्रबुद्धा प्रत्यगात्तदा ।।१७।।
स्वप्नान् संश्राव्य तद्वक्त्रात् श्रुत्वा स्वप्नफलानि सा ।
वागगोचरमानन्दमन्तःप्राप्तवती सती ।।१८।।

एक बार भाद्रपद कृष्ण सप्तमी के दिन नृपप्रिया रानी एरा ने प्रातःकाल के समय भरणि नक्षत्र में सोलह अद्भुत् स्वप्न देखें। स्वप्नों के अंत में एक उन्मत्त हाथी को मुख में प्रवेश करते हुए देखा। वह जागृत होकर कुरुवंशीय राजा विश्वसेन के पास गई और स्वप्नों का वृत्तान्त सुनाकर उनका फल जानने की उत्सुकता प्रकट की। राजा ने फल बताया, जिसे सुनकर रानी को शब्दागोचर आनन्द हुआ ।।१६-१८।।

गर्भागतस्स भगवान् यस्त्रिज्ञानविलोचनः ।
तपोनिधिः स्वतेजोभिः सहस्रार्कसमप्रभः ।।१९।।
ज्येष्ठेऽथ कृष्णभूतायां भरण्यां नृपवेश्मनि ।
प्रादुर्बभूव तस्यां सः प्राच्यामिव दिवाकरः ।।२०।।

गर्भ में आये भगवान तीन ज्ञान रूपी नेत्रों से युक्त थे। वे तपो-निधि व स्वयं के तेज से सहस्र सूर्य के समान कान्ति को धारण करने वाले थे। ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशी तिथि के दिन, भरणि नक्षत्र में, पूर्व दिशा में उगने वाले सूर्य के समान प्रभु ने राजा के घर में प्रभु का जन्म हुआ। प्रभु तेज के पुञ्ज थे, लक्ष्मी के निवास स्थान व सज्जनों के स्वामी थे। वे सभी के हित-कर्त्ता तथा गुणों के समुद्र थे। सर्व सज्जन उन्हें वंदन करते थे ।।१९-२०।।

अथाधीशः तेजसां राशिः श्रीनिवासः सतां पतिः ।
सार्वः सर्वगुणाम्भोधिः प्रभुः सज्जनवन्दितः ।।२१।।

अथैरावतमारुह्य स गीर्वाणसुरेश्वरः ।
तूर्णं समागमत्तत्र महामोदसमन्वितः ।।२२।।

युक्त्या प्रभुमथादाय शक्र आकाशवर्त्मना ।
उदीरयञ्जयध्वानं गतः स्वर्णाद्रिमञ्जसा ।।२३।।

पाण्डुकायामथो देवः संस्थाप्य भुवनेश्वरम् ।
क्षीरोदवारिसम्पूर्णै घटैरस्नापयद्विभुम् ।।२४।।

गन्धोदकैः पुनर्देवमभिषिच्य स सादरम् ।
सम्भूष्य भूषणैर्भूयः तं दिव्यैश्चाभिवन्दितः ।।२५।।

हस्तिनागपुरं शक्रस्ततः संप्राप्य सत्वरम् ।
नृपाङ्गणे तमारोप्य सम्पूज्याथ प्रणम्य च ।।२६।।

ताण्डवं संविधायासौ विश्वशान्तिप्रदान्वितः ।
शान्तिनाथाभिधां कृत्वा तस्य विश्वपतिस्तदा ।।२७।।

समर्प्य सादरं मातुः परमोत्सवसंयुतः ।
गीर्वाणैः समं प्रीत्या जगाम त्रिदशालयम् ।।२८।।

उसके बाद ऐरावत हाथी को भूषित करके इन्द्र सर्व देवों के साथ हर्षपूर्वक प्रभु के जन्म-स्थान पर आया। प्रभु को युक्ति से ग्रहणकर जयध्वनि करता हुआ इन्द्र आकाशमार्ग से मेरु-पर्वत पर ले गया, अनन्तर पाण्डुक-शिला पर जगत्-प्रभु को स्थापन कर क्षीर-समुद्र के जल से भरे हुए कलशों से प्रभु का अभिषेक किया। पश्चात् गंधोदकादिभिषेक करके अलंकार व वस्त्रों से भूषित किया। दोनों इन्द्रों ने प्रभु को नमस्कार किया। तत्पश्चात् इन्द्र, प्रभु को वापस हस्तिनापुर में ले आया

तथा राजाङ्गण में प्रभु का स्थापन कर, नमस्कार-पूर्वक पूजन किया और ताण्डव-नृत्य कर प्रभु का नाम, जगत् को शान्ति-प्रदान करने वाले होने के कारण, शान्तिनाथ रखा। इसके बाद प्रभु को माता के पास सोपकर, इन्द्र सर्व देवो के साथ प्रीति से स्वर्ग को वापस चला गया ।।२१-२८।।

लक्षवर्षायुरभवत् स देवोदेवतार्चितः ।
चत्वारिंशद्धनुष्कोऽयं ईश्वरो जगतां किल ।।२६।।

सर्वेषां सुखदो बाल्ये पित्रोश्चायं विशेषतः ।
ववृधे भूमिपागारे बालचन्द्र इवानिशम् ।।३०।।

पञ्चविंशतिसहस्रवर्षाणि जगदीश्वरः ।
कैतकेन निनायासौ कौमार्ये स्मरकोटिभिः ।।३१।।

पितृराजमथ प्राप्ता चक्रवर्ती बभूव सः ।
चतुर्दशास्य रत्नानि बभूवुः निधयो नव ।।३२।।

सर्वशत्रून् वशीकृत्य विजयी स नरेश्वरः ।
राज्यं बुभोज धर्मेण देवराजसमं विभुः ।।३३।।

एकस्मिन्दिवसे विद्युल्लतां दृष्ट्वा क्षणप्रभाम् ।
क्षणिकं विश्वमाबुध्य विरक्तस्स संसृतेरभूत् ।।३४।।

ब्रह्मर्षयस्तदा प्राप्ताः देवं संवीक्ष्य हर्षितः ।
प्रशशंसुः प्रभु वाक्यैः विरक्तिरसवर्धकैः ।।३५।।

द्वादशायमनुप्रेक्षां संभाव्य भुवनाधिपः ।
नारायणात्मजायाथ ददौ राज्यमनुत्तमम् ।।३६।।

सर्वार्थसिद्धिशिबिकां समारुह्य ततः प्रभुः ।
प्ररोढनीतामतुलां जयशब्दपुरस्सरः ।।३७।।

ज्येष्ठकृष्णचतुर्थ्यां स सहस्रक्षितिपैः सह ।
यथोक्तवनमासाद्य दीक्षां जग्राह धर्मवित् ॥३८॥

प्रभु की आयु एक लाख वर्ष की थी। वे देव-पूज्य थे। उनके शरीर की ऊँचाई चालीस धनुष प्रमाण थी। त्रैलोक्यनाथ प्रभु बालपन में भी सबको सुख प्रदान करते थे। राजा के घर में बाल-चन्द्र की भाँति वृद्धिगत होते हुए प्रभु ने आयु के पच्चीस हजार वर्ष बालपने में बिताये। प्रभु कोटि मदन की अपेक्षा भी सुन्दर थे। प्रभु को पिता का राज्य प्राप्त हुआ। वे चक्रवर्ती बने, उन्हें चौदह रत्न व नव-निधियों की प्राप्ति हुई। सर्व शत्रुओं को वश में करने के कारण वे विश्वविजयी थे। उन्होंने इन्द्र के समान धर्मपूर्वक राज्य किया। एक समय क्षणिक कान्ति की बिजली को देखकर, 'सर्व जगत् क्षणिक है'—ऐसा जानकर प्रभु संसार से विरक्त हुए। उसी समय ब्रह्मर्षि लोकान्तिक देवों ने प्रभु के वैराग्य की प्रशंसा की, व उन्हें देखकर हर्ष व्यक्त किया। प्रभु ने द्वादशानुप्रेक्षाओं का चिन्तवन किया और पुत्र नारायण को राज्य सौंप दिया। उसके बाद प्रभु सर्वार्थसिद्धि नामक शिविका में बैठे जय-जय शब्द करते हुए देव पालकी को लेकर वन की ओर चले। ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्थी (उ०पु० के अनुसार ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्थी) के दिन एक हजार राजाओं के साथ धर्मज्ञ शान्तिनाथ प्रभु ने दीक्षा धारण की ॥२९-३८॥

मनःपर्ययनामास्योदभूत् बोधश्चतुर्थकः ।
तेन विश्वमनोवार्तां ज्ञातुं सर्वामभूत् क्षमः ॥३९॥
द्वितीयेऽह्नि स भिक्षार्थं मन्दराख्यं पुरं गतः ।
सुमित्रभूमिपेनायं पूजितः संवरं प्रभुः ॥४०॥

अप्राहाहारमुचितं तदा तद्भूपतेर्गृहे ।
पञ्चाश्चर्याणि दिव्यानि बभूवुर्मोदकानि वै ।।४१।।

तपोवनमथासाद्य प्रभु र्वेलोपवासकृत् ।
महोग्रं तप आरेभे विश्वदुर्लभमुक्तये ।।४२।।

तपो नाना प्रदेशेषु कृत्वा मौनधरो विभुः ।
दग्ध्वाऽसौ निजकर्माणि शुक्लध्यानोग्रवह्निना ।।४३।।

ततः पौषदशम्यां स शुक्लायां मुनिवन्दितः ।
केवलानन्तसन्दोहं केवलज्ञानमाप सः ।।४४।।

तदा शक्रादयो देवाः प्राप्तास्तत्रैव हर्षिता ।
कृतः समवसारस्तैरद्भुतो रत्ननिर्मितः ।।४५।।

चक्रायुधादयस्तत्र गणेन्द्रास्ते तदादिभिः ।
यथोक्तैर्द्वादशोक्तेषु कोष्ठेषु समवस्थितैः ।।४६।।

सर्वैः स संस्तुतो देवो भक्तिनम्रकरैर्जनैः ।
धर्मोपदेशं कृतवान् सर्वेभ्यो दिव्यनादतः ।।४७।।

प्रभु को मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ, जिसके द्वारा वे विश्व के मन की बात को जानने में समर्थ हुए । दूसरे दिन भिक्षा के लिए प्रभु मन्दर नामक ग्राम में गये । वहाँ पर सुमित्र नामक राजा ने आदरपूर्वक प्रभु की पूजा कर, उन्हें आहार दिया । तब मोह-विनाशक पञ्चाश्चर्य वृष्टि हुई । तदनन्तर प्रभु ने पुनः तपोवन में जाकर एक उपवास की प्रतिज्ञा करके विश्व के लिए दुष्कर महोग्रतप प्रारंम्भ किया । उन्होंने मौन धारण कर नाना प्रदेशों में तप किया । त्रैलोक्य में भ्रान्ति उत्पन्न करनेवाले कर्म नष्ट करके पौष शुक्ल दशमी के दिन मुनि-वंदित प्रभु ने केवलानन्द का समूह—ऐसा अनन्त केवलज्ञान प्राप्त किया ।

इन्द्रादिक देव हर्ष-पूर्वक आये, व उन्होंने रत्नखचित समवशरण की रचना की। चक्राधरादिक गणधर व अवधिज्ञान युक्त मुनि, देव, मनुष्यादिक यथाक्रम से बारह सभाओं में बैठे। उन सभी ने नम्र होकर, करबद्ध होकर प्रभु की स्तुति की। प्रभु ने सबके लिए दिव्यध्वनि द्वारा धर्मोपदेश दिया ॥३६-४७॥

विहृत्स्युपदेशेषु सर्वेषु जगदीश्वरः।
एकमासावशिष्टायुः ज्ञात्वा संहृत्य तद्ध्वनिम् ॥४८॥

सम्मेदपर्वतं गत्वा सहस्रमुनिसंयुतः।
प्रभासकूटे स्थितवान् विशदध्यानतत्परः ॥४९॥

स्थित्वैकमासं तत्रासौ प्रतिमायोगवान्प्रभुः।
वैशाखशुक्लप्रतिपदाप सिद्धपदं मुदा ॥५०॥

ततः कोटयेककोटीनां नवकोटयस्ततः परम्।
नवलक्षाः सहस्राणि नवैव तदनन्तरम् ॥५१॥

सैकोनशतरन्ध्रोक्ता शतानीत्येवसंख्यया।
प्रभासकूटान्निर्वाणपदं भव्याः प्रपेदिरे ॥५२॥

ततः सुदर्शनोराजा सङ्घं सम्पूज्य भक्तितः।
सम्मेदयात्रां कृतवान् वक्ष्येऽहं तत्कथां शुभाम् ॥५३॥

भगवान् ने सर्वदेशों में विहार किया। जब प्रभु का आयुष्य एक महिना मात्र अवशिष्ट रह गया तब उनकी दिव्यध्वनि बंद हो गई और वे सम्मेदशिखर पर्वत के प्रभासकूट पर एक हजार मुनियों के साथ में जाकर शुक्लध्यान में स्थिर हुए। योग-निरोध कर वैशाख शुक्ल प्रतिपदा के दिन उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया। इस प्रभासकूट से एक कोटाकोटि, नौ करोड़, नौ लाख, नौ हजार, नौ सौ निन्यान्वे मुनि मोक्ष गए। इसके बाद भक्ति-तत्पर

सुदर्शन नामक राजा ने संघ की पूजाकर सम्मेद-यात्रा की—
उसकी कथा मैं कहता हूँ ॥४८-५३॥

जम्बूद्वीपेशुचि क्षेत्रे भरते विषये महान् ।
विरिञ्चनामा तत्रास्ति स्थायं मित्रपुरं महत् ॥५४॥

सुदर्शनो नाम राजा तत्राभूत् तस्य तु प्रिया ।
नाम्ना विजयसेना सा शीलशोभाखनीस्मृता ॥५५॥

एकदा स गतो राजा वनक्रीडार्थमञ्जसा ।
वने तत्र ददर्शाऽसौ मुनिं ज्वलनसन्निभम् ॥५६॥

अनन्तवीर्यनामानं केवलज्ञानदीपितं ।
त्रिः परिक्रम्य तं राजा प्रणनामकृताञ्जलिः ॥५७॥

ततो नृपः स्वपर्यायान् प्रपृच्छ मुनिसत्तमम् ।
तमब्रवीन्मुनीशानः स्वजनुष्यधनाश्रृणु ॥५८॥

पूर्वजन्मनि भूपाल त्वयासम्मेदभूभृतः ।
यात्रा कृता मनोवाग्भ्यां कायेन श्रद्धया मुदा ॥५९॥

तस्मात्त्वमस्मिन्पर्याये भूयसोऽपि महानृप ।
किञ्चिदन्यदपि क्षोणीपते श्रृणु कथान्तरम् ॥६०॥

इस शुभ जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में महत्त्वशाली विरची नामक देश में मित्रपुर नामक एक बड़ा नगर है। वहाँ सुदर्शन नामक राजा राज्य करता था। उसकी प्रिय पत्नी का नाम विजयसेना था, जो शील-शोभा से सहित थी। एक बार राजा सुदर्शन वन-क्रीडा को गया, वहाँ पर उसने अग्नि के समान तेजस्वी एक मुनि को देखा। उनका नाम अनन्तवीर्य था तथा वे केवलज्ञान से दीप्त थे। राजा ने उन्हें प्रदक्षिणा-पूर्वक नमस्कार किया व अपने पूर्वभवों का वृत्तान्त पूछा। केवली

भगवान् ने उत्तर दिया—राजन्! तुमने पूर्वभव में सम्मेदशिखर की यात्रा की थी, इसी के कारण तुम इस भव में राजा हुए हो। हे राजन्! कुछ भिन्न एक दूसरी कथा मैं तुमको कहता हूँ, सो सुनो ॥५४-६०॥

पोदनाख्यपुरे विप्र एक आसीत्पुरोऽधनः।
सोमशर्माभिधानोऽसौ महादारिद्र्यपीडितः ॥६१॥
स चारणमुनिं दृष्ट्वैकदा तमभिवन्द्य तम्।
प्राह दारिद्र्यपीडा मे कथं नश्येद्दयानिधे ॥६२॥
मुनिनोक्तं तदा विप्र गच्छ सम्मेदपर्वतम्।
निश्चयेन गते तत्र दारिद्र्यं ते गमिष्यति ॥६३॥
इति वाक्यं मुनेः श्रुत्वा तत्क्षणादेव सिद्धिजम्।
अचलच्छैलयात्रायै धनावाप्त्यै नराधिपः ॥६४॥
स गच्छन्पथ्ये एकाकी भूत्वा गुप्तिसमन्वितम्।
विद्याधरं महासुज्ञं तत्रागतमपश्यत ॥६५॥
तद्विभूतिं स दृष्ट्वा तं निदानमनुबद्धकृत्।
एतदेव फलं मेऽस्तु यात्रायां मनसार्पयत् ॥६६॥
सम्मेदयात्राकर्त्ताऽसौ ततः सम्प्राप्य पञ्चताम्।
स्वर्गे चतुर्थे देवोऽभूत् महाभूतिप्रदीपितः ॥६७॥

पोदन नामक नगर में सोमशर्मा नाम का एक ब्राह्मण रहता था। वह अतिशय दारिद्र्यवान् था। एक बार उसने चारण मुनि को देखा व नमस्कार कर कहने लगा—प्रभो! मेरी यह दारिद्र्य-पीड़ा कैसे नष्ट होगी? कृपा करके मुझसे कहो। तब मुनिराज कहने लगे—हे ब्राह्मण! तुम सम्मेदशिखर क्षेत्र की यात्रा करो। निश्चित ही तुम्हारा दारिद्र्य नष्ट हो

जायेगा। मुनीश्वर के वचन सुनकर, मुझे तत्काल धन-प्राप्ति होगी—ऐसा मानकर, वह ब्राह्मण क्षेत्र की यात्रा करने के लिए निकला। जाते समय उसे एक वैभवयुक्त विद्याधर दिखाई दिया। उसके वैभव को देखकर उस ब्राह्मण ने सम्मेदशिखर की यात्रा करने के फलस्वरूप, 'मुझे भी इसी तरह की विभूति मिले'—ऐसा निदान किया। सम्मेद-यात्रा करके वह मृत्यु को प्राप्त हुआ तथा चतुर्थ स्वर्ग में महाभूति नामक देव हुआ ॥६१-६७॥

ततः स्वर्गाच्च्युतो भूम्यां भूपतिः स महानभूत्।
यात्रा सम्मेदशैलस्य चकार विधिवत्पुनः ॥६८॥

यात्रां कृत्वा विरक्तोऽयं दीक्षां धृत्वाऽथ पावनीम्।
एककोटि चतुर्युक्ताऽशीतिलक्ष मुनीश्वरैः ॥६९॥

केवलज्ञानमासाद्य शुक्लध्यानधरोनघः।
अभिवन्द्य प्रभासाख्यं कूटं सम्प्राप सिद्धताम् ॥७०॥

एककूटस्य मुनिना फलमीदृक् प्रकाशितम्।
तद्वन्दको न नरकं न पशुत्वं क्वचिल्लभेत् ॥७१॥

श्रीशान्तिनाथेन विधाय वासं
यस्मिश्च मासावधियोगसिद्धैः।
सिद्धालयोलब्ध उदारबुद्धया
प्रभासकूटं शिरसा नमामि ॥७२॥

तदनन्तर स्वर्ग से च्युत होकर वह बड़ा वैभवशाली राजा हुआ। पुनः उसने विधि-पूर्वक शिखर की यात्रा की। यात्रा करके विरक्ति धारण करते हुए उसने मुनि दीक्षा ले ली। तथा एक करोड़, चौरासी लाख मुनीश्वरों के साथ शुक्ल-ध्यान से

उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया। अन्त में उन्होंने प्रभासकूट से मुक्ति प्राप्त की। इस कूट की वंदना करने वाला नरक व पशु पर्याय में उत्पन्न नहीं होता है। श्री शान्तिनाथ भगवान् ने जिस प्रभासकूट पर एक माह पर्यन्त प्रतिमायोग धारण कर सिद्धपद प्राप्त किया, उस प्रभासकूट को मैं अतिशय ज्ञानयुक्त भक्ति से मस्तक नम्र कर नमस्कार करता हूँ ॥६८-७२॥

इति दीक्षितब्रह्मनेमिदत्तविरचिते सम्मेदशैलमाहात्म्ये प्रभासकूट वर्णनंनाम पंचदशोध्यायः सम्पूर्णः ॥१५॥

इसप्रकार सम्मेदशिखर माहात्म्य ग्रन्थ में प्रभासकूट का वर्णन करनेवाला पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

जीवन तो नदी का बहता पानी है; जिसमें कई मोड़ आते हैं, मगर उन मोड़ों की परवाह किये बिना ही नदी का जल आगे बढ़ता ही जाता है। मानव को भी अपने जीवन में कठिनाई रूपी मोड़ों से कभी नहीं घबराना चाहिये। उसे भी सरिता के प्रवाह तुल्य विपदाओं का सामना करते हुए आगे बढ़ते रहना चाहिये। कठिनाइयों से घबराना मृत्यु और उनसे संघर्ष ही जीवन है।

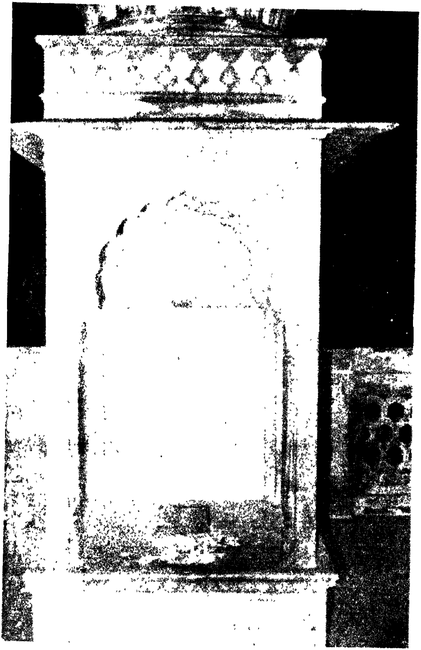
अथ षोडशोऽध्यायः

(श्री कुन्थुनाथ जिनेन्द्र चरित्र)

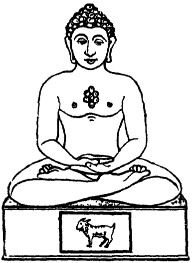
कूटं ज्ञानधरं वन्दे कुन्थुनाथमहेशितुः ।
यतो मुक्तिपदं यातः कुन्थुनाथो जगत्पतिः ।।१।।
भव्यरक्षाकरो यस्तु उज्झित्वा पापसञ्चयम् ।
मनसा वचसा मूर्ध्ना कुन्थुनाथं तमाश्रये ।।२।।
तस्याधस्तस्य कूटस्य चरितं पञ्चसूचिकम् ।
माहात्म्यं विमलैःश्लोकैः वक्ष्ये श्रृणुत सज्जनाः ।।३।।

श्री कुन्थुनाथ जिनेश्वर के ज्ञानधर कूट की मैं वंदना करता हूँ। इस कूट से जगत् के स्वामी श्री कुन्थुनाथ स्वामी मुक्तिपद को प्राप्त हुए। भव्यों के पाप-समूहों का नाश करके जिन्होंने उनका रक्षण किया है, उन कुन्थुनाथ का, मैं मन-वचन-काय से आश्रय लेता हूँ। उस ज्ञानधर कूट का माहात्म्य व कुन्थुनाथ के पञ्चकल्याण-सूचक चारित्र का माहात्म्य मैं निर्मल श्लोकों द्वारा कहता हूँ, सो सुनो ।।१-३।।

जम्बूद्वीपे विदेहेऽस्मिन् पुरे सीतासरित्तटे ।
दक्षिणे वत्सविषयो भव्यानामाकरो महान् ।।४।।
नाम्ना सिंहरथस्तत्र तेजोराशिर्महायशाः ।
राजा बभूव धर्मात्मा पराक्रमनिधिर्महान् ।।५।।
त्रुटयत्तारामेकदाऽसौ दृष्ट्वा प्राप्य विरक्तताम् ।
राज्यं समर्प्य पुत्राय बहुभिः सह भूमिपैः ।।६।।
दीक्षां गृहीत्वांगान्येकादशसंधार्य वै ततः ।
पूर्वाश्चतुर्दशाधीत्या भावयित्वा स भावनाः ।।७।।



ज्ञानधर कूट



कुन्थनाथ जिनराज का, कूट ज्ञानधर जेह ।
मन वच तन कर पूजहूं, शिखर सम्मेद यजेह ।।

ओ३म् ह्रीं श्री कुन्थनाथ जिनेन्द्रादि मुनि ९६ कोड़ा कोड़ी ९६ करोड़ ३२ लाख ९६ हजार ७४२ मुनि इस कूट से सिद्ध भए तिनके चरणारविन्द को मेरा मन वचन काय से बारम्बार नमस्कार हो जलादि अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।।१७।।

इस टोंक की भाव सहित वन्दना करने से एक करोड़ उपवास का फल होता है ।

स बद्ध्वा तीर्थकृद्गोत्रं तपस्तप्त्वा मनेबहृत् ।
संन्यासेनायुषान्तेन तनुं त्यक्त्वाथ धीमितः ।।८।।

सर्वार्थसिद्धावभवदहमिन्द्रः सुरार्चितः ।
त्रयः त्रिंशत्सागरायुः तत्सुखं सममन्वभूत् ।।९।।

तत्रोक्ताहारनिश्वास सम्प्राप्त परिपूरितः ।
सिद्धान्ववन्द तद्ध्यात्वा सम्यग्भावसमन्वितः ।।१०।।

इस जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में सीता नदी के दक्षिण तट पर वत्स देश है । वह देश भव्यों की खान है । इस देश के राजा का नाम सिंहरथ था । वह तेजोपुञ्ज व महायशस्वी था । वह धर्मात्मा और महा पराक्रमी था । उसे एक दिन आकाश से टूटकर गिरता हुआ एक तारा दिखाई दिया, जिसे देखकर वह विरक्त हुआ । उसने अपने पुत्र को राज्य देकर अन्य बहुत-से राजाओं के साथ दीक्षा ले ली तथा ग्यारह अंगों का ज्ञान प्राप्त करके व सोलह भावनाओं का चिन्तवन करके तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया । वन में उसने तपश्चरण किया व अन्त में सन्यास धारणकर शरीर का त्याग कर सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र देव के रूप में जन्म लिया । वहाँ उसने तेतीस सागर वर्ष पर्यन्त सुखानुभव किया । मानसिक आहार, विक्रिया, निश्वास आदि पूर्ववत् समझना चाहिए । उत्तम भाव-युक्त वह अहमिन्द्र नित्य ही सिद्धों का चिन्तवन कर वंदन करता रहता था ।।४-१०।।

पुनर्येषां प्रकारेणाऽवतरद्वसुधातले ।
तद्वक्ष्ये सङ्ग्रहेणाहं ध्यात्वा चित्ते तमेव हि ।।११।।

जम्बूमति महाद्वीपे भारतेक्षेत्र उत्तमे ।
कुरुजाङ्गलदेशोऽस्ति प्रसिद्धो धर्मसागरः ।।१२।।

हस्तिनागपुरे तत्र कुरुवंशेऽतिनिर्मले ।
सूर्यषेणोऽभवद्राजा तेजसा सूर्यसन्निभः ॥१३॥
श्रीकान्ता तस्य महिषी भूमिगा श्रीरिवापरा ।
सती धर्मयुता शीलराशिः सर्व गुणान्विता ॥१४॥
षण्मासस्याग्रतश्चास्य भुवने धनदः स्वयम् ।
शक्राज्ञप्तः सुरत्नानि ववर्ष धनवन्मुदा ॥१५॥
एकदा श्रावणे मासे दशम्यां कृष्णपक्षके ।
कृत्तिकायां स्वपर्यङ्के सुप्ता सा भूपतिप्रिया ॥१६॥
निशावसाने सा देवी स्वप्नानैक्षत षोडश ।
स्वप्नान्ते प्राविशत्स्ववक्त्रान्ते मत्त सिन्धुरम् ॥१७॥
ततः प्रबुद्धा सा देवी विस्मिता पत्युरन्तिके ।
स्वप्नानकथयत्तान्सा श्रुत्वास्यार्थं जहर्ष सा ॥१८॥
श्रुत्वा पतिमुखात्स्वप्नफलं भावी सु भामिनी ।
वाचामगोचरं प्राप सुखं तारेश्वरानना ॥१९॥
तत्फलप्राप्तिसिद्धयर्थं त्रिविधिभ्यो धनं महत् ।
सुपात्रेभ्यः प्रतिदिनं ददावानन्दसंप्लुता ॥२०॥
तद्गर्भमागते देवे दिशः सर्वाश्चकाशिरे ।
गगनं निर्मलं चासीत् मरुतस्त्रिविधा ववुः ॥२१॥
वैशाखमासे शुक्लायां गर्भभे प्रतिपत्तिथौ ।
देवः प्रादुरभूत्तस्यां तपस्तेजोनिधिः प्रभुः ॥२२॥

वह अहमिन्द्र अनायास ही इस पृथ्वी पर उतरा। उसका वर्णन मैं संग्रह-रूप से उन्हीं का चिन्तवन करते हुए कहता हूँ। इस जम्बूद्वीप के उत्तम भरतक्षेत्र में धर्म का सागर रूप प्रसिद्ध कुरु-जांगल देश है। उसके हस्तिनापुर नगर में कुरु-

वंशीय सूर्यसेन नामक राजा हुआ। वह तेज में सूर्य के समान था। उसकी रानी का नाम श्रीषेणा था। वह मानों इस पृथ्वी पर लक्ष्मी का ही रूप थी। वह सती-धर्म से युक्त, शील-सम्पन्न, सर्व-गुण-सम्पन्न थी। जिनेश्वर के जन्म लेने के छह माह पूर्व से ही इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने आनन्दपूर्वक रत्नवृष्टि करना शुरू कर दिया और पन्द्रह महिने तक करता रहा। एक बार श्रावण कृष्ण दशमी के दिन कृतिका नक्षत्र के रहते हुए पलंग पर सोती हुई रानी ने रात्रि के अंतिम प्रहर में सोलह स्वप्न देखे तथा अन्त में एक उन्मत्त हाथी को अपने मुख में प्रवेश करते हुए देखा। उन्हें देखकर रानी जागृत हो गई व आश्चर्यचकित होकर उसने पति के पास जाकर वे स्वप्न कह सुनाये। उन स्वप्नों को सुनकर राजा को बहुत आनन्द हुआ। पति के मुख से स्वप्नों का फल सुनकर चन्द्रमुखी रानी ने शब्दातीत हर्षानुभव किया। स्वप्नों के फलों की प्राप्ति के लिए रानी तीन प्रकार के सुपात्रों को आनन्द से दान देने लगी। जब अहमिन्द्र का जीव गर्भ में आया तब सर्व दिशायें प्रसन्न हो गईं, आकाश निर्मल हो गया, मन्द-सुगन्धित पवन चलने लगा। बैशाख शुक्ल प्रतिपदा के दिन कृतिका नक्षत्र के रहते हुए तेजोनिधि प्रभु का जन्म हुआ ॥११-२२॥

सौधर्मेशस्तदैवान्तर्मुदितोऽवधितः प्रभोः।
ज्ञात्वाऽवतरणं तत्र प्राप्तस्सह सुरासुरैः ॥२३॥
स्वयुक्त्या तं महेशानं समादाय रविप्रभम्।
अद्भुताकारमापेदे तत्क्षणात्स्वर्णभूधरम् ॥२४॥
तत्र क्षीरोदधारिभिः स पूरितैरायतैर्घटैः।
कानकैः पाण्डुकायां सोऽस्नपयज्जगदीश्वरम् ॥२५॥

पुनर्गन्धोदकस्नानं कारयित्वाऽथ भूषणैः ।
दिव्यैस्सम्भूष्य तं देवं स्तुत्वा भक्त्याभ्यवन्द
(न्दि) तः ॥२६॥

सौधर्मेन्द्र ने अपने अवधिज्ञान से प्रभु का जन्म हुआ जानकर हर्षानुभव किया व तत्काल सर्व देवों के साथ राजगृह में आया। सूर्य के समान कान्ति-सम्पन्न आश्चर्यकारक शरीर-सौन्दर्य धारण करने वाले प्रभु को लेकर इन्द्र मेरुपर्वत पर आया। वहाँ पाण्डुकशिला पर उसने क्षीरसागर के जल से भरे विशाल स्वर्णकलशों से प्रभु का अभिषेक किया। पश्चात् गन्ध के जल से स्नान कराकर प्रभु को वस्त्राभूषणों से भूषित कर उनकी स्तुति व नमस्कार किया ॥२३-२६॥

अथ स्वाङ्गे समारोप्य तं देवं देवताधिपः ।
देवैस्सह जयध्वानमुच्चरन्मोद निर्भरात् ॥२७॥

हस्तिनागपुरे भूपं सम्प्राप्य मनुजेशितुः ।
हेमाङ्गणे तमारोप्य सम्पूज्य विधिवत्ततः ॥२८॥

पुलकाङ्कित सर्वाङ्गो विधायाद्भुतताण्डवम् ।
आचकर्ष मनस्तत्र सर्वेषामङ्गहारदः ॥२९॥

कुन्थुनाथाभिधां तस्य सर्वेषां पापकुन्थनात् ।
कृत्वा मात्रे समर्प्याथ हृष्टोऽगादमरावतीम् ॥३०॥

तत्पश्चात् प्रभु को अपनी गोद में लेकर अतिशय आनन्द से जय-जयकार करते हुए सर्व देवों के साथ इन्द्र हस्तिनापुर आया, जहाँ उसने प्रभु को राज्याङ्गण में सिंहासन पर स्थापन कर पूजा की तथा रोमाञ्चकारी ताण्डव-नृत्य किया। उसका अभिनय सबके अन्तःकरण को आकर्षित कर रहा था। इन्द्र ने,

सबके पापों का नाश करने वाले होने के कारण प्रभु का नाम कुन्थुनाथ रखा व उसके बाद जिन-बालक को माता को सौंपकर अमरावती के लिए प्रस्थान कर गया ।।२७-३०।।

एकपल्यमिते काले शान्तिनाथाद्गते विभुः ।
तन्मध्येजीवि देवार्च्यः कुन्थुनाथोऽभवत् तदा ।।३१।।

पञ्चोत्तर नवत्युक्त्वा सहस्रायुस्स देवराट् ।
पञ्चत्रिंशद् धनुष्कायो बभूव वसुधातले ।।३२।।

कौमारेऽस्य त्रयोविंशत्युक्तसहस्रवत्सराः ।
सार्धसप्तशतोक्ताश्च व्यतीयुर्बालकेलितः ।।३३।।

राज्यं सपैतृकमथो प्राप्य तारुण्यदीपितः ।
चक्रवर्त्यभवद् भूपो जितसर्वविपक्षकः ।।३४।।

शान्तिनाथ के मोक्ष जाने के बाद एक पल्य प्रमाण काल व्यतीत होने पर कुन्थुजिनेन्द्र का जीवन-काल है। कुन्थु की आयु पन्चान्वे हजार वर्ष थी। वे पैंतीस धनुष ऊँचे थे। प्रभु का कुमारकाल तेबीस हजार वर्षों तक रहा उनका यह काल बाल-क्रीडाओं में व्यतीत हुआ। इसके बाद तारुण्य आने पर प्रभु को पिता का राज्य प्राप्त हुआ। कुछ समय पश्चात् वह चक्रवर्ती हुए, उन्होंने सर्व शत्रुओं को अपने अधीन कर लिया।।३१-३४।।

भूभृत्किरीटसंलग्न-प्रदीप्यद्रत्नराजिभिः ।
सन्दीपित पदाम्भोजः परमं सुखमन्वभूत् ।।३५।।

एकस्मिन् समये देवः स्वात्मध्यानपरायणः ।
देहाद्विभिन्नमात्मानं बद्धं हि विकृतिस्तनोः ।।३६।।

विज्ञाय तत्क्षणाद्देहात् विरक्तोऽभून्महामतिः ।
तदा लौकान्तिका देवाः आगतास्तं प्रतुष्टुवुः ।।३७।।

राजाओं के मुकुट में चमकने वाले रत्नों की पंक्ति से जिनके पाद-कमल चमक रहे हैं, ऐसे प्रभु परम सुखी हुए। एक बार प्रभु आत्म-ध्यान परायण हुए। देह से आत्मा भिन्न है, लेकिन वह शरीरादि के कारण विकाररूप परिणमित होकर कर्मबद्ध होता है—ऐसा जानकर देह से भी उनकी बुद्धि विरक्त हो गई। उसी समय लौकान्तिक देवों ने आकर प्रभु की स्तुति की ।।३५-३७।।

मघवापि तदा प्राप्तो देवैः सह मुदान्वितः ।
जय देव ! समुच्चार्य भक्त्या तं प्रणनाम (च)।।३८।।

विजयाख्यां तदारुह्य शिविकां स जगत्पतिः ।
सहेतुकवनं भूपैः सहस्रैः सहितो ययौ ।।३९।।

तत्र वैशाखमासस्य शुक्लायां प्रतिपद्यसौ ।
सार्धकैर्भूमिपैः सार्धं जैनीं दीक्षां समग्रहीत् ।।४०।।

मनःपर्ययमापासौ तदैव ज्ञानमुत्तमम् ।
द्वितीये घस्रे भिक्षार्थं हस्तिनागपुरं गतः ।।४१।।

धर्ममित्रो महीपालस्तत्र तस्मै महादरात् ।
ददौ शुचि तदाहारं पञ्चाश्चर्याण्यवैक्षत ।।४२।।

पुनर्वनमसौ प्राप्य षोडशाब्दं स मौनभाक् ।
महोग्रं तप आरेभे दुष्करं प्राकृतैर्जनैः ।।४३।।

तपसा दग्धकर्मासौ तिलकद्रुमाधः सुरेट् ।
चैत्रशुक्लतृतीयायां केवलज्ञानमाप्तवान् ।।४४।।

तप एक परं श्रेयः तपसा कर्मणां क्षतिः ।
कर्मक्षयाद् भवेज्ज्ञानं ज्ञानान्मोक्षपद (दे) स्थितिः ।।४५।।

उसी समय इन्द्र भी आनन्दित होकर देवों के साथ में हस्तिनापुर नगर में आया व प्रभु की जयकार करता हुआ उनकी वंदना की। प्रभु विजया नामक पालकी में बैठकर दीक्षा लेने वन की ओर चले। वहाँ पहुँचकर बैशाख शुक्ल प्रतिपदा के दिन उन्होंने एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा ले ली। उसी समय प्रभु को मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त हुआ। दूसरे दिन प्रभु आहार के लिए हस्तिनापुर में आये। वहाँ धर्ममित्र नामक राजा ने प्रभु को भक्तिपूर्वक शुद्ध आहार दिया। देवों ने पंचाश्चर्यवृष्टि की। आहार करके प्रभु फिर वन में चले गये। सोलह वर्ष पर्यन्त सामान्य पुरुषों के लिए अशक्त महा उग्र तपश्चरण उनने किया। देवाधिदेव प्रभु ने तप प्रभाव से घातिकर्म का अभाव कर दिया। चैत्र शुक्ल तृतीया के दिन तिलकवृक्ष के नीचे ध्यानस्थ प्रभु को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। तप ही आत्मा का उत्कृष्ट कल्याण करता है, अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति कराता है। तप से ही कर्मों का नाश होता है। कर्मक्षय हो जाने से ही केवलज्ञान व मुक्ति प्राप्त होती है ॥३८-४५॥

ततः समवसारेऽसौ धनदादिविनिर्मिते ।
शक्रादि संस्तुतो देवः शुशुभे कौटिसूर्यरुक् ॥४६॥

स्वयम्भूगणपालाद्यैः यथोक्तैरखिलैः-स्तुतः ।
सम्पूजितो वन्दितश्च रराज परमेश्वरः ॥४७॥

दिव्यध्वनिं समुच्चार्य धर्मानुपदिशत्सताम् ।
सर्वक्षेत्रेषु विहरन् मासावधि निजायुषः ॥४८॥

इसके बाद कुबेरादिक ने समवशरण की रचना की, इन्द्रादिकों ने प्रभु की स्तुति की। प्रभु की कान्ति कोटि सूर्य के

समान थी। सर्व स्वयंभू गणधरणादिकों ने प्रभु की स्तुति की, पूजा-वंदना की। इस प्रकार प्रभु शोभित होने लगे। दिव्यध्वनि से उपदेश करते हुए प्रभु ने अनेक क्षेत्रों में विहार किया। जब एक माह की आयु अवशिष्ट रही तब प्रभु दिव्यध्वनि बंद कर सम्मेदशिखर पर्वत के ज्ञानधर कूट पर स्थिर हो गये ।।४६-४८।।

प्रमाणं हृदि सम्बुध्य मौनमास्थाय स प्रभुः।
सम्मेदं प्राप्य सो तिष्ठत् कूटे ज्ञानधराभिधे ।।४६।।

पूर्णयोगं समारुह्य शुक्लध्यानधरो विभुः।
सहस्रमुनिभिः साकं निश्रेयसपदं गतः ।।५०।।

चैत्रामायां गते तस्मिन् मोक्षसिद्धि जगत्पतौ।
तत्पश्चात् षण्णवत्युक्तकोटीनां कोटिकाः स्मृता ।।५१।।

षण्णवत्युक्तकोट्यश्च द्वात्रिंशन्मितलक्षकाः।
षण्णवत्युक्तसाहस्रयुक्तासप्तशती तथा ।।५२।।

द्विचत्वारिंश इत्युक्त सङ्ख्यया गणिताः शिवम्।
तस्मादेव गिरेः कूटात् गता भव्यास्तपोज्ज्वलाः ।।५३।।

शुक्लध्यान धारण करने वाले प्रभु ने पूर्ण योग पर आरोहण किया। एक हजार मुनियों के साथ चैत्र कृष्ण अमावस्या के दिन प्रभु ने मोक्ष प्राप्त किया। उनके मोक्ष प्राप्त होने के बाद छियान्वे कोटाकोटि, छियान्वे कोटि, बत्तीस लाख, छियान्वे हजार सात सौ बयालीस मुनियों ने उज्ज्वल तप से पवित्र होकर इस ज्ञानधर कूट पर से मोक्ष को प्राप्त किया ।।४६-५३।।

अथ सोमधरोराजा गिरियात्रां चकार सः।
तत्कथां पावनीं भव्याः मदुक्तां श्रुणुताधुना ।।५४।।

जम्बूमति शुभे क्षेत्रे भरतस्योपवर्तनम् ।
वत्साख्यं तत्र-चाभाति सम्बलं नगरं महत् ॥५५॥
महासेनोऽभवद्राजा तत्वज्ञानसमन्वितः ।
सोमश्री तस्य महिषी तयोसोमधरः सुतः ॥५६॥
स तु पुण्यनिधिर्नित्यं याचकेभ्यो उदारधीः ।
ददौ दानानि बहुशो याचितानि च याचितैः ॥५७॥
शीलसन्तोषिताऽशेषैः सद्गुणैः समलङ्कृतः ।
तपस्वी गृहमध्येऽपि स कदाचिद्वनं ययौ ॥५८॥

सोमधर राजा ने इस क्षेत्र की यात्रा की—उसकी पवित्र कथा मैं कहता हूँ। हे भव्यजीवों, तुम भक्ति से सुनो। इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में वत्स देश है। उस देश में संबल नामक एक नगर है, जहाँ महासेन नामक एक तत्वज्ञानी राजा राज्य करता था। उसकी रानी सोमश्री थी। उन दोनों के सोमधर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह राजा पुण्य की निधि था। उसकी बुद्धि उदार थी। याचकों को इच्छित वस्तु का दान कर वह उन्हें तृप्त करता था। वह राजा शील, सन्तोष आदि गुणों से अलंकृत था तथा घर में रहता हुआ भी तपस्वी के समान था। एक बार वह वन में गया ॥५४-५८॥

तत्रैकं मुनिराजं स वने संवीक्ष्य तापसम् ।
अपृच्छन्मुक्तिमार्गं स प्रणम्य तमथानघम् ॥५९॥
दर्शितो ह्यचिरं तेन मुक्तिमार्गं समुज्ज्वलम् ।
पुनस्सम्मेदमाहात्म्यं कथितं मुनिना भृशम् ॥६०॥
तथासोमधरो राजा भव्यमौलिर्गुणाम्बुधिः ।
श्रुत्वा सम्मेदमाहात्म्यं मुनिना भाषितं वरम् ॥६१॥
तदैव गृहमागत्य सम्मेदधरणीभृतः ।
यात्रोद्योगं चकारासौ भेरीध्वानमकारयत् ॥६२॥

हस्त्यश्वरथपत्यश्च सम्भूष्य बहुधा नृपः ।
सङ्घं चतुर्विधं तत्र पूजयन्नमृताम्बुधिः ॥६३॥
ततः सुखेन मार्गेऽसौ वसन् कतिपयैर्दिनैः ।
प्राप सम्मेदशैलेन्द्रं भव्यजीवनमस्कृतम् ॥६४॥

वहाँ पर एक तपस्वी को देखकर उसने नमस्कार करके उनसे मुक्ति का मार्ग पूछा। मुनिराज ने उसका विस्तृत विवेचन किया और साथ ही सम्मेदगिरि क्षेत्र का माहात्म्य भी बताया। भव्यों में श्रेष्ठ व गुण-सागर सोमप्रभ राजा ने मुनि-कथित सम्मेदगिरि माहात्म्य सुनकर, यात्रा पर जाने का निश्चय किया। उसने घर आकर, यात्रोद्योग की सबको जानकारी हो जाये—इस भावना से नगारे का शब्द करवाया। हाथी, रथ, अश्व, पैदल आदि को सजाकर, चतुर्विध संघ को पूजता हुआ राजा, सुख से—मार्ग में ठहरता हुआ, कुछ ही दिनों में सर्व-जीवों द्वारा पूजित सम्मेदगिरि पर पहुँचा ॥५९-६४॥

तत्र ज्ञानधरं कूटमभिवन्द्य समर्च्य च ।
एकार्बुदचतुर्युक्ताऽशीतिकोटिप्रमाणितैः ॥६५॥
भव्यैस्सह तपोदीक्षां गृहीत्वा तप आचरन् ।
घातिकर्माणि सर्वाणि दग्ध्वा घोरंतपोऽग्निना ॥६६॥
केवलज्ञानसम्पन्नः शुक्लध्यानप्रयोगतः ।
मुनिः सोमधरो मुक्तिपदं प्राप सुदुर्लभम् ॥६७॥

वहाँ उसने ज्ञानधर कूट की वंदना की, पूजा की। फिर एक अरब चौराशी कोटि भव्यों के साथ दीक्षा लेकर तपश्चरण अंगीकार किया। घोर तप रूपी अग्नि से घातिकर्मों को जलाकर वे केवलज्ञानी हुए तथा शुक्लध्यान से दुर्लभ मुक्तिपद प्राप्त किया ॥६५-६७॥

इत्थमेकस्य कूटस्य फलं तत्सर्वजं फलम् ।
जिनेन्द्र एव जानाति नान्योलघुमतिर्भुवि ।।६८।।
यथाश्रुतं तथा चोक्तं सर्वकूटाभिवन्दनात् ।
यत्फलं तत्फलं सत्यं प्राप्यते नैव वाग्बलात् ।।६९।।

इस प्रकार एक कूट की वंदना का फल ऐसा है, तब सर्व कूटों की वंदना करने वाले को प्राप्त होने वाले फल को तो जिनेन्द्र ही जान सकते हैं, अल्पबुद्धि मनुष्य नहीं। हमने जैसा सुना है, वैसा ही वर्णन किया है। सर्वकूटों की वंदना का फल कहना शक्य नहीं है ।।६८-६९।।

शार्दूलविक्रीडितम्

प्राप्यान्तः शुचिकेवलं स्वतपसा कृत्वा क्षयं कर्मणाम् ।
स्थित्वा यत्रजगत्पतिः शिवपदं श्रीकुन्थुनाथो गतः ।।
तत्पश्चाद्यत एव यत्प्रणमनात्संसारवारांनिधिम् ।
तीर्त्वा ज्ञानधरं गताश्च बहवः सिद्धिं तमीडे सदा ।।७०।।

त्रिलोकपति भगवान् कुन्थुनाथ जिनेन्द्र ने अपने तपश्चरण से अति पवित्र केवलज्ञान, कर्मों का क्षय कर प्राप्त किया व ज्ञानधर कूट से शिवपद की प्राप्ति की। उसके बाद इस कूट को नमस्कार करके व संसार-समुद्र तिरकर ज्ञानधर कूट से अनेक भव्य, मोक्ष गये हैं—उन सबकी मैं सदा स्तुति करता हूँ ।।७०-७१।।

इति दीक्षितब्रह्मनेमिदत्तविरचिते श्रीसम्मेदशैलमाहात्म्ये ज्ञानधरकूट वर्णनंनाम षोडशोऽध्यायः समाप्तः ।।१६।।

इस प्रकार सम्मेदशिखर जी माहात्म्य में ज्ञानधर कूट का वर्णन करने वाला सोलहवां अध्याय समाप्त हुआ।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

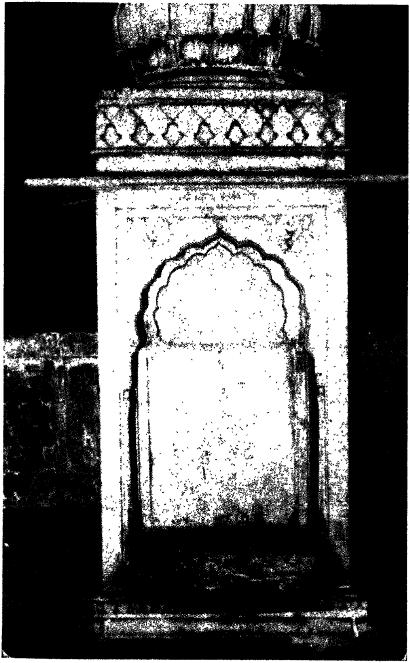
(अरहनाथ जिन चरित)

देवैर्यं अर्हन्तं देवैर्य्यस्तत्पदस्तुतिवन्दनैः ।
प्राप्ताः सिद्धपदाधीशं अर्हन्नाथं नमाम्यहम् ॥१॥
तत्कथापूर्वकं तस्य कूटस्य गिरिभूपतेः ।
माहात्म्यं श्रवणीयं यच्च तद्वक्ष्येऽहं समासतः ॥२॥

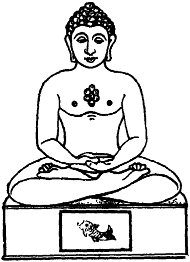
देवों के द्वारा पूजित तथा सिद्धपद के स्वामी उन अरहन्तों को, या अरह तीर्थंकर को मैं नमस्कार करता हूँ । इन अरहनाथ जिनेश्वर की कथा को संक्षेप से कहकर मैं पर्वतराज सम्मेदगिरि के उस कूट का, जहाँ से अरहनाथ ने मुक्ति-प्राप्त की, संक्षेप से वर्णन करूँगा, जो कि श्रवण करने योग्य है ॥१-२॥

जम्बूमति महाद्वीपे पूते पूर्वविदेहके ।
कच्छनामा महादेशो सीतायाः सरिदुत्तरे ॥३॥
अस्त्यत्र हि सदा भव्याः षट्कर्मनिरतास्तथा ।
मोक्षं यान्ति च यास्यन्ति नित्यं तत्र न संशयः ॥४॥
तत्र क्षेमपुरं दिव्यं धनधान्यसमृद्धिभिः ।
पूर्णं पुण्यजनाकीर्णं शोभते स्वरुचासदा
(स्वर्गवत्सदा) ॥५॥

इस जम्बूद्वीप में महापुण्यों का स्थान पूर्व-विदेह में सीता नदी के उत्तर दिशा में तिलक के समान कच्छ नामक एक देश है । उस देश में दिव्य व धन-धान्यों से समृद्ध क्षेमपुर नामक एक नगर है । वह पुण्यवान् लोगों से युक्त था व षट्कर्म-रत भव्यों से शोभित होता था ॥३-५॥



नाटक कूट



अरहनाथ जिनराज का, नाटक कूट है जेह ।
मन वच तन कर पूजहूं, शिखर सम्मेद यजेह ।।

ओ३म् ह्रीं श्री अरहनाथ जिनेन्द्रादि मुनि करोड़ ९९ लाख ९९ लाख ९९ हजार ९९९ मुनि (यानि १ कम अरब मुनि) इस कूट से सिद्ध भए तिनके चरणारविन्द को मेरा मन वचन काय से बारम्बार नमस्कार हो जलादि अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।।१८।।

इस टोंक की भाव सहित वन्दना करने से ९६ करोड़ उपवास का फल होता है ।

तस्य राजा धनपतिः बभूव सुकृतालयः ।
धनसेना तस्य राज्ञी रूपराशिरिवोज्ज्वला ।।६।।

स धर्मेणाकरोद्राज्यं नीतिमान् न्यायवित्तमः ।
सुखमत्यः प्रजास्तस्याऽवसं देशस्य पुण्यतः ।।७।।

प्रातरुत्थाय ताः सर्वाः सुखाधिक्यं गतास्ततः ।
वर्धतां वर्धतां भूप ! इत्याशीर्वचनं जगुः ।।८।।

तेन राज्यं धनपतेः महीभर्तुरवर्धत ।
यथा निशापतेर्बिम्बं प्रजानेत्राभिनन्दितम् ।।९।।

उस नगर में धनपति नाम का एक पुण्य के घर समान राजा था। रूप राशि के समान उज्ज्वल धनसेना उसकी रानी थी। राजा नीतिमान् व न्याय जानने वाला था। उसने धर्मपूर्वक राज्य का पालन किया; इसलिए उसकी प्रजा सुखी हुई। पुण्य-कार्यों में लीन राजा की मंगलकामना सुखी प्रजा प्रतिदिन प्रातःकाल, 'राजा के ऐश्वर्य में वृद्धि हो' ऐसा कहकर किया करती थी। प्रजा के आशीर्वाद से धनपति का राज्य, शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भाँति निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हो रहा था ।।५-९।।

एकदा नन्दविपिने तीर्थकृत्तपसान्निधिः ।
नाम्नार्हन्नन्दनः प्राप ज्ञानवान् भव्यसेवितः ।।१०।।

श्रुत्वा तमागतं राजा सहसोत्थाय चासनात् ।
ससम्भ्रमं पुनस्तत्र प्रीत्युत्पुलकितः किल ।।११।।

अभिवन्द्य मुनिं प्रेम्णा धर्मान् पप्रच्छ सार्थकान् ।
श्रुत्वा तान् तन्मुखाद्राजा विरक्तस्संसृतेरभूत् ।।१२।।

राज्यं त्यक्त्वा सुधर्मात्मा संयुतो बहुभूमिपैः ।
दीक्षां जग्राह मोहाख्यग्रहसम्मोचनोचिताम् ।।१३।।

एक बार आनन्द नामक वन में तपश्चरण के महान संचय से युक्त, ज्ञानी व भव्य सेवित अर्हन्नन्दन नामक तीर्थंकर आये हैं—ऐसा सुनकर वह (धनपाल) तत्काल आसन से उठा। इस समाचार को सुनकर उसके शरीर में रोमाञ्च हो आया। वह उनके पास गया व वंदना करके विनयपूर्वक धर्म का अन्वर्थक स्वरूप पूछने लगा। प्रभु के मुख से उपदेश सुनकर धनपति को संसार से विरक्ति हो गई। उसने राज्य का त्याग कर दिया व मोहरूपी पिशाच को भगाने में समर्थ जैन दीक्षा ले ली। उनके साथ अन्य अनेक राजाओं ने भी दीक्षा ली ।।१०-१३।।

एकादशाङ्गविद् भूत्वा पूर्वानपि चतुर्दश ।
सन्धार्य ज्ञानवान् तद्वत् शीलवान् सुविचारवान् ।।१४।।

षडुत्तर 'दशोक्तानि' कारणानि विभाव्य सः ।
बबन्ध तीर्थकृद्गोत्रं तपसोग्रेण दीपितः ।।१५।।

ततोऽन्त्ये स्वायुषः प्राज्ञः धृत्वा संन्यासमुत्तमम् ।
जहौ तपःशुचितनुं स्वास्थिचर्मायशेषताम् ।।१६।।

ततः सर्वार्थसिद्धि च संप्राप्य स्वतपोबलात् ।
अहमिन्द्रपदं लेभे दुर्लभं देवदानवैः ।।१७।।

आयुष्मन्नभवत्तस्य त्रिंत्रिंशत्सागरोपमम् ।
तत्रोक्ताहारनिश्वाससार्थः प्राप्तहि हर्षतः ।।१८।।

अनन्त सुखभुक् सिद्धध्यानसंलीनमानसः ।
षट्कमासायुरभवत् तत्रदेवगणे स्तुतः ।।१९।।

वह धनपति मुनि ग्यारह अंगों व चौदहपूर्वों का ज्ञाता हुआ। वह अतिशय विचारवान् हुआ व दर्शन-विशुद्धयादि सोलह भावनाओं का चिन्तवन कर उन्होंने तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया। अनन्तर आयु के अंत में विद्वान् मुनिवर ने उत्तम संन्यास धारण कर, अपने आत्मस्वरूप में स्थिर रहते हुए, अपने शरीर का त्याग किया। तप के प्रभाव से वह मुनि सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र देव हुआ। वहाँ उनका आयुष्य तेतीस सागर था। आहार, श्वासोच्छ्वास, विक्रिया ऋद्धि व अवधिज्ञान पूर्ववत् समझना चाहिए। वह अहमिन्द्र नित्य ही अनन्त सुखों का उपभोग करने वाला था। सिद्धों के ध्यान में तत्पर रहने वाले उस अहमिन्द्र की आयु पूर्ण होने में केवल छह माह शेष रह गये। १४-१९॥

अथावतारचरितं वक्ष्ये तस्य महात्मनः।
श्रवणात्पातकघ्नं यत् सर्वमङ्गलकारणम् ॥२०॥
जम्बूद्वीपे शुभे क्षेत्रे भारते कुरुजाङ्गलः।
देशो महाहस्तिनागपुरं तत्र महोज्ज्वलम् ॥२१॥
सोमवंशोद्भवस्तस्य राजा नाम्ना सुदर्शनः।
मित्रसेनाऽभवत्तस्य राज्ञी सुकृतसत्खनी ॥२२॥

अब, मैं उस महान् आत्मा के अवतार का चरित कहता हूँ, जिसके श्रवण करने से पातकों का नाश होता है तथा सबका मंगल होता है। इस जम्बूद्वीप के शुभ भरतक्षत्र में कुरु जांगल नामक एक देश है। उस देश के हस्तिनापुर नामक महान् उज्ज्वल नगर में सोमवंशीय सुदर्शन राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम मित्रसेना था, जो कि मोक्ष पुण्य की खान थी ॥२०-२२॥

धनदेन कृता रत्नवृष्टिः सद्मनि चेतयोः ।
षण्मासाभ्यः प्रागशेषाणां विस्मयोत्पादिनी तदा ।।२३।।
फाल्गुणस्य तृतीयायां शुक्लायामन्त्यभे शुभे ।
एकदा रत्नपर्यङ्के सुप्ता राज्ञी सुलक्षणा ।।२४।।
अहर्मुखे ददर्शैषा स्वप्नान् षोडश चोत्तमान ।
मुखे प्रविष्टं मातङ्गं दृष्ट्वा निद्रां जहौ सती ।।२५।।
भूपालनिकटं हर्षात् गता स्वप्नफलं ततः ।
श्रुत्वा पुलकिताङ्गी सा गर्भे धारयदीश्वरम् ।।२६।।
तद्दिनान्नवमासान्ते देवस्त्रीकृतसेवना ।
प्रासूत सोत्तमं पुत्रं सर्वपुत्रशिरोमणिम् ।।२७।।

इनके घर में धनपति कुबेर द्वारा प्रभु के गर्भ में आने के छह माह पूर्व से रत्नवृष्टि होने लगी, जिसे देखकर प्रजा को अति आश्चर्य हुआ। इसके बाद फाल्गुन शुक्ल तृतीया की रात्रि में, अन्तिम नक्षत्र अभिजित् के रहते हुए रानी सुलक्षणा ने सोलह स्वप्न देखे व अपने मुख में प्रवेश करते हुए एक उन्मत्त हाथी को भी देखा। इनको देखकर रानी ने निद्रा का त्याग किया व स्वप्नों का फल जानने की इच्छा से राजा के पास गई। स्वप्नों का फल सुनकर रानी को रोमांच हो गया। उसने प्रभु को गर्भ में धारण किया। देव-स्त्रियां उसकी अनेक प्रकार से सेवा करने लगीं। गर्भ के बाद नवमे माह में मार्गशीर्ष माह में (जगत् के) सर्व पुत्रों में श्रेष्ठ पुत्र को जन्म दिया ।।२३-२७।।

तदा देवेन्द्र आगत्य प्रेमविस्फारितेक्षणः ।
सकौतुकं सुरैः सार्धं समादाय प्रभुं मुदा ।।२८।।
हेमाचलं जगामाथ पाण्डुकायां जगत्पतिम् ।
समारोप्य घटैर्दीर्घैः देवानीतैः सुवेगतः ।।२९।।

क्षीरोदसलिलापूर्णै रभिषेकं जगद्गुरोः ।
चकार विधिवत्तत्र जयनिर्घोषमुच्चरन् ।।३०।।
पुनर्गन्धोदकैर्देवमभिषिच्याथ भूषणैः ।
दिव्यैः सम्भूष्य देवेशं कृतवान् तन्नुतिं हरिः ।।३१।।
भूयस्सम्प्राप्य देवेन्द्रो हस्तिनागपुरं मुदा ।
भूपाङ्गणे प्रभुं प्रेम्णा संस्थाप्याथ समर्चितम् ।।३२।।
ताण्डवाडम्बरं कृत्वा तस्याग्रेऽर्हत्सपश्यतः ।
तस्याऽरनाम कृतवान् स्मरणात्सर्वसिद्धिदम् ।।३३।।
मात्रे समर्प्य पश्चात्तं सुदर्शन मतेन सः ।
जयदेवमथोच्चार्य गतः स्वर्गं सहामरैः ।।३४।।
कुन्थुनाथाच्चतुर्भागपल्यकाले गते प्रभुः ।
अरस्तन्मध्यसञ्जीवी बभूव जगतां पतिः ।।३५।।

इसके बाद इन्द्र आया, उसने प्रेम व कौतुक से नेत्रों को फैलाकर प्रभु को देखा। अनन्तर प्रभु को हाथों में लेकर वह सर्व देवों के साथ मेरु-पर्वत पर पहुँचा। वहाँ उसने पाण्डुक-शिला पर प्रभु का स्थापन करके, क्षीर-सागर के जल से भरे विशाल कलशों से उनका अभिषेक किया व दिव्य वस्त्राभूषणों से प्रभु को अलंकृत कर, जय-जयकार करते हुए वापस हस्तिनापुर आये। प्रभु को राजाङ्गण में लाकर सिंहासन पर स्थापन किया। इन्द्र ने प्रभु के समक्ष ताण्डव नृत्य किया व सर्वजनों को देखते हुए प्रभु का नाम "अर" रखा। इसके बाद जिन-बालक को माता के लिए सोंपकर, राजा की अनुमति लेकर इन्द्र अन्य देवों के साथ वापस स्वर्ग चला गया। कुन्थुनाथ के बाद चौथाई पल्य बीत जाने पर अरनाथ का जन्म हुआ। इस समय में उनकी आयु भी सम्मिलित है ।।२८-३५।।

चतुर्युक्ताशीती मिति सहस्राब्दां पुरीश्वरः ।
त्रिंशच्चाप शरीरोऽयं बभूवातीव सुन्दरः ॥३६॥

ह्रेपकःशतकोमानां तप्तजाम्भूनदद्युतिः ।
प्रत्यहं मोदयामास पितरौ बालकेलिभिः ॥३७॥

एकविंशतिसाहस्र वर्षाणि क्रीडनाविभिः ।
बाल्ये तस्य व्यतीतानि शारदीन्दु शरद्युतेः ॥३८॥

पितृराज्यं ततो लब्धं चक्रवर्त्यभवत्प्रभुः ।
तत्रापि मोहजस्तस्य मदो नाऽभून्नृप श्रिया ॥३९॥

प्रभु की आयुष्य चौरासी हजार वर्ष की थी। उनका शरीर तीस धनुष प्रमाण ऊँचा था। प्रभु ने अपनी अतिशय सुन्दरता से सैकड़ों कामदेवों को भी लज्जित किया। उनके शरीर की कान्ति तप्त स्वर्ण की भाँति थी। उन्होंने अपनी बाल-क्रीड़ाओं से प्रतिदिन माता-पिता को आनन्दित किया। शरत्-काल के चन्द्र समान कान्ति के धारक प्रभु का इक्कीस हजार वर्षों का। बाल्यकाल क्रीड़ाओं में समाप्त हुआ। अनन्तर पिता ने उन्हें राज्य भार दे दिया। उन्हें चक्रवर्ती पद भी प्राप्त हुआ, तथापि प्रभु को मोह, गर्व आदि का स्पर्श भी नहीं हुआ था ॥३६-३९॥

एकदायं नृपाराध्य चक्रवर्ती सुसौधगः ।
पयोधरघटमभ्रे कमनीयां ददर्श हि ॥४०॥

तत्क्षणावेव खे(वि)लीनां दृष्ट्वा तां राज्यभोगतः ।
विरक्त हृदयो भूत्वा तपस्सारममन्यतः ॥४१॥

तदा सारस्वतः तत्र प्राप्ता देवं प्रतुष्टुवुः ।
धन्योसि त्वां विना कोऽत्र कुर्यादेवं विवेचनम् ॥४२॥

एक बार अनेक राजाओं द्वारा आराधित चक्रवर्ती अरनाथ राज्य-गृह की छत पर बैठे हुए थे। उसी समय आकाश में मेघों का समूह आया व तत्काल ही विलीन हो गया—यह देखकर प्रभु राज्य, भोगादि से विरक्त हुए व तप ही सार है—ऐसा विचार करने लगे। उसी समय लौकान्तिक देव आये व उन्होंने भगवान् के वैराग्य की इस प्रकार स्तुति (अनुमोदना) की—"हे प्रभु! आप धन्य हैं, आपके समान ऐसा विचार और कौन कर सकता है, अर्थात् कोई नहीं ॥४०-४२॥

इन्द्रस्तदैव सम्प्राप्तस्तदानीं तां प्रभामयीम्।
वैजयन्तीं समारुह्य शिबिकां भास्करद्युतिः ॥४३॥
सहेतुकवनं रम्यं प्राप देवगणस्तुतः।
माघे शुक्लदशम्यां स रेवत्यां सत्तपोवने ॥४४॥
सहस्रभूमिपैः सार्धं दीक्षां धृत्वा स्वमानसे।
मनःपर्ययनामानं प्रबोधं लब्धवान् प्रभुः ॥४५॥
द्वितीयदिवसे चक्रपुरं भिक्षार्थमागतः।
अपराजितभूपेन भोजितः श्रद्धया मुदा ॥४६॥
पञ्चाश्चर्येक्षणात्तेन हृष्टेन बहुवन्दितः।
कृपार्द्रयादशा वीक्ष्य तं पुनः प्राप्य तद्वनम् ॥४७॥
छद्मस्थः षोडशाब्दं स तप उग्रं समाचरन्।
चतुर्घातानि संहृत्य सुतीक्ष्णेन तपोऽसिना ॥४८॥
द्वादश्यां कार्तिके मासे शुक्लपक्षे जगत्प्रभुः।
रसालतरुमूलेच केवलज्ञानमाप्तवान् ॥४९॥

इन्द्र भी उसी समय आकर वैजयन्ती नामक कान्तियुक्त पालकी में सूर्य समान तेजस्वी प्रभु को बैठाया व देव-समूह के

द्वारा स्तुत सहेतुक वन मे आये। माघ शुक्ल दशमी के दिन रेवती नक्षत्र के रहते हुए प्रभु ने एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा धारण की। इसके बाद उन्हे चतुर्थज्ञान की प्राप्ति हो गई। दूसरे दिन प्रभु आहार के लिए चक्रपुर नामक नगर मे गये। वहाँ के राजा अपराजित ने श्रद्धा व आनन्द से प्रभु को आहार दिया। वहाँ पर पञ्चाश्चर्य वृष्टि हुई, जिसे देखकर अपराजित राजा ने बार-बार प्रभु की स्तुति की। प्रभु ने राजा को कृपा की दृष्टि से देखा व अनन्तर पुन वन मे चले गये। प्रभु ने सोलह वर्ष पर्यन्त छद्मस्थ अवस्था मे रहते हुए उग्र तपश्चरण किया। अतिशय तीक्ष्ण तप रूपी खडग से चार घातिकर्मो को नष्ट कर कार्तिक शुक्ल द्वादशी के दिन आम्रवृक्ष के नीचे प्रभु को केवलज्ञान प्राप्त हुआ ॥४३-४६॥

तदा समवसारेऽथ शक्रादिसुरनिर्मिते ।
यथोक्तकुन्थुसेनादिज्वलद्द्वादशकोष्ठके ॥५०॥

बहुशोभासमायुक्ते स्थितोऽयं जगदीश्वरः ।
दिव्य घोषेण सम्पृष्टो भव्यैः सुकृतमुज्जगौ ॥५१॥

पुण्यक्षेत्रेषु विहरन् मासावधि तनुस्थितिः ।
संहृत्य दिव्यनिर्घोषं गतः सम्मेदपर्वतम् ॥५२॥

तत्र नाटकनाम्नीव कूटे स्थितमुदारधीः ।
शुक्लध्यानसमारूढः वरं योगं प्रसाधयन् ॥५३॥

उसी समय प्रभु, देवनिर्मित तथा द्वादश सभाओं में विराजे कुन्थुसेन आदिक से शोभित समवशरण में स्थित होकर दिव्य-ध्वनि से धर्मोपदेश देने लगे। अनेक पुण्यक्षेत्रो में विहार कर, एक माह आयु अवशिष्ट रहने पर प्रभु सम्मेदशिखर पर्वत के

नाटक नामक कूट पर आकर स्थित हुए। उन्होंने वहाँ शुक्लध्यानारूढ़ होकर उत्तम योग धारण किया ॥५०-५३॥

चैत्रामासां सहस्रैस्स मुनिभिर्मुदिताशयः ।
गतस्तन्नाटकात्कूटात् निर्वाणं विश्वदुर्लभम् ॥५४॥

एकोनशतकोटयश्च लक्षास्तावन्त एव हि ।
तावन्त्येव सहस्राणि इत्युक्ता मुनिनायकाः ॥५५॥

चैत्र कृष्ण अमावस्या के दिन एक हजार मुनियों के साथ अनन्तसुखी भगवान् अरनाथ ने नाटक कूट से विश्वदुर्लभ मोक्ष को प्राप्त किया। उस समय निन्यान्वे कोटि, निन्यान्वे लाख, निन्यान्वे हजार मुनि नाटक कूट से अविनाशी मोक्ष को प्राप्त हुए ॥५४-५५॥

अन्येऽपि बहवः सिद्धिं प्राप्तास्तेऽस्मादनश्वरीम् ।
सुप्रभेनाऽथ भूपेन सङ्घपूजनपूर्वकम् ॥५६॥

यात्रां सम्मेदशैलस्य कृता तस्य कथां शृणु ।
जम्बूद्वीपे विदेहेऽस्ति पश्चिमे सकलाभिधः ॥५७॥

देशो महान् भद्रपुरं तत्र सम्यक् प्रकाशते ।
तस्य राजा नन्दसेनो महाशूरतमोऽभवत् ॥५८॥

विजयाख्या तस्य राज्ञी चतुर्धादानतत्परा ।
तया सह सुधर्मात्मा भुञ्जन् भोगान्महीपतिः ॥५९॥

विचार्य बहुदानानि ददवान् प्रतिवासरम् ।
दूरीकृत्य स दीनानां दुःखं वाञ्छितदानतः ॥६०॥

सर्वसद्गुणसम्पन्नो रराज क्षितिमण्डले ।
एकदाऽसौ सभामध्ये सिंहासनगतो नृपः ॥६१॥

सुप्रभ नामक राजा ने संघपूजन-पूर्वक सम्मेदशिखर जी की यात्रा की, उसकी कथा, हे श्रेणिक ! सुनो। इस जम्बूद्वीप के पश्चिम विदेह क्षेत्र में सकल नामक देश है। उसमें भद्रपुर नामक एक विशाल नगर अत्युत्तम रीति से शोभित था। वहाँ का राजा नन्दसेन अत्यन्त शूरवीर था। उसकी रानी विजया भो सद्पात्रों को चार प्रकार का दान देने में प्रवीण थी। धर्मात्मा नन्दसेन राजा उसके साथ भोग-भोगता हुआ आनन्द से रहता था। राजा विचारपूर्वक प्रत्येक दिन दीन-दुखियों के दुखों को इच्छित दान देकर दूर करता हुआ, भू-मण्डल पर सर्वगुणों से युक्त होकर शोभायमान हो रहा था ॥५६-६१॥

सज्जीकृत्य स्वमात्मानं बभौ भानुरिवापरः।
वनपालस्तदाभ्येत्य प्रसूननिचयं वरम् ॥६२॥

अथ नृपस्य पुरतः सुरभीकृत दिङ्मुखम्।
एकं कुसुममादाय कौतुकेन महीपतिः ॥६३॥

भ्रामयामास वेगेन करस्थं हर्षिताननः।
तस्मात् प्रपात भ्रमरो मृत एव सभाभुवि ॥६४॥

तेनैव हेतुना राजा तदैव विरतोऽभवत्।
राज्यं सुन्दरपुत्राय दत्वागादटवीं प्रभुः ॥६५॥

मुनिर्भूत्वा तपश्चक्रे घोरसंयमवान् किल।
तत्प्रभावेन सन्त्यज्य शरीरं तपसोज्ज्वलम् ॥६६॥

स्वर्गे षोडशमे प्राप्य देवोऽभून्निजपुण्यतः।
ततश्च्युतो महाद्वीपे जम्बूमति स भारते ॥६७॥

क्षेत्रे सुरम्यदेशे च पौदनाख्यपुरे शुभे।
भूपस्य श्रीमती भर्तुः श्रीसेनस्य गुणाम्बुधेः ॥६८॥

पुत्रो बभूव सद्बुद्धिः सुप्रभाख्यो महाप्रभुः ।
पाठी सकलविद्यानां प्रसिद्धो भूमिमण्डले ।।६६।।
समये भूपतां प्राप्य रराज मघवेव सः ।
एकदा चारणेनाथ मुनिना सह भूभृतः ।।७०।।
संगमोऽस्याभवच्चैनमपृच्छत्तरसाधिपः ।
त्रिलोक्यां भो मुने तत्किं यन्न जानासि तत्त्वतः ।।७१।।
तस्मान्निर्वाणमार्गं मे दर्शयाद्य दयानिधे ।
मोक्षोपायाप्रधानं स यात्रां साम्मेदिकीं तदा ।।७२।।
कथयामास भूपालं प्रति सर्वसमृद्धिदां ।
मुनिवाक्यात्समर्च्याथ सङ्घं यात्रोन्मुखो नृपः ।।७३।।

आकाश में जिस प्रकार सूर्य शोभित होता है, वह राजा भी उसी प्रकार सभा के मध्य सिंहासन पर शोभित था। तभी एक वनपाल ने आकर सुगन्धित पुष्प राजा के समक्ष प्रस्तुत किये। उन पुष्पों के सुगन्ध से सभी दिशायें सुगन्धित हो गईं। राजा ने उन पुष्पों में से एक पुष्प ले लिया और कौतुक से उसे वेगपूर्वक फिराने लगा। फूल में से एक भ्रमर, जो मर गया था, नीचे गिर पड़ा। उसे देखकर राजा को तत्काल वैराग्य हो गया। उसने अपना राज्य सुन्दर पुत्र को दिया व मुनि होकर वन की ओर निकल पड़ा। उसने वन में उग्र तप किया व आयु के अन्त में समाधि-पूर्वक शरीर का त्याग किया। पुण्योदय से वह सोलहवें स्वर्ग में देव हुआ। वहाँ की आयु के समाप्त हो जाने पर वह वहाँ से च्युत होकर इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में स्थित सुरम्य देश के पोदनपुर नामक नगर के राजा श्रीसेन की रानी श्रीमती के गर्भ से पुत्र रूप उत्पन्न हुआ। उसका नाम सुप्रभ था। वह सुबुद्धि का धारक तथा महा बलशाली था।

योग्य समय आने पर वह राजा बना व इन्द्र के समान शोभायमान होने लगा। एक बार राजा की भेंट चारण मुनियों के साथ हुई। राजा ने उनसे प्रश्न किया—हे प्रभो! तीन लोक में ऐसी कौन-सी वस्तु है, जिसे आप नहीं जानते हैं? अतः हे दयानिधे! हमको आज निर्वाण मार्ग दिखलाओ! मुनिराज ने कहा—सम्मेदगिरि की यात्रा मोक्ष का मुख्य उपाय है। राजा समृद्धिशाली था। उसने मुनिवचनानुसार सर्व संघ की पूजा की व यात्रोन्मुख हुआ ॥६२-७३॥

एककोट्येकरहितैः शतलक्ष प्रमाणितैः।
भव्यैः सह गतः शैलं नाटकं कूटमुत्तमं ॥७४॥

अभिवन्द्याथ तैर्युक्तैस्तत्रासौ दीक्षितोऽभवत्।
वन्दे तं नाटकं कूटं तरेत्स भवसागरम् ॥७५॥

षण्णवत्युक्तकोट्युक्त प्रोषधव्रतपुण्यतः।
एककूटनमस्कारफलमीदृग्भवेद् भुवि ॥७६॥

जिन एव फलं विन्द्यात् सर्वकूटाभिवन्दिनः।
तद्विषयं कथं वक्तुं शक्यं मे चाल्पमेधसः ॥७७॥

इस महायात्रा में एक कम एक कोटि अर्थात् एक कम शत लक्ष प्रमाण भव्य थे। राजा ने इन सब के नाटक कूट पर आकर उस कूट की वंदना की व वहीं पर उसने मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली। जो इस कूट की वंदना करता है वह भवसमुद्र पार हो जाता है। इस कूट की वंदना करने से छिहान्वे कोटि प्रोषधोपवास का पुण्य मिलता है; तब सर्व कूटों की वंदना का फल तो जिनेश्वर ही जान सकते हैं दूसरा कोई भी जानने में समर्थ नहीं है ॥७४-७७॥

अरनाथो केवलं प्राप्य यस्मात् सिद्धं
स्थानं प्राप तेजः समुद्रः ।
भव्यैर्जीवैर्वन्दनीयं समन्तात् वन्दे भक्त्या
कूटकं नाटकाख्यम् ।।७८।।

तेज के समुद्र अरनाथ प्रभु ने जहाँ से मोक्ष को प्राप्त किया है, वह नाटक कूट भव्यों द्वारा भक्तिपूर्वक वंदना करने योग्य है। मैं इस कूट को नमस्कार करता हूँ।

इति दीक्षितब्रह्मनेमिदत्तविरचिते सम्मेदशैलमाहात्म्ये नाटकूट वर्णननाम सप्तदशोध्यायः समाप्तः ।।१७।।

इस प्रकार सम्मेदशिखर माहात्म्य ग्रन्थ में नाटक कूट का वर्णन करने वाला सत्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

नौका जल में रहते हुए पार कर सकती है, परन्तु नौका में जल आते ही उसकी पार करने की क्षमता नष्ट हो जाती है; इसलिए सावधान रहना चाहिए कि कहीं नौका में जल न आने पाये। इसी प्रकार साधक संसार में भले ही रहे, किन्तु संसार का माया-मोह साधक के मन में नहीं रहना चाहिए।

अथ अष्टादशोऽध्यायः

(मल्लिनाथ जिन चरित्र)

श्रीमल्लिनाथ पादाब्जं भवतापनिवारणम् ।
सम्यग्ज्ञानप्रकाशाय वन्दे मुनिजनाश्रितम् ।।१।।

सम्बलाख्यो तस्य कूटो वन्दनाद्धर्मवर्धकः ।
यस्मात्स जगदीशानः संसिद्धिं परमां गतः ।।२।।

सम्यग्ज्ञान का प्रकाश मुझे प्राप्त हो, इस कामना से मैं श्री मल्लिनाथ प्रभु के भवताप-निवारक व मुनिजनों के आश्रय-भूत चरण-कमलों की वंदना करता हूँ; साथ ही सद्धर्मवर्द्धक सबल नाम के उस कूट की भी वंदना करता हूँ, जहाँ से प्रभु ने परमगति को प्राप्त किया है ।।१-२।।

तत्कथापूर्वकं तस्य कूटस्य सरलैः पदैः ।
वक्ष्येऽहं किल माहात्म्यं श्रोतव्यं साधुभिः समम् ।।३।।

जम्बूनाम्नि द्वीपराजे विदेहे पूर्वके शुभे ।
विराजते स्वभावाच्च विषयः कच्छकावती ।।४।।

तत्रास्ति वीतशोकपुरं दिव्यं भाति मुक्तिपुरोपमम् ।
तत्र वैश्रवणो राजा अभूद्वैश्रवणोपमः ।।५।।

अनेकगुणसम्पन्नः शीलसिंधुः प्रतापवान् ।
प्रभुनामजपासक्तो राज्ये शक्र इव स्तुतम् ।।६।।

वनक्रीडानिमित्तं स एकदा वनमध्यगात् ।
ददर्शैकवटतरुं महान्तं तत्र भूपतिः ।।७।।

महाघनहिमच्छायायक्षवृन्दनिवेशितः ।
वनमध्ये स्म भात्येषु महासाधुरिवोन्नतः ।।८।।

श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्र की कथा कहकर मैं सरल पदों में संबलकूट का माहात्म्य कहूँगा। हे श्रावक और साधुओ! इस माहात्म्य को सुनो। द्वीपराज जम्बूद्वीप के शुभ पूर्व-विदेह में कच्छकावती नामक एक स्वाभाविक, अनादिनिधन देश है उसमें अशोकपुर नामक एक नगर है। वहाँ वैश्रवण नामक कुबेर के समान वैभवशाली राजा था। वह अनेक गुणों से सम्पन्न, शील का सागर व पराक्रमी था। नित्य ही जिनेन्द्र के नाम का जप करने वाला वह राजा अपने राज्य में इन्द्र के समान शोभा पा रहा था। एक बार वह राजा वन-क्रीड़ा के लिए वन में गया। वहाँ पर उसने गहन व ठण्डी छाया वाले एक विशाल वट वृक्ष को देखा, जिसकी परछाईं दूर तक पसरी हुई थी। उस वृक्ष पर यक्षों का निवास था। वह वृक्ष उस वन में किसी उन्नतात्मा महासाधु के समान दिखाई देता था ।।३-८।।

तं दृष्ट्वा वटवृक्षं स प्रपश्य बहुधाग्रतः ।
चचाल सबलो यावत् प्रसन्न वदनाम्बुजः ।।९।।
तावत्तस्योपर्यकस्मात् वज्रपातो बभूवः हि ।
भस्मतां तेन सम्प्राप्तो वटोयं पक्षिसंयुतः ।।१०।।
मत्वा (कृत्वा) तस्यातिशोकं स राजा करुणयो हृदि ।
तदैव प्राप्तवैराग्यं राज्यं तत्याज तन्महत् ।।११।।
स्वपुत्राय तदा राज्यं दत्वा वनमुपागतः ।
नमिस्वामी समीपे स बहुभूपसमन्वितः ।।१२।।
समुत्सह्य स जग्राह दीक्षां कल्मषनाशिनीम् ।
सिद्धालयस्य सोपानां तां प्राप्यातीव हर्षितः ।।१३।।
क्रमादेका दशाङ्गानि पूर्वाण्यपिचतुर्दश ।
धृत्वा सम्भावयामास कारणानि च षोडश ।।१४।।

तीर्थकृन्नामसम्बध्वाऽयुषान्ते सन्यसत्प्रभुः ।
तनुं त्यक्त्वा गतः सर्वार्थसिद्धि स्वतपोबलात् ।।१५।।

राजा वैश्रवण ने उसे देखकर उसकी बहुत प्रशंसा की। वहाँ से चलकर वह थोड़ी दूर ही पहुँचा था कि उस वृक्ष पर अकस्मात् वज्रपात हुआ और उस पर रहने वाले पक्षियों आदि सहित वह वृक्ष भस्म हो गया। राजा के मन में उसके विषय में करुणा से अतिशय शोक उत्पन्न हुआ। उसी समय राजा को वैराग्य हो गया और उसने अपने पुत्र को राज्य देकर, वन में श्री नमिस्वामी के पास जाकर अनेक राजाओं के साथ पाप-नाशक दीक्षा ग्रहण करली। यह दीक्षा मोक्ष की सीढ़ी के समान है। दीक्षा के प्राप्त होने पर वैश्रवण को अत्यन्त प्रसन्नता हुयी। अनुक्रम से उसने द्वादशाङ्ग का ज्ञान प्राप्त किया तथा सोलह कारण भावनाओं का चिन्तवन करते हुए तीर्थंकर कर्म-प्रकृति का बंध किया। आयुष्य के अन्त में संन्यास धारण कर उन्होंने शरीर का त्याग किया व तपोबल से सर्वार्थसिद्धि में जन्मधारण किया ।।९-१५।।

एकहस्तोन्नतिस्तत्र शुक्ललेश्याधरो विभुः ।
अहमिन्द्रत्वमापन्नो रराजे वरवीर्यतः ।।१६।।

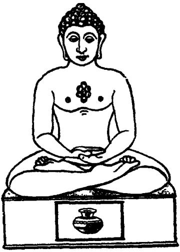
त्रयस्त्रिंशत्समुद्रोक्तामायुः सम्प्राप्य तत्र सः ।
तत्रोक्ताशननिश्वासबलवीर्यसमन्वितः ।।१७।।

प्रकुर्वन् सप्ततत्त्वानां चर्चां तत्र स्थितेषु वै ।
अनादिभूतसिद्धानां पदान्युच्चैर्व्यभावयन् ।।१८।।

एवं व्यतीत्यायुष्यं षण्मासावधि जीवनः ।
भोगादप्यतुलान्नूनं विरक्तस्तत्रसंस्थितः ।।१९।।



संवल कूट



मल्लिनाथ जिनराज का, संवल कूट है जेह ।
मन वच तन कर पूजहूं, शिखर सम्मेद यजेह ।।

ओ३म् ह्रीं श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्रादि मुनि ९६ करोड़ मुनि इस कूट से सिद्ध भए तिनके चरणारविन्द को मेरा मन वचन काय से बारम्बार नमस्कार हो जलादि अर्ध निर्वपामीति स्वाहा ।।१६।।

इस टोंक की भाव सहित वन्दना करने से एक करोड़ प्रोषध उपवास का फल होता है ।

अवतीर्य ततो भूमौ यथायं तप आचरन् ।
ततो मुक्ति तथा तस्य वर्ण्यते चरितं मया ।।२०।।

वहाँ उसकी आयु तेतीस सागर थी तथा उसके शरीर की ऊँचाई एक हाथ की थी। वह शुक्ल लेश्या का धारक था। उसके भोजन, निःश्वास बलवीर्य आदि कथन शास्त्रानुसार समझना चाहिए। वहाँ रहने वाले दूसरे अहमिन्द्रों के साथ तत्त्वचर्चा करते हुए, तथा अनादिभूत सिद्धों के पद का नित्य ही विचार करते हुए उस अहमिन्द्र की आयु छह मास बाकी रह गई, तब भी वह भोगों से विरक्त था। अब मैं उसके इस पृथ्वी पर अवतार लेने तथा तपश्चरण कर मोक्ष प्राप्त करने पर्यन्त तक की कथा कहता हूँ ।।१६-२०।।

जम्बूद्वीपे भारतेऽस्मिन् क्षेत्रेऽस्ति मिथिलापुरी ।
इक्ष्वाकुवंशे तत्रास्ति कुंभसेनो महानृपः ।।२१।।

महाविवेकसम्पन्नो महाभाग्यो महामतिः ।
महासुकृतराशिश्च महाभव्यो महोज्ज्वलः ।।२२।।

प्रभावती महाराज्ञी तस्यभूमिपतेरभूत् ।
कामस्त्री कौमुदी रूपे प्रभायामजयच्चसा ।।२३।।

तयोगृहे प्रभोर्ज्ञात्वावतारं धनदावयः ।
ववर्षुरतिमोदेन रत्नानि विविधानि च ।।२४।।

अथ चैत्रे शुभे मासे शुक्लायां प्रतिपत्तिथौ ।
सुप्ता प्रभावती प्रातः स्वप्नानैक्षत षोडशान् ।।२५।।

मत्तस्तम्भेरमं वक्त्रे प्रविशन्तं निरीक्ष्य सा ।
प्रबुद्धा भूपनिकटं गता स्वप्नफलानि च ।।२६।।

तन्मुखादवधार्यार्थं मुमुदे पङ्कजेक्षणा ।
तद्गर्भगोऽहमिन्द्रोऽभूदिन्द्रादिसुरवन्दितः ॥२७॥

मार्गेऽथ शुक्लैकादश्यामश्विन्यां योग उत्तमे ।
प्रादुरासीत् प्रभावत्यां प्राच्यां रविरिवेश्वरः ॥२८॥

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में मिथिलापुर नामक नगर है। वहाँ इक्ष्वाकु वंश में कुम्भसेन नामक महाराजा राज्य करते थे। वह महाविवेकी, महाभाग्यवान् व महाबुद्धिमान्, महान पुण्यों का पुञ्ज, महाभव्य व महादीप्तिमान था। उस राजा की रानी का नाम प्रभावती था। वह कामदेव की पत्नी रति व चन्द्र की कलाकान्ति को अपने रूप से पराजित करने वाली थी। इन राजा-रानी के घर पर प्रभु का अवतार होगा—ऐसा जानकर कुबेरादिक ने हर्ष से नाना प्रकार के रत्नों की वृष्टि की। इसके बाद शुभ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा की रात्रि के अंतिम प्रहर में सोती हुई रानी ने सोलह स्वप्न देखे और एक उन्मत्त हाथी को अपने मुख में प्रवेश करते हुए देखा। फिर वह निद्रा से जाग्रत हुई और राजा के पास जाकर उनके मुख से स्वप्नों का फल जानकर हर्षित हुई। इन्द्रादि देवों से पूज्य उस अहमिन्द्र का जीव रानी के गर्भ में आया। मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी के दिन अश्विनी नक्षत्र के उत्तम योग पर प्रभावती के पूर्व दिशा में सूर्य के समान पुत्र उत्पन्न हुआ ॥२१-२८॥

तदैव देवैः सुत्रामा तत्रागत्य जगत्पतिम् ।
समादाय गतो मेरुं प्रीति विस्फारितेक्षणः ॥२९॥

तत्र संस्थाप्य तं देवं पाण्डुकायां महोदयम् ।
क्षीराब्धिवारिसम्पूर्णैः जाम्बूनदकृतैर्घटैः ॥३०॥

समस्नपयदेनं स ततो गन्धोदकैर्वरैः ।
अभिषिच्य जगत्कान्तं तुष्टाव परया मुदा ।।३१।।

उसी समय इन्द्र राजमहल में आया। उसने त्रैलोक्यनाथ को लेकर मेरु-पर्वत की ओर गमन किया। प्रभु को देखकर उसकी आँखें बहुत विस्तृत हुईं। उसने एकाग्र होकर प्रभु का रूप निहारा। मेरु-पर्वत की पाण्डुक-शिला पर महा-वैभवशाली प्रभु का स्थापन कर उसने क्षीर-समुद्र के जल से भरे हुए स्वर्ण-कलशों से उनका अभिषेक किया। फिर गन्धोदक से अभिषेक कर अत्यन्त आनन्द से प्रभु की स्तुति की ।।२९-३१।।

अथ संभूष्य देवेशं दिव्यैराभरणैर्हरिः ।
आगत्य मिथिलापुर्यां क्षितीशभवने प्रभुम् ।।३२।।

सिंहासने समारोप्य समर्च्य विधिवद्धितम् ।
अकरोत्ताण्डवीं लीलां प्रभोरग्रेऽद्भुतां तदा ।।३३।।

मल्लिर्नाम ततः कृत्वा मात्रायैनं समर्प्य च ।
स्वयं जगाम देवेन्द्रः स्वर्गं सुरगणैः सह ।।३४।।

सहस्रकोटि वर्षेषु गतेष्वरमहेश्वरात् ।
तदन्तरायुरभवत् मल्लिनाथो महाप्रभुः ।।३५।।

पञ्चपञ्चाशत्सहस्र प्रमितायुः स ईश्वरः ।
पञ्चविंशतिकोदण्डकायोऽभूज्जगतां पतिः ।।३६।।

प्रमोद्य पितरौ बाल्ये बालकेलिभिरुत्तमैः ।
यौवनावेशसमये स्मरकोटिं व्रजत्यतः ।।३७।।

रूपलावण्यजलधिः ज्ञानत्रयसमुज्ज्वलः ।
पैतृकं राज्यमापेदे प्रजाभ्यः सुखमर्पयत् ।।३८।।

तत्पश्चात् दिव्य अलंकारों से प्रभु को भूषित कर इन्द्र ने प्रभु को राजमहलों में लाकर सिंहासन पर स्थापन किया तथा उनके समक्ष ताण्डव-नृत्य किया। इसके बाद उसने प्रभु का नाम मल्लिनाथ रखा। अन्त में प्रभु को माता की गोद में रखकर इन्द्र समस्त देवों के साथ स्वर्ग चला गया। अरनाथ जिनेश्वर के मोक्ष जाने के बाद हजार कोटि वर्ष व्यतीत हो जाने पर मल्लिनाथ का जन्म हुआ। मल्लिनाथ की आयु पंचान्वे हजार वर्ष थी। उनका शरीर पच्चीस धनुष ऊँचा था। अपनी बाल-क्रीड़ाओं से माता-पिता को आनन्दित करते हुए प्रभु ने बाल्यकाल समाप्त कर तारुण्यता में प्रवेश किया। उस समय प्रभु का सौन्दर्य कोटि कामदेवों को जीतने वाला था। योग्य समय आने पर पिता ने भगवन्त को राज्य सौंप दिया। प्रभु ने राज्य करते हुए प्रजा का सुख बढ़ाया।।३२-३८।।

अविवाहित एवासौ कदाचित्सौधगः प्रभुः।
मोक्षबीजं तपश्चित्ते चिन्तयत्कर्मदाहकम् ।।३९।।
ब्रह्मर्षयस्तदा प्राप्ताः भक्त्या ते तं प्रतुष्टुवुः।
देवा अपि सुरेन्द्राद्याः प्रणेमुस्तं समागताः ।।४०।।
जयन्ताय ततो राज्यं दत्वाऽसौ जगतां पतिः।
कुमारकाल एवातिहर्षेण श्वेतकानने ।।४१।।
वैजयन्त्यभिधां रूढां शिबिकां परमाद्भुताम्।
एकादश्यां मार्गशीर्षे शुक्लायां दीक्षितोऽभवत् ।।४२।।
तदानु क्षितियाः भव्याः सहस्रप्रमितास्तदा।
मुमुक्षवो महोत्साहाज्जगृहुर्जैनदीक्षिकाम् ।।४३।।
चतुर्थबोधसम्पन्नः तदैव परमं प्रभुः।
द्वितीय दिवसे शुद्ध भिक्षार्थं मिथिलां गतः ।।४४।।

धन्य धन्य स्तुतिस्तत्र समन्तान्नगरेऽभवत् ।
सादरं नन्दिषेणस्तं सम्पूज्याहारमुत्तमम् ।।४५।।

तस्मै भगवते दत्वाऽपश्यन् आश्चर्य पञ्चकम् ।
कृतकृत्यमिवात्मानं वने मुनिरिवागमत् ।।४६।।

षड्दिनावधि मौनस्थस्तप उग्रं विधाय सः ।
अशोकमूले सम्प्राप केवलज्ञानमुत्तमम् ।।४७।।

मेचकाय द्वितीयाय पौषे सम्प्राप्य केवलम् ।
यथोक्तं भूत्वा समवसारे भातिस्म योगिराट् ।।४८।।

ततो विशाखसेनाद्यैः स्तुतः सम्पृष्ट ईश्वरः ।
व्याख्यानं सप्ततत्त्वानां दिव्यघोषेण स व्यधात् ।।४६।।

अविवाहित अवस्था में ही एक बार जब प्रभु राजमहल में बैठे हुए कर्मों को जलाकर मोक्ष की उत्पत्ति के लिए बीजभूत तप का विचार कर रहे थे, तब लौकान्तिक देवों ने आकर उनके इस विचार की स्तुति की। इन्द्रादिक देव भी आये, उन्होंने प्रभु का वंदन किया। त्रैलोक्य पूज्य मल्लिनाथ प्रभु ने कुमार-काल में ही विरक्ति धारण कर, जयन्त को राज्य देकर, स्वयं श्वेतवन में जाने के लिए वैजयन्ती नाम की देवोपनीत पालकी में आरूढ हुए। मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी के दिन प्रभु ने दीक्षा ग्रहण की। प्रभु के साथ एक हजार भव्य राजाओं ने भी मोक्ष की इच्छा से महान् उत्साहपूर्वक जिन-दीक्षा धारण की। प्रभु को दीक्षा लेते हो मनःपर्ययज्ञान प्रगट हो गया। दूसरे दिन प्रभु मिथिला नगरी में आहार के लिए आये। प्रभु को देखकर नगर के लोग धन्य प्रभु—धन्य प्रभु—ऐसे उद्गार-रूप वचन कहने लगे। राजा नन्दिषेण ने आदरपूर्वक प्रभु की पूजा की व उन्हें उत्तम आहार दिया। इस कारण उनके यहाँ पञ्चाश्चर्य-वृष्टि

हुई। राजा स्वयं को कृत-कृत्य मानने लगा। प्रभु ने छह दिन मौन धारण कर उग्र तप किया व अशोक वृक्ष के नीचे ध्यानावस्था में घातिकर्मों का नाश कर पौष कृष्ण द्वितीया के दिन केवलज्ञान प्राप्त किया। केवलज्ञान प्राप्त होने पर प्रभु समवशरण में शोभित होने लगे। विशाखसेन आदि मुनियों ने प्रभु की स्तुति कर उनसे प्रश्न किया; तब प्रभु ने अपनी दिव्यध्वनि से सप्ततत्त्वों का विवेचन किया।।३६-४६।।

उचघ्नन् (घ्नन्) दिव्यनिनदं क्षेत्रेषु विहरन्मुदा।
मासमात्रायुरुदगात् भूमिस्थं स्वर्णपर्वतम् ।।५०।।

किञ्चित्कालं तत्र देवः स्थित्वा चित्तं प्रसाद्य सः।
समुत्सह्य गतस्तस्मात् सम्मेदं ध्वनिर्वाजितः ।।५१।।

कूटं सम्बलनामानं तत्रासाद्य जगद्गुरुः।
द्वादश्यां फाल्गुने मासे कृष्णायां सिद्धतामगात् ।।५२।।

दिव्यध्वनि से उपदेश देते हुए प्रभु ने अनेक क्षेत्रों में विहार किया। एक माह की आयु शेष रहने पर वे सोनागिरि क्षेत्र पर आये व कुछ काल वहाँ रुककर भव्यों के मन को आनन्दित करते हुए सम्मेदाचल पर पहुँचे, जहाँ के संवलकूट पर से फाल्गुन कृष्ण द्वादशी के दिन जगत्पति मल्लिनाथ ने मुक्ति प्राप्त की ।।५०-५२।।

अथ चम्पापुरे राजा सम्बलाख्यो महानभूत्।
महासेना तस्य राज्ञी शीलसद्गुणसुन्दरी ।।५३।।

एकदा मन्दिरवने चारणो मुनिरभ्यगात्।
धृतिषेणो मृतियुतः तमाकर्ण्य स आगतः ।।५४।।

समाजसहितस्तूर्णं वन्दनायाभ्यधावत ।
जैनधर्मं ततः श्रुत्वा दीक्षां जग्राह भूपतिः ॥५५॥

चम्पापुर में संबल नामक एक महान् राजा हुआ है। उसकी महासेना नामकी रानी थी, जो शीलवती, सद्गुणवती व सुन्दरी थी। एक बार मन्दिर-वन में चारण ऋद्धिधारी धृतिषेण मुनि अनेक ऋषियों सहित आये। उनके आगमन का समाचार सुनकर राजा भी वंदना के लिए वन की ओर दौड़ा। वंदना करके उसने मुनि-मुख से धर्म का स्वरूप सुना, जिसे सुनकर विरक्ति होकर उसने दीक्षा ले ली ॥५३-५५॥

ततः सम्यक्तपस्तप्त्वा तपसा दग्धकल्मषः ।
सन्यासे त्यक्त देहोसौ स्वर्गे षोडशमे मुदा ॥५६॥
इन्द्रो बभूव धर्मात्मा द्वाविंशत्यब्धिजीवनः ।
अन्ते चावतरद्भूमौ वक्ष्येहं तत्कथां शुभाम् ॥५७॥

इसके बाद उत्तम तपश्चरण करके उसने पापों का नाश किया व संन्यास-पूर्वक देह का त्याग कर सोलहवें स्वर्ग में देवों का स्वामी इन्द्र हुआ। उस धर्मात्मा इन्द्र की आयु बाईस सागर थी। आयु समाप्ति पर स्वर्ग से च्युत होकर उसने पृथ्वी पर जन्म लिया। अब उसकी कथा सुनो ॥५६-५७॥

जम्बूद्वीपे योधदेशे श्रीपुरे प्रभवाकरे ।
अम्बदेशोभिधो राजा बभूवातीव धार्मिकः ॥५८॥
महिषी विजया तस्य तद्गर्भे स्वोच्युतस्ततः ।
समया तत्र सेनाख्यः पुत्रोऽभूद् गुणसागरः ॥५९॥
सदा पुण्यरुचिर्धीमान् प्रतापेणार्क सन्निभः ।
इष्टमन्त्रजया(पा)च्चक्री रहस्यैकाग्रमानसः ॥६०॥

एकस्मिन् समये तत्त्वसेन एष यदृच्छया ।
कोसलाख्यं गिरिवरं गतः सुरनिषेवितम् ।।६१।।

सुलोचनमुनिं तत्र दृष्ट्वा भक्त्याभिवन्द्य तम् ।
सम्मेदशैलचर्चां स तेन सार्धं चकार सः ।।६२।।

यदा शिखरमाहात्म्यं श्रुतं मुनिमुखान्महत् ।
तदैवाति रुचिस्तस्य यात्रायै चाभवद्धृदि ।।६३।।

सत्वरं गृहमागत्य नत्वा सङ्घचतुष्टयम् ।
सार्धं सः बहुभिर्भव्यैः गिरियात्रां मुदा व्यधात् ।।६४।।

यात्रां कृत्वा ह्यचिन्तोसौ विरक्तः संसृतेर्ध्रुवम् ।
एकोनशतकोट्युक्ता भव्यैःसह स भव्यराट् ।।६५।।

दीक्षां गृहीत्वा तत्रैव तपः कृत्वा सुदारुणम् ।
निहत्य घातिकर्माणि विरागो गत कल्मषः ।।६६।।

केवलज्ञानमासाद्य शुक्लध्यानधरस्तदा ।
सर्वैः सह गतो मुक्ति सर्वसंसारदुर्लभम् ।।६७।।

इस जम्बूद्वीप के योध नामक देश में आनन्ददायक श्रीपुर नगर में अम्बदेश नामक राजा राज्य करता था। वह बहुत धार्मिक-वृत्ति का था। उसकी रानी का नाम विजया था। स्वर्ग से च्युत होकर वह अच्युतेन्द्र रानी विजया के गर्भ में आया। नौ माह बाद जन्म होने पर उसका नाम तत्त्वसेन रखा गया। वह गुणों का भण्डार व पुण्य-कार्यों से प्रेम करने वाला तथा प्रताप में सूर्य समान था। एकान्त स्थान में चित्त को एकाग्र करके इष्ट मंत्र का जप करने से वह चक्रवर्ती समान दिखता था। एक बार वह तत्त्वसेन स्वच्छंदता से देवों के विहरण-स्थान कोसल नामक पर्वत पर गया। उसने वहाँ

सुलोचन मुनिराज को देखा व भक्ति से नमस्कार कर सम्मेदगिरि के बारे में चर्चा शुरू की। मुनिराज से सम्मेदगिरि का माहात्म्य सुनकर क्षेत्र के प्रति उसकी रुचि हुई। उसने उस पर्वत की यात्रा करने का विचार किया। वहाँ से शीघ्र घर आकर उसने चतुस्संघ को नमस्कार करके, बहुत-से भव्य जीवों के साथ आनन्द से यात्रा की। यात्रा करके वह संसार से विरक्त हो गया। एक कम निन्यान्वे कोटि भव्यों के साथ में उस भव्य राजा ने दीक्षा ग्रहण की और तप करने लगा। सम्मेदगिरि पर घोर तप करते हुए उसने शुक्लध्यान से घातिकर्मों का नाश किया व केवलज्ञान प्राप्त किया। कुछ समय उपरान्त अघातिया कर्मों को भी समाप्त कर दुर्लभ मुक्ति को प्राप्त किया। संबलकूट का वंदन करने वाले इस राजा को मोक्ष प्राप्त हुआ, यह फल बुद्धिगम्य है, किन्तु उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है ।।५८-६७।।

सम्बलाख्यस्य कूटस्य वन्दने फलमीदृशम् ।
बुद्धिगोचरमेवेदं वक्तुं नैव हि शक्यते ।।६८।।

निश्चयाद्योभिवन्द्वेतं कूटं सम्बलमुत्तमम् ।
षण्णवत्युक्तकोट्यु क्त व्रतजं स फलं लभेत् भजेत् ।।६९।।

वन्दनादेककूटस्य तिर्यङ्नरकयोर्गतिः ।
नैव सर्वनमस्कारफलं प्रभुरिवोच्चरेत् ।।७०।।

मल्लिनाथप्रभुर्मोक्षसिद्धि यतस्सतपोदग्धकर्मा
गतस्तीर्थकर्ता ।
भव्यवृन्दैः स्समाराधितं पूजितं सम्बलाख्यं
स्मर त्वं दास ।।७१।।

निश्चय से जो संबल कूट की वंदना करता है, उसको छिहान्वे कोटि उपवासों का फल मिलता है। एक कूट की वंदना करने वाले को नरक व पशुगति की प्राप्ति कभी नहीं होती, तो सर्वकूटों की वंदना करने वालों को जो फल प्राप्त होगा, उसका वर्णन कौन कर सकता है। जो नरोत्तम सम्मेदगिरि की यात्रा-वंदना करता है, वह दुःख-तरंगों से भरे हुए संसार-रूपी समुद्र से अनुक्रम से पार हो जाता है। उत्तम तप के द्वारा कर्मों को भस्म करने वाले श्री मल्लिनाथ प्रभु ने, भव्यों द्वारा आराधित जिस संबल नामक कूट पर से मुक्ति प्राप्त की है, उस कूट का, हे श्रेणिक, तू नित्य ही स्मरण कर ॥६८-७१॥

इति दीक्षितब्रह्मनेमिदत्तविरचिते श्रीसम्मेदशैलमाहात्म्ये सम्बलकूट वर्णनंनाम अष्टादशोऽध्यायः सम्पूर्णः ॥१८॥

इस प्रकार सम्मेदशिखर-माहात्म्य ग्रन्थ में संबलकूट का वर्णन करने वाला अठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

जो व्यक्ति धर्म में, नीति में, तप में, मानव-मर्यादाओं में सदा स्थिर रहता है, मजबूत रहता है, संकट काल में भी विचलित नहीं होता है, अनीति के मार्ग में कदम नहीं धरता है, उस व्यक्ति के चरणों में देवता भी नमन करते हैं।

अथ एकोनविंशोऽध्यायः

(मुनिसुव्रत जिनेन्द्र चरित्र)

अथातोऽहं बद्धपाणिर्वन्दे श्रीमुनिसुव्रतम् ।
प्रसिद्धतामथ प्राप्तं त्रैलोक्ये यस्य सुव्रतम् ।।१।।

मुनिसुव्रतपादाब्जं अपारभववारिधेः ।
तरणाय सदा भाति महापोत इव ध्रुवम् ।।२।।

तत्कथां तस्य कूटस्य माहात्म्यमधुना बुधाः ।
वक्ष्ये श्रृणुत सद्भक्त्या यदि कल्याणकामिता ।।३।।

अब मैं करबद्ध होकर श्री मुनिसुव्रत भगवन्त की वंदन करता हूँ, जिनका सुव्रत त्रैलोक्य में प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ है। श्री मुनिसुव्रतनाथ के चरण-कमल अपार भवसागर को पार करने के लिए पोत के समान हैं। अब मैं उन प्रभु की कथा तथा उन्होंने जिस कूट से मोक्ष प्राप्त किया है, उस कूट के माहात्म्य को कहता हूँ, विद्वज्जनो! यदि मन में कल्याण की कामना है तो भक्तिपूर्वक सुनो ।।१-३।।

द्वीपे जम्बूमति ख्याते भरतक्षेत्रमुत्तमम् ।
तत्राङ्गदेशे चम्पाख्यं पुरं स्वर्गपुरोपमम् ।।४।।

तत्राभूद्धरणीपालो हरिवर्माभिधो महान् ।
महाप्रताप सन्दीप्तः सुकृताम्भोधिरुत्तमः ।।५।।

वत्सलेना तथा तस्य महिषी शीलशालिनी ।
सद्गुणा रूपराशिश्च शरच्चन्द्रसमानना ।।६।।

औरसानिव पुत्रांश्च ररक्ष स्वप्रजाः नृपः ।
न्यायवान् गुणवान् तद्वत् शीलवान् बुद्धिसागरः ।।७।।

इस जम्बूद्वीप के उत्तम भरतक्षेत्र में अंगदेश है। उस देश में चम्पापुर नामक स्वर्गपुरी की उपमा धारण करने वाला एक नगर है। उस नगर में हरिवर्मा नामक महा-पराक्रमी राजा हुआ है। वह पुण्य के भण्डार का समुद्र था। उसकी रानी का नाम वज्रसेना था, जो सद्गुणी, अत्यन्त सुन्दर व शरत् काल के चन्द्रमा के समान मुखवाली थी। राजा हरिवर्मा अपनी प्रजा का पुत्रवत् पालन करता था। वह न्यायवान्, गुणवान्, शीलवान् व समुद्र के समान विशाल बुद्धि का धारक था ।।४-७।।

एकदाऽनन्तवीर्याख्यो मुनिर्वनमुपागतः ।
शुद्धसम्यक्त्वसम्पन्नस्तेजसा ज्वलनप्रभः ।।८।।

तमागतं समाकर्ण्य परिवारसमन्वितः ।
तद्वन्दनार्थं भूपालस्त्वरितं तमुपाययौ ।।६।।

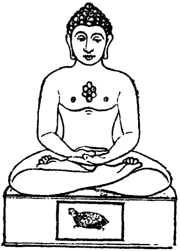
मुनिं दृष्ट्वा प्रसन्नात्मा दण्डवत्प्रणिपत्य तम् ।
विधिवत्पूजयामास गन्धाद्यैर्भक्तितो नृपः ।।१०।।

सम्पूज्य धर्मं पपृच्छ संसारामयखण्डितम् ।
तदा मुनिवरः प्राह यथावत्तान्स्वतत्त्ववित् ।।११।।

धृत्वा विरक्तिमापन्नः संसारात्स महीपतिः ।
दत्वा राज्यं स्वपुत्राय तत्क्षणाद्दीक्षितोऽभवत् ।।१२।।

एक बार शुद्ध सम्यक्त्व-सम्पन्न व तेज में अग्नि समान अनन्तवीर्य मुनि वन में आये। उनके आगमन की वार्ता सुनकर राजा सपरिवार उनकी वंदना के लिए शीघ्र ही वन में आया। उसने मुनि को देखकर नमस्कार किया। उसके मन में प्रसन्नता होने लगी। अनन्तर राजा ने भक्ति से विधिपूर्वक उनकी पूजा की। पूजा करके उसने मुनिराज से संसार-रूपी रोग का नाश

निरजर कूट



मुनिमुब्रत जिनराज का, निरजर कूट है जेह ।
मन वच तन कर पूजहूं, शिखर सम्मेद यजेह ।।

ओ३म् ह्रीं श्री मुनिसुब्रतनाथ जिनेन्द्रादि मुनि ९९ कोड़ा कोड़ी ९९ करोड़ ९९ लाख ९९९ मुनि इस टोंक से सिद्ध भए तिनके चरणार-विन्द को मेरा मन वचन काय से बारम्बार नमस्कार हो जलादि अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।।२०।।

इस टोक की भाव सहित वंदना करने से एक करोड़ प्रोषध उपवास का फल होता है ।



करने वाले धर्म का स्वरूप पूछा। तब तत्त्वज्ञानी मुनिराज ने यथार्थ धर्म का स्वरूप कहा। राजा ने उसे सुनकर संसार से विरक्तता धारण कर, अपना राज्य अपने सुपुत्र को देकर तत्काल दीक्षा ले ली ॥८-१२॥

बहवो नरनाथांश्च दीक्षां तेन समागतः।
तत्स्नेहादथ वैराग्यात् शुद्धान्त-करणा बुधाः ॥१३॥
दीक्षितोऽयं पञ्चमहाव्रतानि स समाचरन्।
धर्मध्यानपरो भूत्वा सप्ततत्त्वान्यचिन्तयत् ॥१४॥
जीवाजीवाश्चास्रवश्च संवरश्चाथ निर्जरा।
बन्धमोक्षौ तथा ध्यात्वा त्यक्त्वा द्वेधा परिग्रहौ ॥१५॥
अप्रमत्तगुणस्थानं प्राप्त एकादशाङ्गभृत्।
अपूर्वक गुणस्थानमारूढः शुचिमानसः ॥१६॥
मुक्तये चामितोत्साहात् प्राप्ता षोडश भावनाः।
घोरं तपः स कृतवानतिचारविवर्जितः ॥१७॥
तीर्थकृन्नाम सुप्राप्य स संन्यासं ततः प्रभुः।
संसाद्य विधिवद्देहमय त्यक्त्वायुषः प्रभुः ॥१८॥
तत्क्षणात्प्राणते स्वर्गे शक्रोऽभूत्स्वतपो बलात्।
विंशति प्रोक्त वार्ध्यायुः तत्रोक्ताखिलभावधृक् ॥१९॥

राजा हरिवर्मा के साथ अनेक अन्य राजाओं ने दीक्षा ली। इनमें कई लोगों ने राजा के स्नेह से, कुछ ने वैराग्य से व कुछ ने शुद्ध अन्तःकरण से दीक्षा ली। हरिवर्मा मुनि ने पंच महाव्रतों का परिपूर्ण पालन किया। धर्म-ध्यान में तत्पर रहकर उन्होंने सप्त तत्त्वों का विचार किया। इस कारण उन्हें तीर्थंकर प्रकृति का बंध हुआ। इसके बाद उन मुनिराज ने आयु के अन्त

में यथाविधि संन्यास धारण कर देह का त्याग किया और प्राणत स्वर्ग में जन्म लेकर इन्द्र पद प्राप्त किया। वहाँ उसकी आयु बीस सागरोपम प्रमाण थी तथा वह देवगति के योग शरीर आदि का धारण करने वाला था ।।१३-१६।।

पदार्थान्नव संभाव्य षट्कं च द्रव्यसंचयम् ।
चतुर्दशगुणस्थानान्यसौ विज्ञाय तत्त्वतः ।।२०।।
ध्यायन् सिद्धानशेषांश्च तद्बिम्बानद्भुतांस्तदा ।
पूजयन्नायुषः पूर्ति चकारातुलमोदभाक् ।।२१।।
षण्मासमात्रमस्त्यायुः ज्ञात्वा स्वावधितो हरिः ।
मुमोत देवतरसा ज्ञातवान् हर्षितोऽभवत् ।।२२।।

इन्द्रावस्था में सप्ततत्त्व व पुण्य-पाप सहित नव पदार्थ, जीवादि छह द्रव्य व कालातिरिक्त पाँच अस्तिकाय तथा मिथ्यात्वादि चौदह गुणस्थान आदि का स्वरूप तात्त्विक दृष्टि से जानकर वह एकाग्रता से उनका चिन्तन करता रहता था। सिद्धपरमेष्ठी व उनकी प्रतिमा का पूजन-ध्यानकर अनुपम आनन्द अनुभव करते हुए उस प्राणतेन्द्र ने आयुष्य पूर्ण किया। छह माह की आयु शेष रहने पर सौधर्मेन्द्र अवधिज्ञान से उसके आगामी भव को जानकर अतिशय हर्षित हुआ ।।२०-२२।।

प्रसिद्धे द्वीपराजेऽथ जम्बूमति च भारते ।
क्षेत्रे मगधदेशोऽस्ति तत्र राजगृहं पुरम् ।।२३।।
नव योजनमानञ्च विस्तृतं द्वादशप्रमैः ।
योजनैः स्वर्णधरणी ज्योतिभी रत्नजंज्वलत् ।।२४।।
इन्द्रादिनिर्मितं यत्र त्रैलोक्यकमलास्पदम् ।
सुमित्रोनाम तत्रासीत् राजा धर्मधुरंधरः ।।२५।।

हरिवंशसमुद्भूतः सुरराजार्चितस्य च ।
सोमाख्या तस्य महिषी शक्रवामा निषेविता ॥२६॥
तत्संमान्या क्वापि न हि त्रिलोक्यां भासिनीवरा ।
तया सहातुलसुखं स लेभे वसुधाधिपः ॥२७॥

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में स्थित मगधदेश में नौ योजन चौड़ा व बारह योजन लम्बा राजगृह नामक नगर है, जिसकी रचना देवों ने की थी। यह नगर स्वर्ण व रत्नों से अतिशय प्रकाशमान था, मानों तीन लोक की लक्ष्मी वहाँ वास कर रही थी। धर्म की धुर को अपने कन्धों पर धारण करने वाला सुमित्र नामक राजा वहाँ राज्य करता था। उसका जन्म हरिवंश में हुआ था। इन्द्र भी उसका मान रखता था। इन्द्राणी द्वारा सेवित सोमा नाम की इसकी रानी थी, जो बहुत सुन्दर थी। तीन लोक में उसके समान सुन्दर और कोई भी नारी नहीं थी। इस रानी के साथ राजा अनुपम सुख भोग रहा था ॥२३-२७॥

अर्वाक् षण्मासतस्तत्र शक्राज्ञाप्तेन सादरम् ।
धनदेन कृता वृष्टिः रत्नानां द्युतिसद्मनां ॥२८॥
ततः सौधगता देवी सुप्ता रत्नविनिर्मिते ।
पल्यङ्के यामिनी तुर्य यामार्थेऽद्भुतभाग्यतः ॥२९॥
अपश्यत्षोडशान्स्वप्नान् श्रावणे प्रतिपत्तिथौ ।
श्रवणर्क्षे कृष्णपक्षे अद्भुतानन्दसूचकान् ॥३०॥
पूर्वं मत्तगजं पश्चात् वृषभं मृगनायकम् ।
लक्ष्मीं च पुष्पमाले द्वे सूर्यं राकापतिं तथा ॥३१॥
स्वर्णकुम्भद्वयं तद्वन्मत्स्ययुग्मं सरोवरम् ।
सिन्धुं सिंहासनं चैव विमानं भुजगालयम् ॥३२॥

रत्नराशिं तथा दिव्यत्कृशानुं धूमवर्जितम् ।
इत्यादिस्वप्नकान्देवी संवीक्ष्य तदनन्तरम् ।।३३।।
मुखे प्रविष्टं सापश्यत् सिन्धुरं मत्तमद्भुतम् ।
ततः प्रातः प्रबुद्धा सा सर्वं स्वप्नफलं तदा ।।३४।।
श्रुत्वा पत्युर्मुखान्नूनं परमानन्दभागभूत् ।
ततः स्वर्गाच्च्युतस्यान्तेऽहमिन्द्रो भगवान् स्वयम् ।।३५।।

इन्द्राज्ञा से कुबेर ने राजा के महलों में रत्नवृष्टि की। इसके बाद रत्नखचित पलंग पर सोती हुई रानी ने रात्रि के चतुर्थ प्रहर में अद्भुत् भाग्य से श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को (उत्तरपुराण के अनुसार द्वितीया को) आनन्दसूचक सोलह स्वप्न देखे। वे स्वप्न क्रमशः इस प्रकार हैं—हाथी, बैल, सिंह, लक्ष्मी, दो पुष्पमालायें, सूर्य, चन्द्र, युगल स्वर्ण-कुम्भ, युगल मीन, सरोवर, समुद्र, सिंहासन, विमान, नागमंदिर, रत्नराशि व लक्ष्मी। अन्त में रानी ने अपने मुँह में प्रवेश करता हुआ एक उन्मत्त हस्ति देखा। प्रातःकाल निद्रा से जाग्रत होने पर रानी अपने पति के पास गई। पति के मुख से स्वप्नों का फल सुनकर रानी अत्यन्त आनन्दित हुई ।।२८-३५।।

आवसल्लक्ष्मणा गर्भे नयै स्याद्वादधर्मवत् ।
वैशाखकृष्णदशमी तिथौ श्रवणभे तथा ।।३६।।
प्रादुर्बभूव विश्वेशो लक्ष्मणायां सुरोत्तमः ।
देवदेवो समायुक्तः सौधर्मेन्द्रस्तदैव हि ।।३७।।
तत्रागत्य समादाय प्रभुं त्रैलोक्यभूषणम् ।
हेमाद्रिमगमत्तूर्णं पूर्णैः प्रेमभरैः किल ।।३८।।
तत्राभिषेकमकरोत्तस्य क्षीरोदवारिभिः ।
अभिषिच्य पुनर्देवं गन्धवार्भिः सुरेश्वरः ।।३९।।

दिव्यैराभरणैः पश्चादभूषयदिमं प्रभुम् ।
पुनस्ततो राजगृहं समानीय जगत्पतिम् ।।४०।।

नृपाङ्गणे समारोप्य भक्त्या सम्पूज्य ताण्डवम् ।
तदग्रे संविधायाथ मुनीनां सुव्रतत्वतः ।।४१।।

मुनिसुव्रतनामानमेनं चक्रे स वासवः ।
चतुरुत्तरपञ्चाशल्लक्षवर्षोपरिप्रभुः ।।४२।।

इसके बाद प्राणत स्वर्ग से च्युत होकर वह इन्द्र रानी सोमा के गर्भ में आया व बैशाख कृष्ण दशमी के दिन श्रवण नक्षत्र में उसने जन्म लिया। उसी समय सौधर्मेन्द्र तीर्थंकर भगवान् का जन्म हुआ है—ऐसा जानकर देव-देवियों के साथ तत्काल वहाँ आया। त्रिलोकीनाथ को अपने पास लेकर वह अति आनन्द से मेरु-पर्वत पर पहुँचा। वहाँ पाण्डुक-शिला पर प्रभु का स्थापन कर, क्षीर-सागर के जल से उनका अभिषेक किया व पुनः गन्धोदक से अभिषेक करके, प्रभु को दिव्य आभरणों से सज्जित कर उन्हें वापस राजगृह ले आया। प्रभु को राज्याङ्गण में सिंहासन पर बैठाकर, स्तुति-पूर्वक उसने उनके समक्ष ताण्डव-नृत्य किया तथा मुनियों के आचरण समान निर्दोषपने से उत्पन्न होने के कारण प्रभु का नाम मुनिसुव्रत रखा ।।३६-४२।।

मल्लिनाथोद्भूद्विश्वनाथस्तन्मध्यजीवनः ।
जन्मोत्सवं विधायाथ गते सौधर्मनायके ।।४३।।

तं दृष्ट्वा दम्पती तत्र प्राप तं सुखमुत्तमम् ।
त्रिंशत्सहस्रवर्षायुर्विंशत्युक्तधनुस्तनुः ।।४४।।

वर्णेन हरितो देवः शोभासिन्धुर्महोदयः ।
बालक्रीडारतो बाल्ये स्तुतो देवकुमारकैः ।।४५।।

साधं सप्तसहस्राायुर्बाललीलां व्यपोह्य सः ।
पैतृकं पदमासाद्य प्रजानां सौख्यमाकरोत् ॥४६॥
नित्यं धर्मकथाभिश्च नीतिभिश्च विराजितः ।
अनेक राजपुत्रैः स नीतो कालकलां मुदा ॥४७॥
मग्नं तटाके वृषभमसौ दृष्ट्वा विरक्तधीः ।
राज्यं समर्प्य पुत्राय तपसे कृतनिश्चयः ॥४८॥
सारस्वतस्तुतो देवः दृढ वैराग्य संयुतः ।
आरुह्य शिबिकां रत्नप्रभाख्यां सुरसेवितः ॥४९॥
कार्तिके श्वेत पञ्चम्यां नीलारण्ये स्वजन्मभे ।
धराधिप सहस्रंश्च दीक्षितो मुनिपुङ्गवः ॥५०॥
अन्तर्मुहूर्ते तत्रैव चतुर्थं ज्ञानमाप सः ।
अथ तालपुराधीशः प्रीत्याहारं ददौ सुधीः ॥५१॥
त्रिलोकगुरवे तस्मै सम्यग्दृष्टिशिरोमणिः ।
पश्चाद्वनमसौ प्राप्य महोग्रंतप आचरन् ॥५२॥
घातिकर्माणि सन्दह्य केवलज्ञानमाप्तवान् ।
इन्द्राज्ञया कुबेरोऽपि समवसृतिमञ्जसा ॥५३॥

मल्लिनाथ के बाद चौपन लाख वर्ष पश्चात् मुनिसुव्रत प्रभु का जन्म हुआ । मल्लि प्रभु का जीवनकाल भी उक्त अवधि में सम्मिलित मानना चाहिए । जन्मोत्सव करके सौधर्मेन्द्र वापस चला गया । बाल-प्रभु को देखकर राजा-रानी अत्यन्त आनन्दित हो रहे थे । प्रभु का आयुष्य तीस हजार वर्षों का था तथा वे बीस धनुष ऊँचे थे । उनके शरीर का वर्ण हरा था । प्रभु सुन्दरता के सागर थे । देवकुमारों से स्तुत्य तथा ऐश्वर्यशाली प्रभु बाल्यावस्था में बाल-क्रीड़ा करने में तत्पर रहते थे । साढ़े

सात हजार वर्ष प्रमाण उनका काल क्रीडा में बीता। तरुण होने पर उन्होंने पिता का राज्यभार सम्हाल लिया और प्रजा को सुखी किया। नित्य ही धर्म-कथाओं व नीति से शोभित प्रभु ने अनेक राजपुत्रों के साथ राज्य-काल समाप्त किया। एक बार बैल को तालाब में डूबते हुए देखकर वे विरक्त हो गये। उन्होंने अपने पुत्र को राज्य देकर तपश्चर्या के लिए दृढ़ निश्चय किया। उसी समय लौकान्तिक देवों ने आकर उनकी स्तुति की। दृढ़ वैराग्य से युक्त, सुर-सेवित प्रभु ने रत्नप्रभा नामक पालकी में बैठकर, कार्तिक कृष्ण पञ्चमी के दिन, श्रवण नक्षत्र के रहते हुए नील वन में पहुँचकर हजारों राजाओं के साथ दीक्षा ले ली। अन्तर्मुहूर्त में ही प्रभु को मनःपर्ययज्ञान प्रकट हो गया। इसके बाद सम्यक्त्व-शिरोमणि तालपुर के राजा ने प्रीति-पूर्वक त्रैलोक्य-गुरु प्रभु को आहार दिया। आहार लेकर प्रभु ने वापस वन में आकर अति उग्र तप किया व सर्व घातिकर्मों को क्षय करके केवलज्ञानी हुए ।।४३-५३।।

निर्माय द्वादशैः कोष्ठैः भव्यवृन्दनिषेवितः।
मुनिसुव्रतनाथोऽपि तदा सिंहासनोपरि ।।५४।।
गणेन्द्रैः परिपृष्टस्सन् दिव्यध्वनिमुपादिशत्।
नानादेशान्विहृत्यासौ धर्मवृष्टिं किरन्मुदा ।।५५।।
मासमात्रावशिष्टायुः सम्मेदाचलमभ्यगात्।
प्रतिमायोगमास्थाय सोपि निर्जरकूटके ।।५६।।
दिव्यध्वनिं चोपहृत्य सहस्रमुनिपैः समम्।
वैशाखकृष्णदशमी जन्मभेऽगात्परं पदम् ।।५७।।
तत्पश्चान्नवकोट्युक्त चतुर्लक्ष मितानि च।
त्रिंशत्सहस्रमुनयः निर्जरात् निर्जरां गताः ।।५८।।

इन्द्राज्ञा से कुबेर ने समवशरण की रचना की। प्रभु बारह सभाओं से सेवित होने लगे। समवशरण में विराजमान प्रभु ने गणधर द्वारा प्रश्न किये जाने पर दिव्यध्वनि से उपदेश दिया। प्रभु ने अनेक देशों में समवशरण सहित विहार करके धर्मवृष्टि की। एक माह आयु अवशिष्ट रहने पर प्रभु सम्मेदपर्वत पर आये। वहाँ निर्जरकूट पर उन्होंने योग धारण कर लिया, उपदेश देना बंद कर दिया। बैशाख कृष्ण दशमी को श्रवण नक्षत्र में एक हजार मुनियों के साथ उन्होंने परमपद—मोक्ष प्राप्त किया। भगवान् के मोक्ष करने के बाद इस कूट पर से नौ करोड़, चार लाख, तीस हजार मुनियों ने मोक्ष प्राप्त किया है ॥५४-५८॥

अयोध्यानगरी यत्र सर्वलोकनमस्कृता।
रामचन्द्रोऽभवद्राजा तस्यां शीलनिधिर्महान् ॥५६॥

सीतादेवीति विख्याता महिषी तस्य चाभवत्।
स धर्मात्मा तया सह(युक्तः)बुभुजेन्द्रोपमं सुखम् ॥६०॥

दुःखाभिभूतस्तदा ज्ये (जै) घोषिनाशि तथा भुवि।
श्रुता(त्वा)स्तिनामिमात्रं नीतिः प्रत्यक्षवीक्षिता ॥६१॥

द्वावेकदा समायातौ तत्र विद्याधरौ तदा।
अरिञ्जयस्तयोरेकः परो मित्रञ्जयः स्मृतः ॥६२॥

तौ दीपितौ महादीप्त्या रत्नाभरणभूषितौ।
रूढौ रत्नविमानाग्रे समुक्तिर्यागतो भुवि
(चायोध्यापुरमागतौ) ॥६३॥

ववन्दाते महाराजं रामचन्द्रं मुदान्वितौ।
मुनिसुव्रतनिर्वाणवृत्तमेतौ तदोचतुः ॥६४॥

श्रुत्वा श्रीरामचन्द्रस्तु प्रमुह्यानन्द भेरिकाम् ।
प्रवादयित्वा सहितः परिवारेण भव्यराट् ॥६५॥

मुनिसुव्रतपूजार्थं चचालोत्साहसंयुतः ।
अष्टादशाक्षौहिणीकदलेन सहितो विभुः ॥६६॥

पीताम्बरवनं गत्वा शुभस्थानं मुदान्वितः ।
देवं समवसारेऽथ मुनिसुव्रतमर्चयत् ॥६७॥

पश्चान्मधुवनं गत्वा सबलः प्राप्य सत्वरम् ।
गतः सम्मेदशैलस्योपरि श्रीरामचन्द्रकः ॥६८॥

तत्र गत्वा निर्जराख्यं ववन्दे कूटमुत्तमम् ।
अष्टधा पूजयामास श्रद्धया परमां प्रभुः ॥६९॥

इस जम्बूद्वीप के कौशल देश में सर्वलोक द्वारा नमस्कृत अयोध्या नगरी है। वहाँ प्रसिद्ध राजा रामचन्द्र और उनकी महाशीलवती पत्नी सीता हुई है। उसके साथ रामचन्द्र ने इन्द्रोपम सुखानुभव किया। राजा रामचन्द्र के राज्य में कोई भी दुखी नहीं था। शास्त्रोक्त नीति रामचन्द्र के राज्य में लोगों को प्रत्यक्ष दिखाई देती थी। एक बार अयोध्या में अरिंजय तथा अमितंजय नामधारी दो विद्याधर आये। दोनों के शरीर रत्नालंकृत होने से प्रकाश से चमचमा रहे थे। रत्न-विमान से उतरकर उन्होंने अयोध्या में प्रवेश किया। रामचन्द्र के पास आकर उन्होंने उन्हें नमस्कार किया व मुनिसुव्रतनाथ के मुक्ति प्राप्त होने का वृत्तान्त सुनाया। उक्त वृत्तान्त सुनकर रामचन्द्र आनन्द भेरी बजवाकर, अति उत्साह से सपरिवार मुनि-सुव्रतनाथ की पूजन के लिए चला। उनके साथ अठारह अक्षौहिणी सेना थी। वे सानन्द पीताम्बर नामक वन में आये।

समवशरण में मुनि सुव्रतनाथ की पूजन की। पश्चात् ससैन्य मधुवन में जाकर सम्मेदपर्वत पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने निर्जर कूट की परम श्रद्धा से अष्ट प्रकार से अर्चना की ॥५९-६९॥

एवं सम्पूज्य सम्मेदकूटं तं निर्जराह्वयम्।
कीर्तिसिन्धुरभूः श्रीमद्रामचन्द्रो महिपतिः ॥७०॥
एक कोटि पंचचत्वारिंशल्लक्षोक्तकाः स्मृताः।
सहस्रबाहुः प्रभृतिर्भव्याः सर्वे तदुक्तकाः ॥७१॥
दीक्षां गृहीत्वा तत्रैव तपस्तप्त्वा च दारुणम्।
शुक्लध्यानसमारूढ़ाः केवलज्ञानदीपिताः ॥७२॥
कर्म निर्मूलकाः सर्वे कूटान्निर्जरनामकात्।
मुक्ताः सिद्धपदं प्राप्य संसाराच्छोकसागरात् ॥७३॥
एवं प्रभावसम्पन्नो निर्जराख्यगिरीशितुः।
कूटः सदावन्दनीयो भव्यैर्भवमुमुक्षुभिः ॥७४॥

आर्या–

कोटिप्रोषधफलभाक् तदावशादेक कूटमभिवन्द्य।
वन्देतयोऽखिलानि प्राप्नोत्येवामृतालयाः सुज्ञः ॥७५॥

इस प्रकार सम्मेदगिरि की निर्जर नामक कूट को पूजकर रामचन्द्र कीर्ति के समुद्र हुए। इस कूट पर से सहस्रबाहु आदि एक कोटि पेंतालीस लाख भव्य मुक्त हुए अर्थात् इस कूट पर दीक्षा लेकर, वहीं पर ही उन्होंने दारुण तप किया, धर्म-ध्यान में तल्लीन हुए व अन्त में ज्ञानी होकर संसार-समुद्र से पार हुए, सिद्धपद को प्राप्त हुए। सम्मेदशिखर का यह प्रभाव सम्पन्न निर्जर कूट, भवों से मुक्ति चाहने वाले भव्यों को नित्यवंदनीय है। इस कूट की वंदना करने से एक कोटि प्रोषधोपवास का

फल प्राप्त होता है। जो बुद्धिमान् सर्वकूटों की वंदना करता है उसे मोक्ष प्राप्त होता है ॥७०-७५॥

श्री मुनिसुव्रत उवगात् यस्मात्कूटादनन्तसुखभूमिम् ।
भव्यैर्वन्दितमनिशं निर्जरकूटं नमामि तं भक्त्या ॥७६॥

श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेश्वर जिस कूट से अनन्त सुखों की भूमि (मुक्ति) को प्राप्त हुए हैं, तथा जो नित्य ही भव्यों द्वारा वन्दित है, उस कूट को मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ ॥७६॥

इति श्रीदीक्षितब्रह्मनेमिदत्तविरचिते श्रीसम्मेदशिखर-माहात्म्ये निर्जरकूटवर्णनाम एकोनविंशतितमोऽध्यायः समाप्तः ।

इस प्रकार सम्मेदशिखर माहात्म्य ग्रन्थ में निर्जर कूट का वर्णन करने वाला उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

जिन लोगों को अपनी कीर्ति की इच्छा होती है वे अपने राई के समान छोटे-छोटे दोषों को भी ताड़ वृक्ष के बराबर समझें और स्वयं को दुर्गुणों से बचाने में सदा सचेत रहें, क्योंकि वे (दुर्गुण) ऐसे शत्रु हैं जो हमारा सर्वनाश कर डालेंगे ।

अथ विंशोऽध्यायः

(नमिनाथ जिनेन्द्र चरित्र)

नमिनाथस्य पादाब्जे मुनिभ्रमरसेविते ।
सदाविकासितप्रेम्णा मूर्ध्ना च भ्रमरायितम् ।।१।।
चरितं नमिनाथस्य तत्कूटगिरिवर्णनम् ।
वर्णनाच्छ्रवणात्पुंसो कोटिकल्मषनाशिनम् ।।२।।

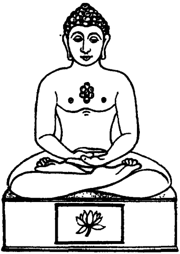
श्री नमिनाथ जिनेन्द्र के, मुनि रूपी भ्रमरों से सेवित चरण-कमलों के प्रति, विकसित प्रेम से भ्रमर के समान आचरण करता हुआ मैं मस्तक से नमस्कार करता हूँ । श्री नमिनाथ प्रभु के चरित तथा उनके कूट का वर्णन करने और सुनने से मनुष्यों के कोटि पाप नाश को प्राप्त हो जाते हैं ।।१-२।।

जम्बूद्वीपे महापुण्ये भारते क्षेत्र उत्तमे ।
विषयः कोसलाख्योस्ति प्रसिद्धो जगतीतले ।।३।।
कौशाम्बी नगरी यत्र यमुनापूरशोभिता ।
तस्यामिक्ष्वाकुवंशे भूत् पार्थो नाम महीपतिः ।।४।।
सिद्धार्था तस्य महिषी महापुण्या शुचिव्रता ।
सुन्दरीणां सुन्दरी सा सत्कीर्तिपरिशोभिता ।।५।।

इस जम्बूद्वीप के महापवित्र भारत क्षेत्र में पृथ्वी पर प्रसिद्ध कोसल नामक देश है । उस देश में यमुना के प्रभाव से शोभित कौशाम्बी नामक नगरी है । वहाँ इक्ष्वाकुवंशज पार्थ राजा राज्य करता था । उसकी रानी का नाम सिद्धार्थ था । वह महान् पुण्यवती व निर्मल व्रतों को धारण करने वाली महिला थी । सर्व सुन्दर स्त्रियों में अपूर्व सुन्दरी थी वह और उसकी कीर्ति चारों ओर फैली हुई थी ।।३-५।।



मित्रधर कूट



नमिनाथ जिनराज का, कूट मित्रधर जेह।
मन वच तन कर पूजहूं, शिखर सम्मेद यजेह ।।

ओ३म् ह्रीं श्री नमिनाथ जिनेन्द्रादि मुनि ६ कोड़ा कोड़ी १ अरब ४५ लाख ७ हजार ६४२ मुनि इस टोंक से सिद्ध भए तिनके चरणारविन्द को मेरा मन वचन काय से बारम्बार नमस्कार हो जलादि अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।।२१।।

इस टोंक की भाव सहित वन्दना करने से एक करोड़ उपवास का फल होता है।

तया सह महीपालो नीतिविन्नीतिवित्प्रियः ।
सांसारिकं सुखं मुख्यं बुभोज चिरमुत्तमम् ॥६॥

मनोहरवने भूपः एकदासौ समागतम् ।
जगद्वराभिधं श्रुत्वा तमधावत्प्रवन्दितुम् ॥७॥

सम्प्राप्य तद्वनं नत्वा मुनिराजं सभक्तितः ।
अपृच्छ श्रावकानां स धर्मं स्व शिवकार्मुकम् ॥८॥

एकादश प्रतिमकः श्रावकाचारमुत्तमम् ।
निर्णायं मुनिना प्रोक्तो लोकद्वयहितावहः ॥९॥

तं श्रुत्वा श्रावकानां स व्रतं जग्राह सादरम् ।
अभूत्सम्यक्त्वसम्पन्नो पालयन् धर्ममुत्तमम् ॥१०॥

चक्रेऽसौ न्यायतो राज्यं प्रजापालस्तदार्तिहृत् ।
एकदा पुनरप्यागात् वनं शुचिमनोहरम् ॥११॥

राजा नीतिज्ञ व नीतिज्ञ जनों को प्रिय था। उसने अपनी रानी के साथ दीर्घकाल पर्यन्त सांसारिक सुखों का अनुभव किया। एक बार मनोहर उद्यान में जगद्वर नामक मुनि आये। उनके आगमन का समाचार जानकर मोक्षेच्छुक राजा ने वहाँ पहुँचकर, स्तुतिपूर्वक महाराज से श्रावक-धर्म का स्वरूप बताने की प्रार्थना की। तब मुनीश्वर ने ग्यारह प्रतिमाओं का स्वरूप कहा। यह श्रावकाचार इहलोक व परलोक में हितकारक है—मुनि ने यह उत्तम रीति से स्पष्ट करके कहा। राजा ने श्रावक धर्म को आदर से स्वीकार किया। उनको पालन करते हुए वह सम्यक्त्वी हुआ और न्यायपूर्वक राज्य करता हुआ, प्रजा का दुख दूर करता था ॥६-११॥

जगद्धन्यं मुनिश्रेष्ठं समाकर्ण्यागतं मुदा ।
नत्वा तं तन्मुखाच्छुद्धान्यतिधर्मान्सशुश्रुवे ॥१२॥

श्रवणादेव वैराग्यं उत्पन्नं तस्य मानसे ।
तदा श्रीधरपुत्राय स्वराज्यं दत्तवान् नृपः ॥१३॥

स्वयं वने तपो दीक्षां धृत्वा निर्वाणमानसः ।
एकादशाङ्गभृन्नूनं दध्यौ (द्यो) षोडशभावनाः ॥१४॥

बद्ध्वाऽसौ तीर्थकृन्नाम स्वायुष्यान्ते महेश्वरः
(मुनीश्वरः) ।
कृत्वा शरीरत्यजनं प्राप सा उत्तमं पदम् ॥१५॥

सर्वार्थसिद्धिदं नाम　　निर्मलानन्तसागरम्
(सौख्यदम्) ।
तत्र गत्वाऽहमिन्द्रोऽभूत् सर्वदेवकृतादरः ॥१६॥

त्रिंत्रिंशत्सरिदीशायुः तत्रासौ सुखसम्प्लुतः ।
तत्रोक्ताहारनिश्वासः सर्वकार्य क्षमोऽभवत् ॥१७॥

पुनः एक बार उसी मनोहर उद्यान में जगद्धन्य नामक मुनिवर का आगमन हुआ। राजा ने प्रसन्नता से वहाँ जाकर मुनि को वंदन किया। मुनिराज के मुख से निर्मल यति धर्म का वर्णन सुनकर राजा के मन में संसारादि से वैराग्य हो गया। उसने अपने पुत्र श्रीधर को राज्य देकर, मोक्ष की इच्छा को मन में रखकर स्वतः वन में जाकर दीक्षा ले ली। उसने ग्यारह अंगों का ज्ञान प्राप्त किया और सोलहकारण भावनाओं का चिन्तवन कर तीर्थंकर नामकर्म नामक महापुण्यप्रकृति का बंध किया। आयुष्य के अन्त में संन्यास धारण कर; सर्वार्थसिद्धि में देव-देवियों से पूजित अहमिन्द्र पद प्राप्त किया। वहाँ उसकी

आयु तेतीस सागर प्रमाण थी। सर्वार्थसिद्धि में सुख से रहते हुए वहाँ के योग्य आहार, श्वास व विक्रिया आदि कार्य करने में समर्थ था ॥१२-१७॥

तत्रोच्चरन् सधर्माणि सिद्धध्यानकृतादरः ।
षण्मासिकावशिष्टायुः तस्थौ त्रिजदीश्वरः ॥१८॥

तस्यावतार चरितं श्रवणात्पठनात्कृतः (वृध्द्‌वम्) ।
सर्वकार्यकरं वक्ष्येऽधुनाहं सिद्धये सताम् ॥१९॥

द्वीपे जम्बूमति ख्याते क्षेत्रे भरतभूभृतः ।
वङ्गदेशे पुरी रम्या मिथिलाख्या मता सताम् ॥२०॥

इक्ष्वाकुवंशे तत्रासीत् काश्यपे गोत्र उत्तमे ।
राजा विजयसेनाख्यो महाधर्मधुरन्धरः ॥२१॥

वप्राख्या तस्य महिषी पूर्णद्विज नृपानना
(पूर्णेन्दुसदृशानना) ।
विचित्र भाग्यराशिः सा बभूव नृपवल्लभा ॥२२॥

तया सह महीपालः शच्या सह हरिर्यथा ।
अन्वभूद् भोगमतुलं पूर्वपुण्योद्भवं तदा ॥२३॥

वहाँ धार्मिक चर्चाओं को करते हुये तथा सिद्धों के ध्यान में आदर प्रदर्शित करते हुये उसकी छह माह की आयु अवशिष्ट रह गई। छह मास बाद वह त्रैलोक्यनाथ के रूप में जन्म लेने वाला है। अब मैं उसके अवतार की कथा को, जिसके श्रवण करने या पढ़ने से सर्व कार्य सम्पन्न हो जाते हैं, सज्जनों की सिद्धि हेतु कहता हूँ। इस प्रसिद्ध जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में बंगदेशान्तर्गत मिथिला नगरी है, जो कि सज्जनों में मान्यता को प्राप्त है। वहाँ इक्ष्वाकु वंश में उत्तम काश्यप गोत्रीय राजा

विजयसेन राज्य करता था। उसने महाधर्म का जुवा (धुर) अपने कन्धों पर धारण कर रखा था। उसकी रानी का नाम वप्रा था। उसका मुख चन्द्रमा के समान आल्हादक तथा भाग्य विस्मयकारी था। वह राजा को अत्यन्त प्रिय थी। जिस प्रकार इन्द्र इन्द्राणी के साथ अनुपम सुख का उपभोग करता है, उसी प्रकार वह विजयसेन राजा भी रानी वप्रा के साथ, पूर्व पुण्योदय से प्राप्त हुये सुख का अनुभव लेने लगा ॥१८-२३॥

अर्वाक् षाण्मासतस्तस्य वेश्मनीन्द्रनिदेशतः ।
रत्नवृष्टिं चकारोच्चैः धनेशो धन्यभागभूत् ॥२४॥
अथाऽऽश्विने कृष्णपक्षे द्वितीयायां नृपप्रिया ।
अपश्यत् षोडशान्स्वप्नान् यामिन्यान्तं स्वभाग्यतः ॥२५॥
तदन्ते द्विरदं मत्तं विशदं सुभगाकृतिम् ।
मुख (खे) प्रविष्टमालोक्य प्रबुद्धा पतिमन्वगात् ॥२६॥
तत्रोच्चार्य क्षितीट् स्वप्नान् तत्फलं पति वक्त्रतः ।
श्रुत्वा सा वचनान्यन्तं महामोदमवाप हि ॥२७॥
अहमिन्द्रोऽवतीर्यासौ तद्दिने त्रिजगत्पतिः ।
तद्गर्भं दिक्कुमारिभिः शोधितं प्राविशद्विभुः ॥२८॥
गर्भागते भगवति प्रसेदुर्हरितोखिलाः ।
ववुर्वाताश्च सुखदा अभूत्सुखमयं जगत् ॥२९॥
दशम्यामथ चाष्टम्यां कृष्णायां योग उत्तमे ।
अजीजनज्जगन्नाथं वप्रादेवी सुलक्षणा ॥३०॥
पुरुहूतस्तदैवेत्य जयध्वान प्रजल्पकः ।
सामरस्तत्र तं प्रेम्णा समादाय जगत्प्रभुम् ॥३१॥
गतवान्स्वर्णं शैलेन्द्रं तत्र संस्थाप्य तं विभुम् ।
विधिना स्नपयद्वार्भिः घटस्थैः क्षीरसिन्धु जैः ॥३२॥

ततो गन्धोदकस्नानं समाप्याथ विभूष्य च ।
कृत्वा तं स्वाङ्कगं भूपं प्रापयन्मिथिलां हरिः ।।३३।।

नृपाङ्गणे तमारोप्य पुनः सम्पूज्य भक्तितः ।
पुरतस्ताण्डवं कृत्वा प्रसाद्याखिलमंडले ।।३४।।

अहमिन्द्र के पृथ्वी पर आने के छह माह पूर्व से ही राजा के घर, इन्द्राज्ञा से कुबेर द्वारा रत्नवृष्टि होने लगी; जिससे उसे धन्यता प्राप्त हुई। इसके बाद आश्विन कृष्ण द्वितीया के दिन रानी ने भाग्योदय से पूर्ववत् सोलह स्वप्न देखे। राजा के मुख से स्वप्नों का फल जानकर रानी हर्षित हुई। दिक्कुमारियों द्वारा गर्भ का शोधन किये जाने पर वह अहमिन्द्र (का जीव) गर्भ में प्रविष्ट हुआ। उनके गर्भ में आते ही सर्व दिशायें प्रसन्न हो गईं, सुखमय पवन चलने लगा, सारा जगत् सुखी हुआ। आषाढ़ कृष्ण अष्टमी के दिन (उ. पु. आषाढ़ कृष्ण दशमी) उत्तम योग पर सुलक्षणा वप्रादेवी ने भगवान को जन्म दिया। प्रभु का जन्म हो गया है—ऐसा जानकर इन्द्र जयकार करता हुआ राजमंदिर में आया। बालक-प्रभु को प्रेम से लेकर वह मेरु-पर्वत पर गया। वहाँ पाण्डुक-शिला पर प्रभु को विराजमान कर, क्षीर-समुद्र के जल से भरे कलशों से उनका अभिषेक किया व पुनः गन्धोदक से स्नान कराकर वस्त्राभूषणों से प्रभु को अलंकृत कर प्रभु को वापस नगर में ले आया। प्रभु को राज्यांगण में सिंहासन पर विराजमान कर इन्द्र ने भक्ति से उनकी पूजन की तथा उनके समक्ष ताण्डव-नृत्य प्रस्तुत किया। ताण्डव-नृत्य से सबको प्रसन्न कर उसने प्रभु का नाम नमिनाथ रखा ।।२४-३४।।

नमिनाथाभिधां कृत्वा तस्य त्रिज्ञानधारिणः ।
मतेन भूभृतः स्वर्गं जगाम स सुरर्षभः ।।३५।।

षड्लक्षाब्देषु यातेषु देवात् श्रीमुनिसुव्रतात् ।
तन्मध्यजीवी समभून्नमिनाथो जिनेश्वरः ।।३६।।

सहस्रदशकाब्दायुरुन्नतोऽयं शरासनैः ।
पञ्चाधिकदशप्रोक्तैः तत्र जाम्बूनदद्युतिः ।।३७।।

सार्धद्विकसहस्राब्दः बालकेलीरतः प्रभुः ।
सम्यग् व्यतीय कौमार्यं यौवनाभिगमे तदा ।।३८।।

पैतृकं राज्यमापासौ राज्ये नीतिधरः सदा ।
प्रजाः ररक्ष धर्मेण पश्यंस्तासां विचेष्टितम् ।।३९।।

एकदा स प्रभुर्मोदाद्रम्यं वनमगात्स्वयम् ।
वसन्ते पुष्पितां तत्र फलितानैक्षत द्रुमान् ।।४०।।

ततः सरोवरे देवो नलिनं मलिनं दृशा ।
समीक्ष्याथ विरक्तोऽभूत तद्वत्सर्वं विचारयन् ।।४१।।

ततो लोकान्तिकैरीशः स्तुतः शक्रादिरन्वितः ।
मुदा विजयसेनाख्यामारुह्य शिबिकां वराम् ।।४२।।

गत्वा तपोवनं शीघ्रं राज्यं दत्वा स्वसूनवे ।
सहस्रावनिपैः सार्धमाषाढदशमी दिने ।।४३।।

इसके बाद राजा की आज्ञा लेकर, वह श्रेष्ठ इन्द्र स्वर्ग को वापस चला गया। मुनिसुव्रत भगवान के बाद छह लाख वर्ष बीतने पर नमिनाथ प्रभु का जन्म हुआ। भगवान् मुनिसुव्रत का जीवन भी एतदन्तर्गत है। उनकी आयु दस हजार वर्ष तथा शरीर की ऊँचाई पन्द्रह धनुष प्रमाण थी। शरीर का वर्ण तप्त स्वर्ण के समान था। प्रभु की बाल-क्रीडा ढ़ाई हजार वर्ष

थी। उसके बाद वे तरुणावस्था को प्राप्त हुये। पिता द्वारा राज्य प्राप्त होने पर उन्होंने नीतिपूर्वक प्रजा का रक्षण किया। प्रजा के कार्य पर अच्छी दृष्टि रखकर प्रजा का धर्म-पूर्वक पालन किया। एक बार प्रभु आनन्द से रम्य उद्यान में गये। बसन्त-ऋतु के कारण वन के वृक्ष उजड़े हुए दीखते थे। इसके बाद प्रभु ने सरोवर में एक कमल को सूखते हुए अपनी आँखों से देखा। तब, 'सर्व पदार्थों की स्थिति ऐसी ही है' ऐसा विचार कर वे विरक्त हुए। लौकान्तिक देवों ने आकर उनकी स्तुति की व नमस्कार किया। इसके बाद प्रभु ने अपने पुत्र को राज्य सौंपकर, विजयसेना नामक उत्तम पालकी में आरूढ़ हो तपोवन को प्रयाण किया। आषाढ़ कृष्ण दशमी के दिन हजार राजाओं के साथ उन्होंने स्वयं दीक्षा धारण करली ॥३५-४३॥

कृष्णपक्षे स्वयं दीक्षामगृहीत् विश्वनन्दितः।
मनःपर्ययवत्वं स लेभे तत्क्षणतो ध्रुवम् ॥४४॥

ततो वीरपुरं गत्वा द्वितीयदिवसे प्रभुः।
पूजितो दत्तभूपेन तत्राहारं समग्रहीत् ॥४५॥

प्रभोराहारसमये पञ्चाश्चर्याणि भूपतिः।
समीक्ष्य मनसा नूनं मन्ये तं जगदीश्वरम् ॥४६॥

वेलोपवासकृद्देवो नववर्षाणि मौनभाक्।
तप उग्रं चकारासौ घातिकर्म विनाशकम् ॥४७॥

तत्रैव वनमासाद्य भूयोऽसौ तपसोज्ज्वलम्।
पूर्णिमायां मार्गशीर्षे केवलज्ञानवानभूत् ॥४८॥

ततः समवसारेऽसौ धनदादिविनिर्मिते।
सुप्रभाद्यैस्तथाचान्यैः भव्यैर्द्वादशकोष्ठगैः ॥४९॥

स्तुतः सम्पूजितो भव्यजनैः सम्पृष्ट ईश्वरः ।
दिव्यध्वनिं समुत्सार्य चक्रे तत्त्वादिवर्णनम् ।।५०।।
धर्मक्षेत्रेषु सर्वेषु विहरन् स्वेच्छया प्रभुः ।
मासमात्रायुरगमत् सम्मेदाख्यं नगेश्वरम् ।।५१।।
तत्र मित्रधराख्यं सत्कूटं सम्प्राप्य संस्थितः ।
समारुह्य वरं योगं पान्तु सद्ध्यानलीनभृत् ।।५२।।
निष्कर्मसिद्धिं सम्प्राप्य मुनिभिः सह दीक्षितैः ।
केवलज्ञानतो मुक्तिमवाप भुवि दुर्लभाम् ।।५३।।
तदा त्वेकार्बुदनवशतकोटघुक्तकोटिका ।
पञ्चचत्वारिंशदुक्त लक्षासप्तसहस्त्रिणः ।।५४।।
नवोक्तशतिका द्व्यन्तचत्वारिंश मुद्युता तथा ।
एनया संख्यया प्रोक्ता भव्यास्तस्माच्छिवं गताः ।।५५।।

तत्काल ही प्रभु को मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ । दूसरे दिन वे आहार के लिए वीरपुर गये । वहाँ दत्त नामक राजा ने उनकी पूजा कर, आहार दिया । आहार के बाद उस राजा के घर पञ्चाश्चर्य-वृष्टि हुई, जिसे देखकर उसने प्रभु को जगत्पति कहा । प्रभु ने एक उपवास धारण कर पुनः आहार लिया । इस प्रकार प्रभु ने मौन धारण कर नौ वर्ष पर्यन्त तपश्चरण किया । तप के प्रभाव से कर्मों का नाश कर प्रभु ने मार्गशीर्ष पूर्णिमा (उ० प्र०—मार्गशीर्ष एकादशी) के दिन केवलज्ञान प्राप्त किया । कुबेरादि ने समवशरण की रचना की । समवशरण के मध्य अन्तरिक्ष में विराजमान प्रभु की सुप्रभादिक गणधरों व इतर भव्यों ने स्तुति की, पूजन की । अनन्तर भव्यों द्वारा आदरपूर्वक विनती किये जाने पर प्रभु ने दिव्यध्वनि से तत्त्वादिक का निरूपण किया । प्रभु ने सर्व धर्म क्षेत्रों में विहार

किया। जब एक महिने की आयु शेष रही तब भगवान् सम्मेदाचल के मित्रधर नामक कूट पर आकर उपस्थित हुए। उन्होंने वहाँ उत्तम योग धारण कर, चतुर्थ शुक्लध्यान में लीन होकर, सहदीक्षित मुनियो के साथ सर्वकर्मों का नाश करके जगत् में दुर्लभ मुक्ति को प्राप्त कर लिया। उस समय से एक अरब, नौ सौ कोटा-कोटि, पैतालीस लाख, सात हजार नौ सौ चालीस भव्यो ने इस कूट से मोक्ष प्राप्त किया है ।।४३-५५।।

तत्पश्चान्मेघदत्ताख्यो नृपःसङ्घ प्रपूजकः ।
यात्रां गिरिवरस्यासौ चक्रे तस्य कथोच्यते ।।५६।।

जम्बूद्वीपे शुचि क्षेत्रे भारते योधनामभृत् ।
देशोस्ति श्रीपुरे तत्र राजा नाम्ना महाव्रतः ।।५७।।

अभवत्तस्य राज्ञी तु शिवसेनातिसुन्दरी ।
तयोर्नाम्ना मेघदत्तः सुतो वंश प्रदीपकः ।।५८।।

मेघदत्त राजा की कथा

उसके बाद राजा मेघदत्त ने सघ की पूजा करके सम्मेदशिखर की यात्रा की। उसकी कथा मैं अब कहता हूँ—

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र मे योधदेश के श्रीपुर नगर मे महाव्रत नामक राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम शिवसेना था। वह अतिशय सुन्दर थी। इन दोनों से मेघदत्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह राजा महाव्रत के वश को दिव्य प्रमाण उज्ज्वल करने वाला था। वह ज्ञानवान्, शीलवान्, धर्म-कर्मों मे तत्पर व गुणसम्पन्न था। उसकी पत्नी का नाम श्रीषेणा था। उसके ऊपर उसका अति अनुराग था। वह श्रीषेणा अपूर्व सुन्दरी थी ।।५६-५८।।

ज्ञानवान् गुणसम्पन्नः शीलवान् धर्मकर्मकृत् ।
श्रीषेणा वल्लभा तस्य विख्याता रूपशालिनी ।।५६।।

एकदा विजयाख्येसौ वने क्रीडार्थमागमत् ।
वसन्तसेन नामानं मुनिं तत्र ददर्श हि ।।६०।।

प्रणम्य सादरं राजा तं मुनिं तत्त्वदर्शिनम् ।
अपृच्छच्छ्रेयसो मार्गं मुमुक्षुर्मोक्ष सिद्धये ।।६१।।

तदा तेन मुनीशेन सम्मेदाख्यमहीभृतः ।
उक्तो मित्रधराख्यस्य कूटस्य महिम गुरुः ।।६२।।

श्रुत्वा भूपोपि सन्तुष्टवानन्दभेरीमवादयत् ।
महासार्थानुगः शीघ्रं यात्रायै स चचाल हि ।।६३।।

नमेर्मित्रधरं कूटं तत्र गत्वा प्रसन्नधीः ।
अष्टधा पूजया पूज्यं पूजयामास भक्तितः ।।६४।।

स्तुतिं बहुविधां तस्य कृत्वा भव्यगुणान्वितः ।
दीक्षां तत्रैव सङ्ग्राह्य तपस्सन्तप्य चोत्तमम् ।।६५।।

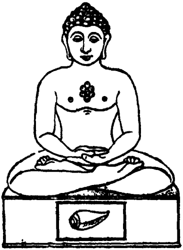
पञ्चचत्वारिंशदुक्तलक्षयुक्तार्बुदैर्युतैः ।
भव्यैः सह स पुण्यात्मा केवलावगमाद् भुताम् ।।६६।।

शुक्लध्यान समारूढो जितमोहरिपुः कृती ।
अनन्तानन्त सुखदां मोक्षसिद्धिमवाप्तवान् ।।६७।।

एक बार विजय उपवन में राजा मेघदत्त क्रीड़ा करने के लिए गया । वहाँ उसे बसन्तसेन मुनि दिखाई दिये । राजा ने आदर से, मोक्ष की सिद्धि के लिए, मुनिराज से श्रेयस् (मोक्ष) का मार्ग पूछा । तब मुनि ने शिखर के मित्रधर नामक कूट की महती महिमा कही । सुनकर राजा सन्तुष्ट हुआ । उसने आनन्द भेरी बजवाकर शीघ्र ही एक महासंघ के साथ यात्रा के लिए



नेमिनाथ भगवान



नेमिनाथ जिन सिद्ध भये, सिद्ध क्षेत्र गिरनार।
मन वच तन कर पूजहूं, भवदधि पार उतार ॥

ओ३म् ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्रादि शम्भू प्रद्यु म्न अनिरुद्ध इत्यादि ७२ करोड़ सात सौ मुनि गिरिनार पर्वत से मोक्ष भये सिद्धक्षेत्रेभ्यो तिनके चरणारविन्द को मेरा मन वचन काय से बारम्बार नमस्कार हो, जलादि अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥२२॥

प्रस्थान किया। राजा ने वहाँ पहुँचकर भक्ति से मित्रधर कूट की वंदना की। सर्व भव्यों के साथ उसने कूट की वंदना व स्तुति करके वहीं दीक्षा ले ली व उत्तम तप किया। पैंतालीस लाख अरब भव्यों के साथ उसने मोहनीय शत्रु को जीतकर केवलज्ञान प्राप्त किया तथा शुक्लध्यान में आरूढ़ होकर अनन्तानन्त सुख देने वाली मोक्ष की सिद्धि प्राप्त की ॥५६-६७॥

वन्दनावेक कूटस्य सिद्धिरेव प्रकीर्तिता।
तस्मात्प्रवन्दनाम्भव्याः सर्वं कूटान् प्रयत्नतः ॥ ६८॥
तपः प्रभव पावक प्रकटिता तुल ज्वालिका।
प्रदाहि (यि) त महातमः पटललब्ध सत्केवलः ॥६६॥
नमिः स भगवान्गतः शिवपदं यतस्तं सदा।
नमामि धर कूटकं मनसि मित्र शब्दान्वितम् ॥७०॥

इस कूट की वंदना करने से इतनी सिद्धि कही है, इसलिए हे भव्यो! प्रयत्न करके सर्वकूटों की वंदना करो। तपश्चरण रूपी अग्नि की ज्वाला से मोहरूपी घोर अन्धकार को नष्ट करने के कारण जिन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है, ऐसे नमिनाथ भगवान् ने जिस मित्रधर कूट से मुक्ति प्राप्त की, उस कूट को मैं सदा नमस्कार करता हूँ ॥६८-७०॥

इति दीक्षित ब्रह्मनेमिदत्त विरचिते श्रीसम्मेदगिरि-माहात्म्ये मित्रधरकूट वर्णनोनाम विंशतितमोऽध्यायः समाप्तः।

इस प्रकार सम्मेदशिखर माहात्म्य ग्रन्थ में मित्रधर कूट का वर्णन करने वाला बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अथ एकविंशोऽध्यायः

(श्री पार्श्वनाथ जिन-चरित्र)

यत्पदाम्भोरुहध्यानात् पार्श्वगासिद्धिरुत्तमा ।
मनो यः पार्श्वचरणं पार्श्वनाथमुपाश्रये ।।१।।

मुकुटं सप्त फणिकं यस्य मूर्ध्नि विराजते ।
नीलवर्णं तमीशानं पार्श्वनाथमुपास्महे ।।२।।

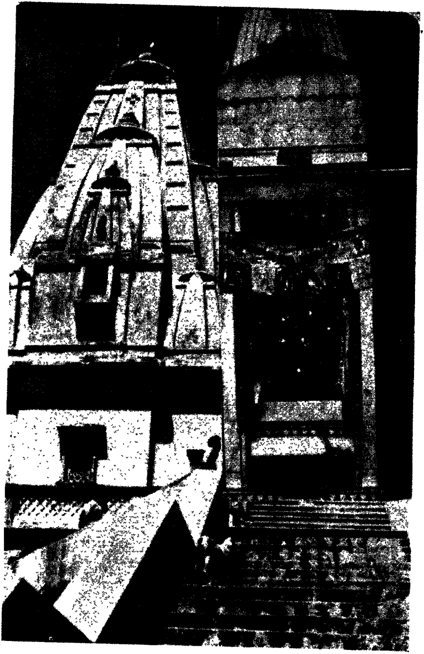
कथा तस्य प्रवक्ष्येहं पञ्चकल्याण दीपिताम् ।
ततः तत्कूट माहात्म्यं श्रृणुध्वं भव्य सत्तमाः ।।३।।

जिनके चरण-कमलों के ध्यान से उत्तम सिद्धि (मुक्ति) पार्श्व में (निकट में या बगल में) आ जाती है, तथा भव्यों का मन जिनके चरणों के पार्श्व में ही रहता है, उन पार्श्वनाथ प्रभु का मैं आश्रय लेता हूँ। जिसके मस्तक पर सात फणों वाला मुकुट शोभित है, उन नीलवर्ण प्रभु पार्श्वनाथ की मैं उपासना करता हूँ। मैं उन पार्श्वनाथ प्रभु की पञ्चकल्याणक से दीपित (युक्त) कथा को कहूँगा; उसके बाद उस कूट का माहात्म्य कहूँगा। हे श्रेष्ठ भव्यो ! उसे सुनो ।।१-३।।

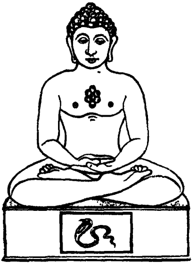
जम्बूनाम्नि महाद्वीपे भरतस्य महीयसः ।
क्षेत्रे काश्यभिधे देशे तत्रवाराणसी पुरी ।।४।।

मणिभिर्जटि(डि) ता सातु परितः सुखमाकरा ।
तत्रानन्दाभिधो राजा राज्यं चक्रे सुखान्वितः ।।५।।

एकस्मिन् समये राजा राज्यभोगसुखोद्गमात् ।
ददर्श मुखमादर्शे प्रोत्युत्फुल्लेक्षणाम्बुजः ।।६।।



स्वर्णभद्र कूट



पार्श्वनाथ जिनराज का, स्वर्णभद्र है कूट।
मन वच तन कर पूजहूं, जाऊं करम से छूट।।

ओ३म् ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्रादि मुनि ८२ करोड़ ८४ लाख ४ हजार ७४२ मुनि इस परम-पुनीत कूट से मोक्ष पधारे हैं तिनके चरणारविन्द को मेरा मन वचन काय से बारम्बार नमस्कार हो जलादि अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।।२३।।

एक बार इस कूट को शुद्ध भाव से ध्यान व दर्शन करने से पशु गति से छुटकारा हो जाता है और १६ करोड़ उपवास का फल एक दफा वन्दना करने से होता है।

शुक्लकेशान्मुखे वीक्ष्य विरक्तो भून्महीपतिः ।
मुनिं समुद्रदत्ताख्यमभिवन्द्य तथैव सः ।।७।।

सकाशात्तस्य बहुभिः भूमिपालैस्समं मुदा ।
दीक्षां जग्राह पुण्यात्मा परमार्थप्रसिद्धये ।।८।।

एकादशाङ्गधारी स कारणानि च षोडश ।
भावयित्वा बबन्धासौ गोत्रं तीर्थकृतं सताम् ।।६।।

इस जम्बूद्वीप नामक महाद्वीप में जो भरतक्षेत्र का बड़ा भाग है, उसमें वाराणसी नामक नगरी है, जो मणिखचित होने से सर्वतः अतिशय सुन्दर दीखती है। इस नगरी में आनन्द राजा सुख से राज्य करता था। एक बार, राज्यभोग से उत्पन्न सुख व प्रीति से विकसित कमल-नयन वाला राजा दर्पण में अपना मुँह देखने लगा। तभी उसको अपने मस्तक पर सफेद बाल दिखाई दिया। उसे देखकर वह भोगों से विरक्त हो गया व तत्काल समुद्रदत्त नामक मुनि को वंदन कर, अनेक राजाओं के साथ, 'मोक्ष की सिद्धि हो'—इस भावना से, उस पुण्यात्मा ने हर्षित होकर दीक्षा ले ली। ग्यारह अंगों का धारक होकर उसने सोलह भावनाओं का चिन्तवन करके तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया ।।४-६।।

आयुषान्ते स सन्यासात् प्राणत्यागं विधाय वै ।
प्राप्य स्वर्गं प्राणताख्यं स इन्द्रत्वमाययौ च ।।१०।।

तत्र प्रोक्तायुराहार श्वास सामर्थ्यवान् प्रभुः ।
तथैवेन्द्रसुखं भुञ्जन् सिद्धस्मरणकृद् बभौ ।।११।।

आयुष्य के अन्त में आनन्द मुनि ने संन्यास धारण कर प्राण त्यागे व प्राणत स्वर्ग में अहमिन्द्र पद पाया। वहाँ कहे

अनुसार आहार, श्वास, विक्रिया-सामर्थ्य आदि उस इन्द्र को प्राप्त हुआ। वह इन्द्र सुखों का उपभोग करते हुए सिद्धपरमेष्ठी का स्मरण करता था ॥१०-११॥

अथ तस्यावतारस्य कथा कल्याणदा सताम् ।
श्रोतव्या पठितव्या च वक्ष्येऽहं सादरं बुधाः ॥१२॥

अब मैं सज्जनों को सुख देने वाली उस इन्द्र के अवतार की कथा कहता हूँ जो विद्वज्जनों द्वारा सादर सुनने-पढ़ने योग्य है ॥१२॥

पूर्वोक्त काशिविषये वाराणस्यामभून्नृपः ।
विश्वसेनाभिधस्तस्य वामाख्या महिषी वरा ॥१३॥
तया सहमहाराजो विश्वसेनो वरं सुखम् ।
अन्वभूत् पूर्वसुकृतप्रभावात्प्रतिवासरम् ॥१४॥
तयोर्देवाधिपादेशात् किन्नराधिपतिस्तदा ।
ववर्ष बहुरत्नानि गृहे सुरगृहोपमे ॥१५॥
ततो वैशाखमासेऽथ शुक्लपक्षे नृपप्रिया ।
द्वितीयायां निशान्ते सोपश्यत् स्वप्नांश्च षोडश ॥१६॥
मत्तस्तम्बेरमं तेषामन्ते दृष्ट्वा स्ववक्त्रगम् ।
प्रबुद्धा भर्तृनिकटं गता देवी शुभानना ॥१७॥
उत्कान्ता तत्र सा श्रुत्वा तत्फलानि तदाननात् ।
सन्धार्य जठरे देवं दिदीपे परमत्विषा ॥१८॥

पूर्वोक्त काशी देश के वाराणसी नगर में अश्वसेन नामक राजा अपनी रानी वामादेवी के साथ भोगों को भोगता हुआ अपने राज्यगृह में शोभित हो रहा था। उसके राज्याङ्गण में

कुबेर ने इन्द्राज्ञा से रत्नवृष्टि की। इसके बाद वैशाख शुक्ला द्वितीया (उ० पु० के अनुसार वैशाख कृष्ण द्वितीया) के दिन रानी ने रात्रि में सोलह स्वप्न देखे तथा स्वप्नों के अन्त में एक उन्मत्त हाथी को अपने मुख में प्रवेश करते हुए देखा। इन स्वप्नों को देखकर रानी जाग्रत हो गई। वह शुभमुखी देवी अपने पति के समीप गई और सर्व स्वप्नों को कह सुनाया। पति-मुख से उन स्वप्नों का फल सुनकर उसके मन में अतीव आनन्द हुआ। वह देवी अपने जठर में देव को धारण कर परम आभा से दीप्त हो गई ॥१३-१८॥

ततः पौषस्य कृष्णायामेकादश्यां जगत्प्रभुः।
तस्यामाविरभूत्प्राच्यां बालभानुरिव ज्वलन् ॥१९॥

तदा सौधर्मकल्पेशः सुरैः सह मुदान्वितः।
तत्रागत्य समादाय प्रभुं स्वर्णाद्रिमाप्तवान् ॥२०॥

तत्राभिषिच्य विधिवत् वार्भिः क्षीरोदसम्भवैः।
भूयो गन्धोदकेनाथ सम्भूष्य वरभूषणैः ॥२१॥

पुनर्वाराणसीं प्राप्य देव भूपाङ्गणे हरिः।
मुदा संस्थाप्य सम्पूज्य विधायाद्भुत ताण्डवम् ॥२२॥

पार्श्वनाथभिधां तस्य कृत्वा भूप मतेन सः।
जयध्वनिं समुच्चार्य सदेवो दिवमन्वगात् ॥२३॥

अनन्तर पौष कृष्ण एकादशी के दिन पूर्व दिशा में बालसूर्य के समान प्रकाशमान प्रभु आविर्भूत हुए। तब सौधर्मेन्द्र सर्व देवों के साथ वहाँ आया और प्रभु को लेकर मेरु-पर्वत की ओर चला। वहाँ पहुँचकर उसने क्षीर-समुद्र के जल से प्रभु का विधिपूर्वक अभिषेक किया, पश्चात् गन्धोदक से अभिषेक करके

उत्तम वस्त्राभूषणों से प्रभु को सज्जित कर वापस वाराणसी नगरी में आया। प्रभु को राजाङ्गण में सिंहासन पर बैठाकर इन्द्र ने आनन्दपूर्वक उनकी पूजा कर, उनके समक्ष आश्चर्य-कारक ताण्डव-नृत्य किया व राजा की अनुमति से प्रभु का नाम पार्श्वनाथ रखा। इस नाम को जयध्वनि के साथ उच्चारण कर वह इन्द्र देव-देवियों के साथ स्वर्ग वापस चला गया ॥१९-२३॥

त्रियुक्ताऽशीतिसाहस्रसार्धं सप्तशतेषु च।
गतेष्वब्देषु नेमितो जिनात्पार्श्वेश्वर प्रभुः ॥२४॥

तदन्तरायुः समभूत् भक्तकल्याणदायकः।
शतवर्षप्रमाणायुः सप्तहस्तोन्नतः तथा ॥२५॥

कौमारकाले क्रीडार्थं गतो विपिनमेकदा।
तत्रापश्यत् त्रिलोकेशः कमठाख्यं तपस्विनम् ॥२६॥

नेमिनाथ के मोक्ष-जाने के उपरान्त त्र्यासी हजार वर्ष समाप्त हो जाने पर प्रभु पार्श्व का जन्म हुआ। इनकी आयु भी इसी अवधि में समाविष्ट है। इनकी आयु सौ वर्ष की थी तथा देह की ऊँचाई नौ हाथ प्रमाण थी। कौमार-काल में एक बार पार्श्वनाथ क्रीड़ा के लिए उद्यान में गये। वहाँ उन्होंने कमठ नाम के एक तपस्वी को देखा ॥२४-२६॥

पञ्चाग्नितपसा तप्तं विशुद्धज्ञानवर्जितम।
जिनागमबहिर्भूतमासुरं तप अस्थितम् ॥२७॥

नाग-नागिनिका युक्तं काष्ठमेकं धनञ्जये।
ज्वलन्तं वीक्ष्य तज्ज्ञात्वा दग्धं प्राणिद्वयं प्रभुः ॥२८॥

अवधिज्ञानतो चैतमुक्ता किंचित्तपोधरम्।
तत्क्षणात् स्वयमीशानो वैराग्यं प्राप्तवान् महत् ॥२९॥

विशुद्धज्ञान से रहित वह (कमठ) पंचाग्नि तप से तप्त हो रहा था, वह जिनागम के बहिर्भूत मिथ्या तप में संलग्न था। उसने अग्नि में नाग-नागिनी से युक्त एक लकड़ी डाल दी। वह लकड़ी जल रही थी और उसमें वे दोनों प्राणी भी जल रहे थे। अवधिज्ञान से प्रभु ने यह सब जान लिया। वे तापसी से कहने लगे—हे तापसी ! तेरा यह तप निकृष्ट है अर्थात् भय को देने वाला है। उसी समय स्वयं प्रभु भी वैराग्य को प्राप्त हुए ॥२७-२९॥

लौकान्तिकास्तदा मे (चे) त्य कौमारावसरे प्रभुम् ।
विरक्तं संसृतेर्वीक्ष्य तुष्टुवुः बहुधा प्रभुम् ॥३०॥
देवेन्द्रोपि तदा प्राप्तो जयनिर्घोषमुच्चरन् ।
विमलां शिबिकां तस्य पुरस्कृत्य ननाम तम् ॥३१॥
तमारुह्य ततो देवः सहेतुकवनं तदा ।
सम्प्राप्तो मोक्षदीक्षार्थं वैराग्य श्रियमुद्वहन् ॥३२॥
पौषकृष्णदशम्यां स त्रिशतैर्भूमिनायकैः ।
दीक्षां ग्रहीतवान्सार्धं तत्र मोक्षपदं सताम् ॥३३॥

लौकान्तिक देवों ने, प्रभु कुमारावस्था में ही विरक्त हुए हैं—ऐसा जानकर, अनेक प्रकार से उनकी स्तुति की। देवेन्द्र भी जय-जयकार करता हुआ वहाँ आया। उसने विमला नामक शिबिका शृंगारित कर प्रभु के सामने रखी और प्रभु को नमस्कार किया। इसके बाद प्रभु उस पालकी में बैठे तथा मोक्ष-दीक्षा के लिए वैराग्य-लक्ष्मी को स्वीकार करने के लिए सहेतुक वन में गये। वहाँ उन्होंने पौष कृष्णा दशमी के दिन तीन सौ राजाओं के साथ दीक्षा ले ली। सत्पुरुष, दीक्षा में ही मोक्ष है—ऐसा मानते हैं ॥३०-३३॥

चतुर्थबोधं सम्प्राप्य तथैवाह्नि द्वितीयके ।
भिक्षार्थं गुल्मनगरं सम्प्राप्तोऽयं यदृच्छया ॥३४॥

धन्याख्यो नृपतिस्तत्र गोक्षीराहारमुत्तमम् ।
ददौ सम्पूज्य तं भक्त्या पश्येदाश्चर्यपञ्चकम् ॥३५॥

तपोवनमथ प्राप्य वर्षमेकं स मौनभाक् ।
महत्तीव्रं तपस्तेपे सहमानो परीषहान् ॥३६॥

प्रभु को उसी दिन मनःपर्ययज्ञान प्राप्त हुआ। दूसरे दिन प्रभु आहार के लिए संकल्वन करते हुए गुल्म नगर में पहुँचे। वहाँ धन्य नामक राजा ने प्रभु को उत्तम दूध की खीर का आहार दिया। भक्तिपूर्वक प्रभु को आहार देने से उसके घर पर पञ्चाश्चर्य वृष्टि हुई। आहार लेकर प्रभु वापस तपोवन में आ गये तथा परीषह सहन करते हुए एक वर्ष तक महातप किया ॥३४-३६॥

चैत्रकृष्णप्रतिपदी तपस्सन्दग्धकल्मषः ।
देवदारुतले ज्ञानं केवलं प्राप्तवान् प्रभुः ॥३७॥

कृते समवसारेऽथ धनदेनाद्भुते विभुः ।
सहस्रसूर्यसदृशः स्वतेजोमण्डलाद्बभौ ॥३८॥

तत्रोक्तगणनाथाद्यैः स्तुतो द्वादशकोष्ठगैः ।
वन्दितः पूजितस्सर्वैः ददर्श कृपयाखिलान् ॥३९॥

मरणीभ्रमनातप्रमत्तात्मा दिव्यध्वनिमथोदयन् ।
व्याख्यानं सप्ततत्त्वानां चकार परमेश्वरः ॥४०॥

चैत्र कृष्णा प्रतिपदा के दिन देवदारु वृक्ष के नीचे ध्याना-वस्थित प्रभु ने तप से घातिकर्म रूपी पापों को भस्म कर केवलज्ञान प्राप्त किया। कुबेर ने आकर अद्भुत समवशरण

की रचना की। प्रभु सूर्य-मण्डल के समान भामण्डल से शोभने लगे। समवशरण की बारह सभाओं में बैठे हुए गणधरादिक प्रभु की पूजा-वंदना करने लगे। प्रभु ने अपने ज्ञान से सबको देखा। गणधरादिकों द्वारा प्रश्न किये जाने पर प्रसन्नात्मा प्रभु दिव्यध्वनि से उपदेश देने लगे। उन्होंने सप्त-तत्त्वों का व्याख्यान किया ॥३७-४०॥

विहरन्पुण्यदेशेषु स्वेच्छया जगताम्पतिः।
एकमासायुरुद्बुध्य सम्मेदोपर्यगात्प्रभुः ॥४१॥

सुदर्शनभद्रमासाद्य कूटं तत्र महांम(य)तिः।
शुक्लध्यानबलाद्देवो पूर्वं मोहारिर्जितजिनः ॥४२॥

कायोत्सर्गं ततः कृत्वा त्रिशतैर्मुनिभिः सह।
सिद्धालये मनः सम्यक् नियोज्याथ तमेव सः ॥४३॥

इसके बाद अनेक पुण्यवान् आर्य-देशों में स्वच्छन्दता से विहार करते हुए जगत्पति छह माह आयु अवशिष्ट रह जाने पर सम्मेदपर्वत पर आये। अपनी कान्ति से ऊँची दिखने वाली सुवर्णभद्र नामक कूट पर आकर महामति पार्श्वनाथ ने शुक्ल-ध्यान के सामर्थ्य से पूर्व मोहादिक शत्रुओं का नाश कर, मन को स्थित कर कायोत्सर्ग धारण कर मुक्तावस्था को प्राप्त किया ॥४१-४३॥

तत्पश्चाद्भावसेनाख्यो नृपस्सङ्घसमर्चकः।
तद्यात्रां कृतवान् तस्य कथां वक्ष्येऽत्र पावनीम् ॥४४॥

पार्श्वनाथ तीर्थंकर के मोक्ष जाने के बाद भावसेन नामक राजा ने संघ की पूजा कर सुवर्णभद्र नामक कूट के साथ सर्व कूटों की वंदना की। उसकी पावन कथा को मैं कहता हूँ ॥४४॥

जम्बूमति शुभक्षेत्रे भारते चार्यखण्डके ।
अनङ्गदेशविख्यातः तत्र गन्धपुरी शुभा ।।४५।।

शान्तसेना रूपराशिः सा स्मृता पुत्रवर्जिता ।
एकस्मिन्समये राजा राज्ञा सह स पुण्यभाक् ।।४६।।

गतो वन-विहारार्थं वनं विकसितद्रुमम् ।
सोमसेनाभिधं तत्र चारणर्धिसमन्वितम् ।।४७।।

मुनिं दृष्ट्वा ववन्द्याऽसौ तं पुनर्भक्तितोऽब्रवीत् ।
महान्पुत्राभिलाषो मे कथं सिध्यति भो मुने ।।४८।।

प्रत्युवाच पुनश्चैनं प्रसन्न मुखवारिजः ।
भूपसम्मेदशैलेन्द्रः सर्वशैलाभिवन्दितः ।।४९।।

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में, आर्यखण्ड के अङ्गदेश में शुभ गन्धपुरी नगरी है। इस नगरी के राजा का नाम प्रभासेन था। उसकी प्रिय रानी का नाम शांतसेना था। वह बहुत सुन्दर थी, किन्तु पुत्र रहित थी। एक बार पुण्यात्मा प्रभासेन, रानी के साथ कुसुमित जातवृक्षों वाले वन में क्रीड़ा हेतु गया। वहाँ उन्होंने सोमसेन नामक चारण-मुनि को भक्ति से नमस्कार किया। राजा ने मुनि से पूछा—हे प्रभो! मुझे उत्कट पुत्राभिलाषा है, उसकी पूर्ति कैसे होगी, सो मुझे कहो। तब प्रसन्न मुख-कमल से मुनि कहने लगे ।।४५-४९।।

तस्य कूटानि सर्वाणि वन्दनीयानि सज्जनैः ।
तेषां सुवर्णभद्राख्यं कूटं सर्वार्थसिद्धिदम् ।।५०।।

तत्प्रतिष्ठां त्वमत्रैव कृत्वा परमभक्तितः ।
चैत्यालयं प्रभुं भक्त्या पार्श्वं संस्थाप्य सुन्दरम् ।।५१।।

सिद्धचक्रव्रतं राजन् पालयात्मजमाप्स्यसि ।
मुनिवाक्यमिति श्रुत्वा तत्रैव धरणीपतिः ।।५२।।

हे राजन् ! सम्मेदगिरि राज सब क्षेत्रों में उत्कृष्ट है और वन्दनीय है। उसकी सभी कूटें सज्जनों द्वारा वदनीय हैं; उनमें से भी सुवर्णभद्र कूट सर्वार्थसिद्धिप्रद है। हे राजन् ! तुम यहाँ ही रहकर परम भक्ति से उन कूटों की भक्तिपूर्वक प्रतिष्ठा कर, चैत्यालय के अन्दर सुन्दर पार्श्वनाथ जिनेश्वर की प्रतिमा भक्तिपूर्वक स्थापित कर तू सिद्धचक्र व्रत धारण करके पूजन करने से तुझे पुत्रलाभ होगा ।।५०-५२।।

तस्मिन्वने स कृत्वा तान् स्वर्णचैत्यालयान्मुदा ।
नीलरत्नमयीं पार्श्वप्रतिमामतिसुन्दरीम् ।।५३।।

संस्थाप्य तस्मिन् तत्कूट प्रतिष्ठां कृतवानसौ ।
चतुस्सङ्घमथाभ्यर्च्य दानं दत्वा चतुर्विधम् ।।५४।।

अयाचितः स कृतवान् याचकान् तत्र चागतान् ।
सिद्धचक्रव्रतं सम्यक् पालयन् कालयोगतः ।।५५।।

भावसेनाभिधं पुत्रं प्राप्तवान् कुलचित्रकम् (वर्द्धकम्) ।
समयाद्यौवने पं तं राजलक्षणलक्षितम् ।।५६।।

समीक्ष्य तं स भूपालो ददौ राज्यमनुत्तमम् ।
तस्मिन्नेव वने राजा स्वयं दीक्षां गृहीतवान् ।।५७।।

तपसा दग्धकर्मासौ केवलज्ञानमाप्तवान् ।
शुक्लध्यानात्मनः सिद्धपदे संयोज्य निश्चलम् ।।५८।।

जीर्णतृणमिव त्यक्त्वा तनुं सिद्धत्वमङ्गता ।
ततः स भावसेनाख्यो नृपः परमधर्मभृत् ।।५९।।

मुनि के वचनानुसार राजा ने उसी समय उस वन में स्वर्ण चैत्यालय बनवाये तथा आनन्दपूर्वक नीलरत्नमय अतिशय सुन्दर पार्श्वजिन की प्रतिमा स्थापित कर उसमें सुवर्णभद्र कूट की प्रतिष्ठा की। इसके बाद राजा ने चतु सघ की पूजा की, चार प्रकार का दान दिया, याचको को इतना दिया कि वे पुनः कभी न मागे, राजा ने सिद्धचक्र व्रत का उत्तम पालन किया। कालान्तर मे रानी को आश्चर्य करने वाला भावसेन नामक पुत्र हुआ। कालक्रम से तरुण होने पर राजा ने राज्यभार उसे दे दिया तथा स्वय उसी वन मे दीक्षा ले ली। तपश्चरण से घातिकर्मों का नाश करके वह केवलज्ञानी हुए और शुक्लध्यान के प्रभाव से जीर्ण पुष्पमाला के समान शरीर का त्याग कर सिद्ध हुए ॥५३-५९॥

सङ्घं प्रपूज्य सं (शु) भक्त्या चैककोटिप्रमाणितान् ।
चतुर्योक्ताऽसीतिलक्ष सम्मितान्भव्यजीवकान् ॥६०॥
विधाय सार्धगान् यात्रां चक्रे सम्मेदभूभृतः ।
सुवर्णभद्रकूटं स तत्र गत्वा प्रपूज्य च ॥६१॥
ववन्दे भक्तिभावेन तैरुक्तैस्साधुसत्तमैः ।
सार्धं दिगम्बरो भूत्वा तपः कृत्वा स भावतः ॥६२॥
सामर्थ्याच्छुक्लध्यानस्य दग्ध्वा कर्माणि सर्वथा ।
मुक्ति जगाम तैः सार्धं भावसेनो मुनीश्वरः ॥६३॥
एककूटनमस्कारावेतत्फलमुदीरितम् ।
सर्व कूट नमस्कारी मुक्त एव न संशयः
(यातिमुक्ति) ॥६४॥
पशुत्वं नारकित्वञ्च नानादुःखफलप्रदम् ।
इह नास्त्येव नास्त्येव सम्मेदगिरिवन्दनात् ॥६५॥

सम्मेदयात्रिको जीवः क्रमाद् भावेन संयुतः ।
करामलकवत्पश्येत् त्रिलोकीं ज्ञानचक्षुषा ॥६६॥

उत्तम जिनधर्म पालन करने वाला राजा भावसेन से भी उत्तम भक्ति से संघ-पूजा करके एक कोटि, चौरासी लाख भव्य जीवों के साथ यात्रा के लिए निकला। उसने सम्मेदशिखर क्षेत्र की यात्रा की। सुवर्णभद्र कूट पर उस राजा ने भक्ति से पूजा-वन्दना करके, ऊपर कहे अनुसार श्रेष्ठ साधुओं के साथ दीक्षा धारण कर भावपूर्वक तप किया व मोक्ष को प्राप्त हुए। एक कूट को नमस्कार करने वाले जब मोक्ष जाते हैं तो सर्व कूटों को नमस्कार करने वाला यदि मोक्ष जाये तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? अनेक व नाना प्रकार के दुख देने वाली पशु-पर्याय व नारक पर्याय इस क्षेत्र की वंदना करने वाले को नहीं हो होती—यह बात ध्यान में रखने योग्य है। इस क्षेत्र की यात्रा करने वाले को त्रैलोक्य हाथ में रखे आंवले की तरह (स्पष्ट व एक समय में) दिखाई देगा ॥६०-६६॥

अथ सम्मेदशैलस्य वन्दितस्याखिलैर्बुधैः ।
यथा विधीयते यात्रा वक्ष्येऽहं तत्प्रमाणतः ॥६७॥

सकल विद्वानों द्वारा वंदित सम्मेदगिरिराज की यात्रा कैसे की जाती है—यह बात मैं प्रमाणानुसार बताता हूँ ॥६७॥

शैलयात्रोत्सुको भव्यः निर्लोभः प्रथमं भवेत् ।
कुर्याद् द्रव्यव्ययं सम्यक् माहात्म्यं शृणुयद् गिरेः ॥६८॥

यात्रा पत्रं प्रेषयित्वा प्रतिदेशं शुभाक्षरम् ।
अशेषभव्यजीवानां यात्रा सूचकशुभमम् ॥६९॥

इस पर्वतराज की यात्रा करने के लिए उत्सुक भव्य को प्रथमतः निर्लोभी होना चाहिए। उसे क्षेत्र का माहात्म्य सुनना चाहिए व उत्तम रीति से द्रव्य खर्च करना चाहिए। प्रत्येक देश के सर्व भव्यों को आमन्त्रण-पत्रिका भेजना चाहिए तथा उसमें यात्रा का विवरण तथा क्षेत्र का माहात्म्य सुन्दर अक्षरों में लिखा होना चाहिए। इस प्रकार सभी को यात्रा की सूचना देवे ॥६८-६९॥

श्रीमद्भगवतस्तुङ्गविमानं रचयेत्सुधीः ।
गजारूढं प्रभुं कृत्वा यात्रां कुर्यात्प्रयत्नतः ॥७०॥

रथयात्रां तथा चेन्द्रध्वजादिशुभपूजनम् ।
तथा बिम्बप्रतिष्ठाञ्च प्रतिष्ठां गजपूर्विकाम् ॥७१॥

आदौ कृत्वा भवेद्यात्रा अ(चा)थवागत्यसत्वनि ।
आदावन्ते यथा कुर्याद्रथयात्रादिकं बुधः ॥७२॥

यथा शक्त्याथवा कृत्वा यात्रां कुर्याद् गिरीशितुः ।
वस्त्रादिवस्तुसाहाय्यं विदध्यात्स्वार्थगामिनाम् ॥७३॥

भारवाट्सु यथायोग्यं दद्यात् भारं विचार्य सः ।
यथा दुःखी न कोऽपि स्यात्तथा कुर्यात्प्रयत्नतः ॥७४॥

इसी प्रकार सुज्ञानियों से एक अच्छा व ऊँचा विमान बनवाये व उस विमान को हाथी पर रखकर प्रयत्न-पूर्वक यात्रा करनी चाहिए। यात्रा सावधानीपूर्वक करना चाहिए, ताकि जीवों को बाधा न पहुँचे। यात्रा से पूर्व रथयात्रा निकलवाना चाहिए। इन्द्रध्वजादि पूजन करना चाहिए। उसी प्रकार बिम्ब-प्रतिष्ठा व गजरथ करवाना चाहिए। प्रथमतः ये कार्य करके यात्रा प्रारम्भ करनी चाहिए अथवा अन्त में करना चाहिए

अथवा शक्ति अनुसार जैसे हो वैसे यात्रा करना चाहिए। अपने साथ जो यात्री हैं, उनकी वस्त्रादिक से सहायता करना तथा भार-वाहकों को योग्य भार देना चाहिए (अधिक नहीं लादना चाहिए)। कोई भी दुखी न हो—ऐसा प्रयत्न करना चाहिए ।।७०-७४।।

चतुःपञ्च क्रोशमात्र गच्छेत्प्रतिदिनं बुधः ।
यतो बालास्तथा वृद्धा नक्लिश्नीयुः पथि श्रमात् ।।७५।।
आहारदानं शास्त्रस्य दानमौषधदानकम् ।
तथाचाभयदानञ्च दद्यात् सङ्घाय भक्तितः ।।७६।।
श्रीमद्भट्टारकानाञ्च जैनधर्मविदां किल ।
यथास्थितानि दानानि दद्याद्दाताप्रमाणतः ।।७७।।
यात्रां यस्मिन्दिने कुर्यात्तद्दिने भक्तिभावतः ।
पञ्चकल्याणपूजा वै विदध्यादीशितुर्बुधः ।।७८।।
मार्गे दीनजनान् वृद्धान् चतुरांश्च तथैव च ।
संरक्षेत्सर्वभावेन करुणार्द्रकृताशयः ।।७९।।
एवं सम्मेदयात्रायां कृतायां को महीतले ।
पदार्थोऽयं न यात्राकृत् प्राप्नुयात् मनसार्थितम् ।।८०।।

इसी प्रकार यात्रा करने वालों को प्रतिदिन चार कोस अथवा पाँच कोस मार्ग पार करना चाहिए। इस प्रकार का मार्ग-क्रमण वृद्ध व बालकों को कष्ट प्रद नहीं होगा, मार्ग-परिश्रम नहीं होगा। संघ को भक्ति से चार प्रकार का दान देवे तथा साथ में जो विद्वानादिक हैं, जो जैनधर्म के ज्ञाता हैं, उन्हें जिनाज्ञा-प्रमाण मानकर दान देवे। जिस दिन यात्रा करना है उस दिन विद्वान् संघपति को पंच कल्याणक करवायें; रास्ते में

दीन, वृद्ध व रोगी लोगों का करुणार्द्र हृदय से रक्षण करवायें—इस प्रकार सम्मेद-यात्रा करने पर सर्व इच्छित पदार्थों की प्राप्ति होती है ॥७५-८०॥

अथवा हेतुना केनाप्यसौ भव्यो गिरीशितुः ।
यात्रा शक्तो न तद्भूत फलमीप्सुरिहैव हि ॥८१॥

तर्हि सम्मेदशैलस्य माहात्म्यं शास्त्रसम्मतः ।
शृणुयात्संविधानेन लोहाचार्येण भाषितम् ॥८२॥

माघे चैत्रे तथा भाद्रे कार्तिके मासि चोत्तमे ।
कृष्णपक्ष प्रतिपदि नानोत्सवसमन्वितः ॥८३॥

कृता च कारिता यात्रा यैरपीहानुमोदिता ।
ते यात्राफलभाजःस्युः सत्यं सत्यं न संशयः ॥८४॥

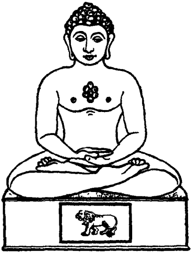
इवं सम्मेदमाहात्म्यं लोहाचार्योक्तिसम्मतम् ।
निर्मितं देवदत्तेन कविना गुरुभाविना ॥८५॥

अथवा किसी कारणवश कोई भव्य सम्मेदशिखर जी की यात्रा के लिए न जा सकें तब उसे इस लोक में ही फल मिलता है, कारण उसकी यात्रा करने की उत्कृष्ट अभिलाषा (श्रद्धा) थी, किन्तु किसी बड़े कारण से उसकी यात्रा नहीं हुई, अतः उसे पुण्य-लाभ होता है—ऐसा समझना।

इस सम्मेदशैल का माहात्म्य शास्त्र-सम्मत है। श्री लोहाचार्य जी ने कहा है। इसको क्रम से सुनें—माघ, चैत्र, भाद्रपद व कार्तिक आदि उत्तम मासों में कृष्ण पक्ष प्रतिपदा के दिन जिसने उत्साहपूर्वक यात्रा की, करवाई व यात्रा का अनुमोदन किया—उन सबको यात्रा का फल मिलता है, यह बात सत्य है, इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है। यह सम्मेदशिखर का माहात्म्य



महावीर भगवान की टोंक



महावीर जिन सिद्ध भए, पावापुर से जोय।
मन वच तन कर पूजहूं, थापित चरण संजोय ।।

ओ३म् ह्रीं श्री महावीर स्वामी पावापुर के पदम सरोवर स्थान से २६ मुनि मोंक्ष पधारे तिनके चरणारविन्द को मेरा मन वचन काय से बारम्बार नमस्कार हो जलादि अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।।२४।।

लोहाचार्य वचनानुसार लिखा है । गुरुभक्ति धारण करने वाले देवदत्त कवि ने यह माहात्म्य रचा है ।।८१-८५।।

यः श्रद्धया विधानेन पठेद्वा शृणुयादपि ।
सर्वकिल्बिषनिर्मुक्तः स पुण्यं लभतेऽक्षयम् ।।८६।।

जो मनुष्य श्रद्धा से इस विधान को पढ़ेगा, सुनेगा, उसके सर्व पाप नष्ट हो जाते हैं, तथा पुण्य-प्राप्ति करता हुआ वह अक्षय सुख प्राप्त करता है ।।८६।।

शार्दूलविक्रीडितम्

यावच्चन्द्रदिवाकरौ गगनगौ यावत्स्वर्गाधीश्वरौ ।
यावद् भूमिरियं विराजिततया (था) यावत्कृशानुर्मरुत् ।
तावद्ग्रन्थवरोऽयमत्रसकलाऽभीष्टार्थसिद्धिप्रदा ।
श्रीसम्मेदमहीभृतः प्रतिदिनं कण्ठे सतां तिष्ठतात् ।।८७।।

ज्योतिर्देवों के अधिपति सूर्य व चन्द्र जब तक आकाश में बिहार करते रहेंगे, और तब तक पृथ्वी रहेगी, अग्नि का अस्तित्व रहेगा; तब तक यह श्रेष्ठ ग्रन्थ इस लोक में भव्य जीवों को इच्छित पदार्थों की प्राप्ति करा देने वाला होवे । सम्मेद-शिखर का माहात्म्य दिखाने वाला यह ग्रन्थ प्रतिदिन भक्तों के कण्ठ में विद्यमान रहे ।।८७।।

इति श्रीभगवल्लोहाचार्यानुक्रमेण श्रीभट्टारकजिनेन्द्र-भूषणोपदेशात् श्रीमद्दीक्षित(ब्रह्म)देवदत्तकृते श्रीसम्मेदशिखर-माहात्म्ये समाप्तिसूचकोनाम एकविंशतितमोऽध्यायः ।।२१।।

इस प्रकार भगवान् लोहाचार्य का अनुक्रम करके भट्टारक जिनेन्द्रभूषण के उपदेश का अनुसरण करके श्री दीक्षित देवदत्त कवि द्वारा रचित सम्मेदशिखर माहात्म्य ग्रन्थ में समाप्ति-सूचक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय हिन्दी भाषा में श्री १०८ समाधि-सम्राट्, तीर्थ-भक्त-शिरोमणि श्रीआध्यात्म योगी जगद्गुरु परम्पराचार्य महावीर कीर्ति जी महाराज के शिष्य श्री १०८ गणधराचार्य कुन्थुसागर ने १४-७-८४ को बेलगाँव चीक बस्ती पार्श्वनाथ प्रभु के सानिध्य में समाप्त किया।

ॐ शांति ॐ शांति ॐ शांति

मन वचन काय से ज्ञान का अकम्प दीपक जलता है। जो इन तीनों को त्रिवेणी संगम नहीं दे सकता, उसके चंचल मन को आँधियाँ ज्ञान दीपक को बुझाने का प्रयत्न करती रहती है। सद् असद् का विवेक ज्ञान द्वारा ही सम्भव है, अतः मन, वचन, काय की चंचलता नहीं होने देना ही श्रेयस्कर है।

श्री दिग. जैन कुन्थु विजय ग्रंथमाला समिति

जयपुर (राजस्थान)

की

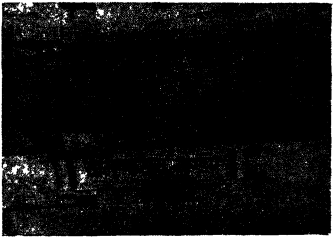
स्थापना एवं प्रकाशन

श्री दिगम्बर जैन कुंथु विजय ग्रन्थमाला समिति जयपुर (राजस्थान) की स्थापना परमपूज्य श्री १०८ गणधराचार्य कुंथुसागरजी महाराज व श्री १०५ गणिनी आर्यिका विजयामती माताजी के नाम से वर्ष १९८१ में की गई थी। सर्व प्रथम इस ग्रथमाला से पहला पुष्प 'लघुविद्यानुवाद' (यंत्र, मंत्र, तंत्र, विद्या का एकमात्र संदर्भ ग्रथ) का प्रकाशन करवाकर इसका विमोचन श्री बाहुबलि सहस्त्राभिषेक के शुभावसर पर **चामुण्डराय मण्डप** में दिनांक २४/२/८१ को परमपूज्य सन्मार्ग दिवाकर निमित्त ज्ञान शिरोमणि श्री १०८ आचार्य विमल सागरजी महाराज के कर कमलो द्वारा करवाया गया था। इस समारोह में देश के विभिन्न प्रान्तों से पधारे हुए लाखो नर नारियो के अलावा काफी संख्या में मंच पर दिगम्बर जैनाचार्य मुनिगण



श्री १०८ आचार्य विमल सागरजी महाराज लघुविद्यानुवाद ग्रंथ का विमोचन करते हुए। प्रति भेंट कर रहे है श्री १०८ गणधराचार्य कुंथुसागरजी महाराज। पास में खड़े है ग्रंथमाला के प्रकाशन संयोजक शान्ति कुमार गंगवाल

व अन्य साधुवर्ग उपस्थित थे । समाज के गण मान्य व्यक्तियो मे सर्व श्री भागचन्दजी सोनी, साहू श्रेयाम प्रसादजी जैन, निमल कुमार जी जैन (सेठी), श्री त्रिलोकचन्दजी कोठयारी श्री पुनमचन्दजी गगवाल (झरिया वाले) आदि उपस्थित थे । समारोह की अध्यक्षता श्री पन्नालालजी सेठी (डीमापुर) ने की थी । समारोह मे मुडबद्री व कोल्हापुर के भट्टारक महास्वामीजी भी उपस्थित थे ।



चामुण्डराय मण्डप मे श्री गणधराचार्य कुथुसागरजी महाराज लघुविद्यानुवाद ग्रथ की उपयोगिता के बारे मे प्रकाश डालते हुए ।

ग्रथमाला समिति ने द्वितीय पुष्प 'श्री चतुर्विशति तीर्थंकर अनाहत यत्र मंत्र विधि पुस्तक (कन्नड से हिन्दी मे अनुवादित) का प्रकाशन करवाकर दिनांक ६/५/८२ को श्री पार्श्वनाथ चूलगिरि अतिशय क्षेत्र जयपुर (राजस्थान) मे आयोजित पच-कल्याणक महोत्सव के शुभावसर पर भारत गौरव श्री १०८ आचार्यरत्न देश भूषणजी महाराज के करकमलो द्वारा करवाया गया । इस समारोह मे भी देश के विभिन्न प्रान्तो से आये हुए काफी सख्या मे लोगो ने भाग लिया और समारोह बहुत ही सुन्दर रहा । समारोह की अध्यक्षता श्री सुरेशचन्दजी जैन दिल्ली वालो ने की ।



ग्रंथमाला समिति द्वारा प्रकाशित द्वितीय पुष्प
'श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर' अनाहत यंत्र मंत्र विधि पुस्तक का विमोचन करते
हुए भारत गौरव श्री १०८ आचार्य रत्न देश भूषणजी महाराज प्रति भेंट
कर रहे है प्रकाशन संयोजक शान्ति कुमार गंगवाल

भारत गौरव आचार्य रत्न श्री १०८ देश भूषण जी महाराज का चातुर्मास



ग्रंथमाला समिति द्वारा प्रकाशित द्वितीय पुष्प 'तजोमान करो ध्यान' पुस्तक
का विमोचन करते हुए श्री १०८ आचार्य रत्न देश भूषणजी महाराज

वर्ष १९८२ मे जयपुर मे हुआ और इस शुभ अवसर पर दशलक्षण पर्व के शुभावसर पर समिति ने अपना तृतीय पुष्प 'तजोमान करो ध्यान' का प्रकाशन करवा कर आचार्य श्री के ही कर कमलो द्वारा दिनांक २६/८/८२ को महावीर पार्क जयपुर (राजस्थान) मे हजारों नर नारियो के बीच इस पुस्तक का विमोचन करवाया। बडा ही सुन्दर था।

ग्रथमाला समिति ने चतुर्थ पुष्प 'हुम्बुज श्रमण सिद्धान्त पाठावलि' ग्रथ का प्रकाशन करवा कर इसका विमोचन परमपूज्य श्री १०८ गणधराचार्य कुथुसागरजी महाराज के हासन (कर्नाटक) चातुर्मास मे आयोजित इन्द्रध्वज विधान के विसर्जन के शुभावसर पर दिनाक २१/८/८२ को हजारो जन समुदाय के बीच मे बडी धुमधाम से इस महत्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रथराज का विमोचन करवाया। इस समारोह में मूडबद्री, जैन बद्री के भट्टारक महास्वामीजी भी उपस्थित थे ।

हुम्बुज श्रमण सिद्धान्त पाठावलि ग्रथ एक महत्वपूर्ण ग्रथ रत्न है। यह ग्रथ लगभग ७५ ग्रथो का १००० पृष्ठा का गुटका रूप है। इसम साधुओ के पाठ करने के सभी आवश्यक स्तोत्रो का सकलन कर प्रकाशन करवाया है। इस ग्रथ के प्रकाशन से साधुओ को अनेक ग्रथ सामने नही रखने पडेगे। साधु सघ के विहार



ग्रथमाला समिति द्वारा प्रकाशित चतुर्थ पुष्प 'हुम्बुज श्रमण सिद्धान्त पाठावलि' ग्रथ को विमोचन हेतु श्री १०८ गणधराचार्य कुथुसागरजी महाराज को भेंट करते हुए प्रकाशन सयोजक शान्ति कुमार गगवाल

के समय अनेक ग्रंथो को मार्ग में ले जाने में जो दिक्कत होती थी, वो अब नहीं होगी और साथ ही जिनवाणी का भी अविनय नहीं होगा मात्र एक ही ग्रंथराज (कुम्बुज श्रमण सिद्धान्त पाठावलि) के रखने से सारा कार्य हो जावेगा। इस प्रकार के ग्रंथ का प्रकाशन प्रथम बार ही हुआ है। ऐसा सभी आचार्यो साधुओ व विद्वानों का मत है। साधुवर्ग इस प्रकाशन से बहुत ही लाभान्वित हुए है।

यह ग्रंथ सभी संघो में सभी साधुओं को ग्रंथमाला की ओर से मात्र डाक खर्च पर स्वाध्याय हेतु वितरित किया गया है।



समारोह में जैन संगीत कोकिला रानी एवं आध्यात्मिक संगीत विदुषि बहिन श्रीमति कनक प्रभाजी हाड़ा मंगलाचरण प्रस्तुत करते हुए।

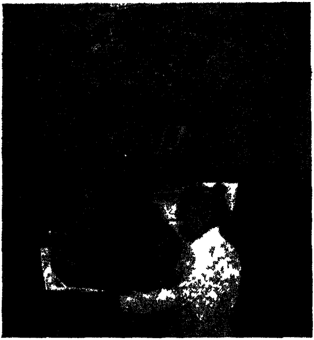
ग्रंथमाला समित्ति ने पंचम पुष्प 'पुनर्मिलन' (अंजना का चरित्र) पुस्तक का का प्रकाशन करवा कर श्री पार्श्वनाथ पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव (श्री दिगम्बर जैन आदर्श महिला विद्यालय श्री महावीरजी अतिशय क्षेत्र) के जन्म कल्याणक के शुभावसर पर दिनांक १२/२/८४ को श्री १०८ आचार्य सन्मति सागरजी महाराज (अजमेर) के कर कमलों द्वारा हजारों की संख्या में जन समुदाय के बीच करवाया। समारोह में साधु संघ के अलावा, श्रीमान निर्मलकुमारजी जैन (सेठी), श्री माणक चन्द जी पालीवाल, श्री मदनलालजी चांदवाड, श्री त्रिलोक चन्द जी कोठ्यारी, श्री प्रकाशचन्द जी पांड्या आदि श्री भारतवर्षीय दिगम्बर महासभा के पदाधिकारी उपस्थित थे। समारोह में आदरणीय पण्डित साहब श्री बाबूलालजी जमादार, श्री भरतकुमार जी काला, श्री काका हाथरस आदि महानुभावों ने भाग लिया। कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री माणकचन्द जी पालीवाल ने की। इस प्रकार समिति द्वारा पंचम पुष्प पुनर्मिलन पुस्तक का विमोचन भी बहुत ही सुन्दर रहा।



श्री १ ८ आचार्य स मति सागरजी महाराज (अजमेर) को ग्रथमाला समिति द्वारा
प्रकाशित पचम पुष्प पुनर्मिलन पुस्तक विमोचन हेतु भेट करते हुए
प्रकाशक सयोजक शातिकुमार गगवाल

ग्रथमाला समिति ने षष्टम पुष्प श्री शीतलनाथ पूजा विधान (कन्नड से सस्कृत भाषा) मे अनुवादित करवाकर अलवर (राजस्थान) मे आयोजित पच कल्याणक म ज म कल्याणक के शुभावसर पर श्री १०८ आचार्य सन्मति सागरजी महाराज के कर कमलो द्वारा दिनाक ५/३/८४ को बडी धूमधाम से करवाया।

श्री शाति विधान के समान ही यह शीतलनाथ विधान है। इस विधान की पुस्तक के प्रकाशन से उत्तर भारत के लोग भी अब इससे लाभ उठा सकेगे जो कन्नड भाषा नही जानते है।



ग्रथमाला समिति द्वारा प्रकाशित षष्टम पुष्प श्री शीतलनाथ पूजा विधान
की पुस्तक श्री १०८ आचार्य सन्मति सागरजी महाराज (अजमेर)
को विमोचन हेतु भेट करते हुए प्रकाशन सयोजक
श्री शान्तिकुमार गंगवाल

श्री १०८ आचार्य सन्मति सागरजी महाराज (अजमेर) ने वर्ष १९८४ का चातुर्मास जयपुर मे किया। ग्रन्थमाला समिति ने इस शुभावसर पर एक बहुत ही सुन्दर वर्षायोग स्मारिका का प्रकाशन करवाकर बुलियन बिल्डिंग, जयपुर (राजस्थान) मे विशाल जन समुदाय के बीच दिनाक २८-१०-८४ को श्री १०८ आचार्य सन्मति सागरजी महाराज के कर-कमलो द्वारा विमोचन करवाया। इस स्मारिका मे वर्षायोग मे आयोजित कार्यक्रमो के चित्रो की झलक प्रस्तुत की गई है और अलग-अलग विषयो पर बहुत ही ज्ञानोपयोगी साधुओ व विद्वानो द्वारा लिखित लेख प्रकाशित किये गये है।



ग्रन्थमाला समिति द्वारा प्रकाशित सप्तम पुष्प वर्षायोग स्मारिका
विमोचन हेतु श्री १०८ आचार्य सन्मति सागरजी महाराज को
भेंट करते हुए प्रकाशन संयोजक शान्ति कुमार गगवाल

इस प्रकार ग्रन्थमाला से ७ पुष्प प्रकाशित हो गये हैं और सभी ग्रन्थ अद्वितीय है। सभी आचार्यों, साधुओं, विद्वानों व पाठकों ने प्रत्येक प्रकाशन की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। यह सब सभी साधुओं के मंगलमय शुभाशीर्वाद के साथ-साथ परमपूज्य श्री १०८ गणधराचार्य कुन्थुसागरजी महाराज व श्री १०५ गणिनी आर्यिका विजयामती माताजी के मंगलमय शुभाशीर्वाद से ही हो सका है। इसके लिए हम सभी कृतज्ञ हैं और उनके चरणों में नत-मस्तक होकर कोटि-कोटि बार नमोस्तु अर्पित करते हैं।

समिति के कार्यों में यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि यह ग्रन्थमाला सभी साधुओं, विद्वानों, पत्रों के सम्पादकों व ग्रन्थमाला के सहयोगियों को, प्रकाशन खर्च में सहयोग करने वाले दातारों को सभी प्रकाशन मात्र डाक खर्च पर भेजती रही है और आगे भी भेजती रहेगी।

इस प्रकार इस ग्रन्थमाला ने अपने अल्पकाल में, साधनों के सीमित होते हुए भी इतने विशाल कार्य को किया है, करने में सफलता प्राप्त की है वह सभी के सामने है।

मुझे आशा ही नहीं बल्कि पूर्ण विश्वास है कि पाठकगण हमारे प्रकाशनों से पूर्ण लाभ उठायेंगे और त्रुटियों के लिए क्षमा करेंगे।

शान्ति कुमार गंगवाल
प्रकाशन संयोजक

❀ मनुष्य जन्म अत्यन्त दुर्लभ है यदि तुमने धर्म कमाई नहीं की तो आगामी भव में दुःख भोगना होगा।

❀ जिनेन्द्र भगवान की वाणी में अविचलित श्रद्धा धारण करो। आगम की श्रद्धा से जीवों का अनन्त कल्याण हुआ है।

❀ तुम शरीर से भिन्न चेतनापुंज आत्मा हो! जिनसे शरीर का हित होता है उससे आत्मा का कल्याण नहीं होता। सदा अपने स्वरूप का विचार करना चाहिये। आत्म चिंतवन के बिना मोक्ष नहीं मिलेगा।

❀ संयम धारण करके डरो मत! यह संयम तुम्हारे लिये सच्चा कल्याण प्रदाता है।

❀ धर्म का मूल सत्य और अहिंसा है। इस धर्म के द्वारा सच्ची और अविनाशी शान्ति मिलेगी।

ग्रन्थ प्रकाशन कार्य में दान दाताओं की सूची

श्री सम्मेदशिखर माहात्म्यम् ग्रन्थ के प्रकाशन खर्च में निम्नलिखित महानुभावों से आर्थिक सहायता प्राप्त हुई है।

५००१) सौ० विमलाबाई चिंतामणि शेट्टी (बेलगाँव, कर्नाटक)
५००१) श्रीमती सुनन्दा धर्मपत्नि श्री मधुकर डी० चौगुले (बेलगाँव, कर्नाटक)
५०००) श्री फक्कड़ बालागाट (हुपरी, महाराष्ट्र)
२५०१) श्री देवगोंडा रामगोंडा पाटिल (वसगड़े, महाराष्ट्र)
२५००) श्री भाऊसाहेब नरसाप्पा भोजे (हुपरी, महाराष्ट्र)
२५००) श्री भूपाल कृष्णाप्पा लंगारे (बेलगाँव, कर्नाटक)
२५००) श्री बालप्पा दरयाप्पा चौगुले (बेलगाँव, कर्नाटक)
२५००) श्री बापूसो सिद्धगोंडा पाटिल (वसगड़े, महाराष्ट्र)
२५००) श्री जीवंधर सातप्पा हणमण्णवर (बेलगाँव, कर्नाटक)
११०६) गुप्तदान
१०००) कलप्पा कानुर
५०१) सरिता बहिन (मद्रास)
५०१) श्री ज्ञानचन्दजी विमलचन्दजी जैन (जयपुर)

श्री दिगम्बर जैन "कुन्थु विजय ग्रन्थमाला समिति" उपरोक्त सभी दान दाताओं का आभार प्रकट करती है कि समिति द्वारा भविष्य में जब-जब भी इस प्रकार के अद्भुत अलभ्य ग्रन्थों का प्रकाशन होगा, सहयोग मिलता रहेगा।